की सतह से २९,००२ फुट या लगभग साढ़े पाँच मील है।

नेपाल की उपजाऊ घाटियों में कपास, चावल, गेहूँ, गन्ना और तम्बाकू की अच्छी खेती होती है। कई तरह की दालें भी बोई जाती हैं। फल और तरकारियाँ भी खूब होती हैं। साल और शीशम के घने जंगल नेपाल की बड़ी दौलत हैं। तरह तरह के बाँस भी वहाँ पाए जाते हैं। दो हज़ार फ़ुट से चार हज़ार फ़ुट तक की ऊँचाईवाले भागों में चाय भी पैदा होती है।

भारत की तरह नेपाल में भी तीन मौसम होते हैं—सर्दी, गर्मी और बरसात। पर वहाँ गर्मी ज़्यादा नहीं पड़ती। हाँ, बारिश खूब होती है। जंगल अधिक होने का एक कारण यह वर्षा भी है। उन जंगलों में बड़े बड़े जानवर, जैसे शेर, चीते, हाथी, भेड़िये, और लकड़बग्घे बहुत हैं। कस्तूरी यानी मुश्कवाला हिरन नेपाल ही के पहाड़ों पर पाया जाता है। पालतू जानवरों में भैंसों की संख्या अधिक है।

ज्ञान सरोवर

भाग १

शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय,
भारत सरकार, नई दिल्ली।

हिन्दी के इस नए युग की शुरूआत 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र' से होता है। भारतेन्दु बाबू अपने समय के सब से बड़े हिन्दी कवि और नाटककार थे। उनके नाटक हिन्दी के वे पहले नाटक हैं जिन्हें हिन्दी साहित्य की एक मजबूत बुनियाद कहा जा सकता है। इनके नाटकों में देश और समाज की बिगड़ती हुई दशा की अच्छी और चुटीली झांकी मिलती है। इनके समय में और कई लेखक ऐसे हुए जिन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी कीमती रचनाएं भेंट कीं। उनमें पं० प्रताप नारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट आदि के नाम प्रमुख हैं। इस युग के लेखकों ने हिन्दी भाषा को बहुत कुछ मांज दिया। सन् १९०५ में बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन छिड़ा। धीरे-धीरे राष्ट्रीय कांग्रेस नरम लोगों का पल्ला छोड़कर गरम लोगों के हाथ में आ गयी। सन् १९१४ की लड़ाई के बाद महात्मा गांधी भारत की राजनीति में आए और देश आजादी के लिए पूरे जोर से लड़ने लगा।

देश प्रेम और राजनीतिक आन्दोलनों के प्रभाव से हिन्दी में कई अखबार भी निकलने लगे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग के बाद इस नए युग में हिन्दी साहित्य को सुधारने का सबसे अधिक काम पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। वे 'सरस्वती' नाम की मासिक पत्रिका के

सुथरी खड़ी बोली का अच्छा नमूना है। बाद में अधिक कवि खड़ी बोली
में ही रचना करने लगे।

कामायनी :

अंग्रेज़ी शासन में लोग अंग्रेज़ी पढ़ने की ओर झुके और पच्छिम के
नए विचारों से उनका परिचय हुआ। हिन्दी साहित्य में कथा कहानियों
और कविताओं में नए विचार
आने लगे। स्त्री पुरुष की बरा-
बरी, व्यक्ति की स्वाधीनता,
विवाह में माता-पिता का हाथ न
होना, इस प्रकार के विचार प्रकट
होने लगे। साथ ही एक बात और
भी आयी। अब हर बात बुद्धि की
कसौटी पर कसी जाने लगी।
श्रद्धा से किसी बात को मान
लेना ठीक न जँचा। इस तरह
नए और पुराने विचारों में जोर
की टक्कर आरम्भ हुई। इसलिए
कवियों ने अक्सर गीत या मुक्तक
लिखे जिनमें कोई प्रबन्ध या
कहानी न रहती थी। मन के भाव छोटे छोटे गीतों में प्रकट किए
जाते थे। प्रसाद जी का 'कामायनी' नामक ग्रन्थ इस युग की बड़ी देन है,
जिसे कुछ हद तक प्रबन्ध-काव्य कह सकते हैं।

विषय-सूची

देवी देवताओं की कथाएँ

विश्व-साहित्य

लोक-साहित्य

जीव-जन्तु और पौधे

कृषि-विज्ञान

रोग पर विजय

विज्ञान की बातें

इंजीनियरी के चमत्कार

घरेलू उद्योग-धंधे

सौंदर्य की खोज में

राजनीति और अर्थशास्त्र

खेल कूद

भूमिका

देश में हमारी अपनी सरकार के बनते ही उसका ध्यान जिन कामों की तरफ़ गया उनमें से एक यह था कि नए और कम पढ़े लोगों के लिए ऐसी किताबें लिखाई जाएँ जिन्हें वे आसानी से पढ़ और समझ सकें और उनसे लाभ उठा सकें। हमारे देश में हज़ारों वर्ष से किताबों के बिना पढ़ाई का रवाज रहा है। पर अब कई कारणों से उस तरह की पढ़ाई उतना काम नहीं दे सकती जितना पहले देती थी। अब किताबों की माँग और उनका प्रभाव दिन दिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए आम लोगों के लिए ठीक तरह की किताबों का तैयार किया जाना और भी ज़रूरी हो गया है।

सब लोगों को पढ़ना लिखना सिखाने की नई सरकारी नीति ने इस तरह की किताबों को जल्दी से जल्दी तैयार कराने की माँग को और बढ़ा दिया है। पढ़े लिखे लोगों की गिनती देश में बढ़ती जा रही है। अगर उन्हें अच्छी किताबें नहीं मिलेंगी तो पढ़ाई लिखाई के फैलने से देश का बल बढ़ने की जगह हमारी कठिनाइयाँ बढ़ सकती हैं। इन नई किताबों के लिखाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ उन्हें पढ़ कर लोगों को अपनी सामाजिक और आर्थिक हालत सुधारने में मदद मिले, उनमें बुद्धि और विज्ञान की क़द्र बढ़े और उनमें वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो, वहाँ ऐसा भी न हो कि भारत की पुरानी सभ्यता में जो अच्छी बातें हैं उन्हें वे भूल जाएँ।

इस माँग को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने जन साधारण के लिए 'ज्ञान सरोवर' नाम से एक विश्व कोश लिखाने की व्यवस्था की है। इस विश्व कोश की तैयारी में यह ध्यान रखा गया है कि आम लोग इसे पढ़ें तो आजकल की

दुनिया में जो नए नए आर्थिक और राजनीतिक विचार पैदा हो रहे हैं उनको समझने लगें और विज्ञान और तकनीक में जो दिन दिन बढ़ती हो रही है उसे भी जान लें। इस तरह अपनी जानकारी बढ़ा कर हमारे देश के लोग नए भारत के और अच्छे नागरिक बन सकेंगे। इन सब बातों को इस विश्व कोश में ऐसी भाषा में बताने की चेष्टा की गई है जो आम लोगों की भाषा है और जिसे सब आसानी से समझ सकते हैं। हमें आशा है कि यह विश्व कोश इन बातों को पूरा करेगा और हमारे देश के लोगों को इस तरह की बातें बताएगा जिनसे वे अपनी पुरानी सभ्यता की सचाइयों को पूरी तरह समझते हुए, आजकल के विज्ञान और वैज्ञानिक ढंग की क़द्र करने लगें।

—हुमायूँ कबीर

दूरबीन से देखने पर चाँद में पाँच खास चीज़ें दिखाई देती हैं :—

(१) काले काले सपाट भाग, जो वास्तव में मैदान हैं; (२) ज्वालामुखी पहाड़, (३) साधारण पहाड़, (४) दरारें, जो मैदानों या पहाड़ों के फट जाने से बनी हैं; और (५) चमकीली धारियाँ, जो ज्वालामुखी या दूसरे पहाड़ों से निकलकर मीलों तक चली गई हैं।

चाँद में दिखाई देनेवाली पाँच खास चीज़ें

चाँद पृथ्वी से छोटा है। उसका घेरा पृथ्वी के घेरे के लगभग पचासवें भाग के बराबर है। उसके आरपार की लम्बाई २,१६० मील है। यह लम्बाई पृथ्वी के आरपार की लम्बाई के चौथाई से कुछ अधिक है। चाँद का वज़न पृथ्वी के वज़न के लगभग ८०वें भाग के बराबर है। उसकी आकर्षण-शक्ति भी पृथ्वी के मुक़ाबले

सूरज की भांति चाँद में भी काले काले धब्बे दिखाई देते हैं। देश देश के लोगों ने उन धब्बों के आकार के बारे में अलग अलग धारणाएँ बना रखी हैं। कहीं उन धब्बों को चरखा कातती हुई बुढ़िया की परछाई, कहीं हिरन और कहीं ख़रगोश समझा जाता है। पर बड़ी दूरबीन से देखने पर साफ़ दिखाई देता है कि वे काले धब्बे वास्तव में बड़े बड़े मैदान हैं, जिनमें बड़े बड़े गड्ढे और ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। दूरबीन का आविष्कार करनेवाले गैलीलियो ने उन्हें समुन्दर समझा था, क्योंकि उसकी छोटी सी दूरबीन से चाँद की सपाट सतह ही दिखाई देती थी, उस पर उभरे हुए पहाड़ नहीं दिखाई देते थे। सुबह और शाम को जब चाँद की चमक फीकी होती है तब उसके धब्बे बहुत साफ़ दिखाई देते हैं।

पहले दूरबीन का आविष्कारक गैलीलियो

आँखों से देखने में चंद्रमा सुंदर दिखाई देता है। किंतु दूरबीन से देखने में वह और भी सुंदर लगता है। दूरबीन से देखने के लिए तीज या चौथ का दिन सबसे अच्छा होता है। इन दो दिनों चाँद के जिस भाग में रोशनी रहती है, उसके भीतरी छोर पर सूरज की धूप तिरछी पड़ती है, जिससे वहाँ के ज्वालामुखी पहाड़ों की परछाइयाँ लम्बी होकर पड़ती हैं। उस समय साफ़ दिखाई देता है कि चाँद की सतह के पहाड़ उभरे हुए हैं और ज्वालामुखी पहाड़ गड्ढों जैसे हैं।
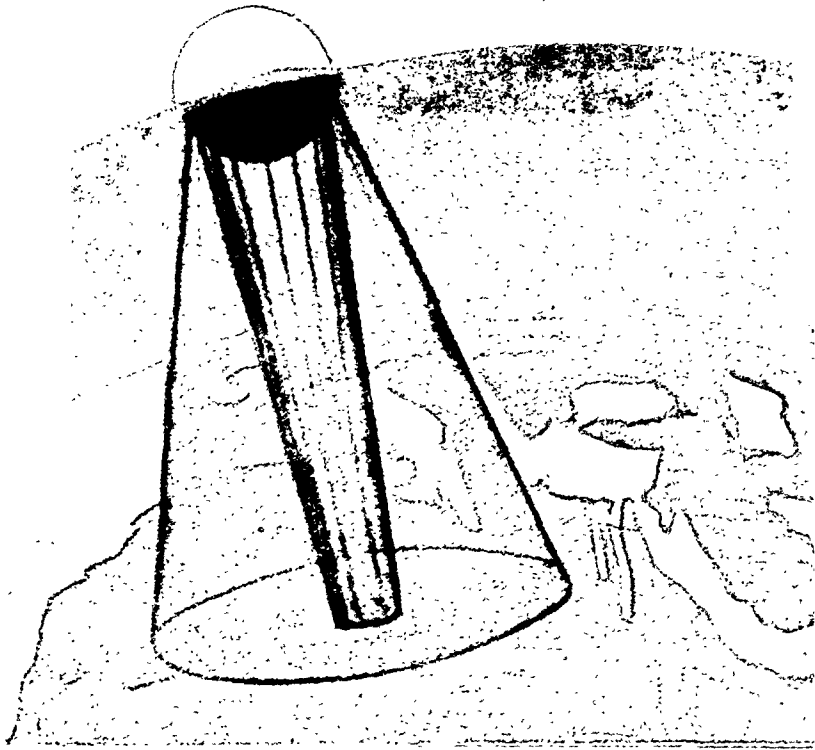
जब चाँद सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है, तब पृथ्वी की सतह पर
की छाया पड़ने से सूर्यग्रहण होता है। इस चित्र में यह दिखलाया गया है
शून्य में हजारों मील की दूरी से सूर्यग्रहण कैसा दिखाई देगा।

सूरज के धब्बों को देखने से यह भी पता चलता है कि सूरज अपनी धुरी पर बराबर घूमता रहता है और लगभग २५ दिन में एक चक्कर लगा लेता है। हमारी पृथ्वी अपनी धुरी पर केवल एक दिन और रात में पूरा चक्कर लगा लेती है।

सूरज के धब्बों की संख्या नियमानुसार घटती बढ़ती रहती है। लगभग हर ग्यारहवें बरस उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। उस समय कभी कभी कुछ धब्बे इतने बड़े हो जाते हैं कि नंगी आँख से भी दिखाई देने लगते हैं। किन्तु खूब गाढ़े रंग का या कालिख लगा शीशा लगाए बिना उन्हें देखना आँखों के लिए बहुत खतरनाक है। गाढ़े रंग के शीशे के बदले फ़िल्म के किसी बहुत काले निगेटिव से भी उन्हें देखा जा सकता है। काले निगेटिव किसी भी फ़ोटोगराफ़र के यहाँ से आसानी से मिल सकते हैं।

सूर्य-ग्रहण के समय सूरज के गोले पर चंद्रमा की छाया पड़ती है। उस समय सूरज के वे हिस्से भी दिखाई देने लगते हैं जिनमें प्रकाश कम होता है। ग्रहण के समय सूरज के जिस भाग पर चंद्रमा की छाया पड़ती है उस भाग से लाल लाल लपटें निकलती दिखाई देती हैं। उन लपटों को "रक्त-ज्वालाएँ" कहते हैं। उनके अलावा सूरज के चारों ओर मोतियों के समान झलकती हुई झालर सी दिखाई देती है, जो बहुत सुंदर लगती है। उसे "सूर्य-मुकुट" कहते हैं। पूरा सूर्य-ग्रहण आम तौर से केवल ऐसी जगहों से दिखाई देता है, जहाँ साधारण लोगों की पहुँच बहुत कठिन होती है। लेकिन दुनिया के बड़े बड़े ज्योतिषी

हज़ारों लाखों रुपए ख़र्च करके वहाँ पहुँचते हैं, क्योंकि उन्हीं स्थानों पर पहुँचकर जाँच करने से सूरज के बारे में नई नई बातें जानी जा सकती हैं।

सूरज हमें करोड़ों बरस से गरमी और प्रकाश दे रहा है। फिर भी उसकी गरमी समाप्त नहीं होती। कुछ विद्वानों ने हिसाब लगाकर बताया है कि यदि सूरज़ कोयले का ही बना होता तो अधिक से अधिक छः हज़ार बरस में जलकर राख हो गया होता। इसलिए वह केवल कोयले का बना हुआ नहीं हो सकता। विद्वानों की राय है कि सूरज कोयले के साथ साथ लोहे, सीसे, चूने आदि अनेक पदार्थों से मिलकर बना है। सूरज की प्रचंड गरमी उन्हीं पदार्थों के आपस में रगड़ खाने और जलने से पैदा होती है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि चूँकि सूरज धीरे धीरे ठंढा होकर सिकुड़ रहा है, और सिकुड़ने के कारण उसकी ऊपरी तहें भीतरी तहों से रगड़ खाती हैं, इसलिए उस रगड़ के कारण गरमी पैदा होती है।

सूरज के ऊपर छाई हुई हाइड्रोजन गैस

कुछ भी हो, सूरज के प्रकाश की वैज्ञानिक जाँच से यह निश्चित हो चुका है कि सूरज कई तरह की गैसों का पिंड है। उसकी सतह बहुत गरम है। वहाँ हाईड्रोजन (पानी में पाई जाने वाली गैस) और कैलशियम (चूने

में पाई जाने वाली धातु) वहुत अधिक है। उनके अलावा पृथ्वी पर पाए जानेवाले दूसरे सब पदार्थ भी वहाँ मौजूद हैं। एक वार सूरज में एक नया पदार्थ पाया गया जो उस समय तक पृथ्वी पर कभी नहीं देखा गया था। उसका नाम 'हीलियम' रखा गया, क्योंकि लैटिन भाषा में सूरज को 'हीलियस' कहते हैं। कुछ समय वाद पता चला कि 'हीलियम' एक प्रकार की गैस है जो पृथ्वी पर भी मिलती है। वाद को वह इतनी अधिक पाई जाने लगी कि ज़ैपलिन कहे जानेवाले बड़े वड़े गुव्वारे जैसे हवाई जहाज़ उससे भरे जाने लगे, क्योंकि हीलियम वहुत हल्की गैस होती है और उसमें आग लगने का डर नहीं रहता।

इन सारी बातों का निचोड़ यह है कि सूरज हमारी पृथ्वी से बहुत दूर है। वह सदा अपनी ही धुरी पर घूमता रहता है। उसकी सतह पर कहीं कहीं काले धव्बे दिखाई देते हैं जो बनते विगड़ते रहते हैं। उन धव्बों की चाल और वनावट के आधार पर अनुमान किया जाता है कि सूरज पृथ्वी की भाँति ठोस नहीं है, वल्कि वह तरह तरह की गैसों का एक पिंड है, जिसमें उफनते हुए समुन्दर की तरह हलचल मची रहती है। पृथ्वी पर पाए जानेवाले सभी पदार्थ सूरज पर पाए जाते हैं।

यह सही है कि सूरज के वारे में ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों को अभी पूरी जानकारी नहीं हो पाई है, किंतु उनकी खोज जारी है। वे लोग सूरज की शक्ति से और लाभ उठाने के लिए तरह तरह के प्रयोग कर रहे हैं। सूरज की किरणों से कई तरह के रोगों का इलाज तो बहुत पहले से होता आया है, अब उनसे भाप और बिजली

भी पैदा करने की कोशिश की जा रही है। इन कोशिशों के सफल हो जाने पर धूप की शक्ति से बड़े बड़े कारखाने और इंजन चलाए जा सकेंगे।

चाँद की ओर जितना हमारा ध्यान जाता है, उतना आकाश के और किसी पिंड की ओर नहीं जाता। चाँद रोज़ घटता बढ़ता है। उसका जितना हिस्सा रोज़ घटता या बढ़ता है, उतने हिस्से को एक 'कला' कहते हैं। उसके घटने को कला-क्षय और बढ़ने को कला-वृद्धि कहते हैं। सूरज की तरह चाँद एक समान गोल नहीं दिखाई देता। कारण यह है कि चाँद अपनी चमक से नहीं चमकता। हमें उसका केवल उतना ही भाग दिखाई देता है जितने पर सूरज का प्रकाश पड़ता है।

चाँद हमारी पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है, परंतु वह इस तरह घूमता है कि हमेशा उसका एक ही रुख़ पृथ्वी की ओर रहता है। आज तक कोई भी उसका दूसरा रुख़ नहीं देख सका। पृथ्वी के चारों ओर घूमते समय चाँद की चाल कभी तेज़, कभी साधारण और कभी बहुत धीमी हो जाती है। इसका कोई निश्चित नियम नहीं मालूम हो सका है। इसी कारण ज्योतिषी लोग चंद्र-ग्रहण के सर्वग्रास का समय बिल्कुल सही नहीं बता पाते। दो एक पल का फ़रक़ रह ही जाता है।

चाँद के धब्बे
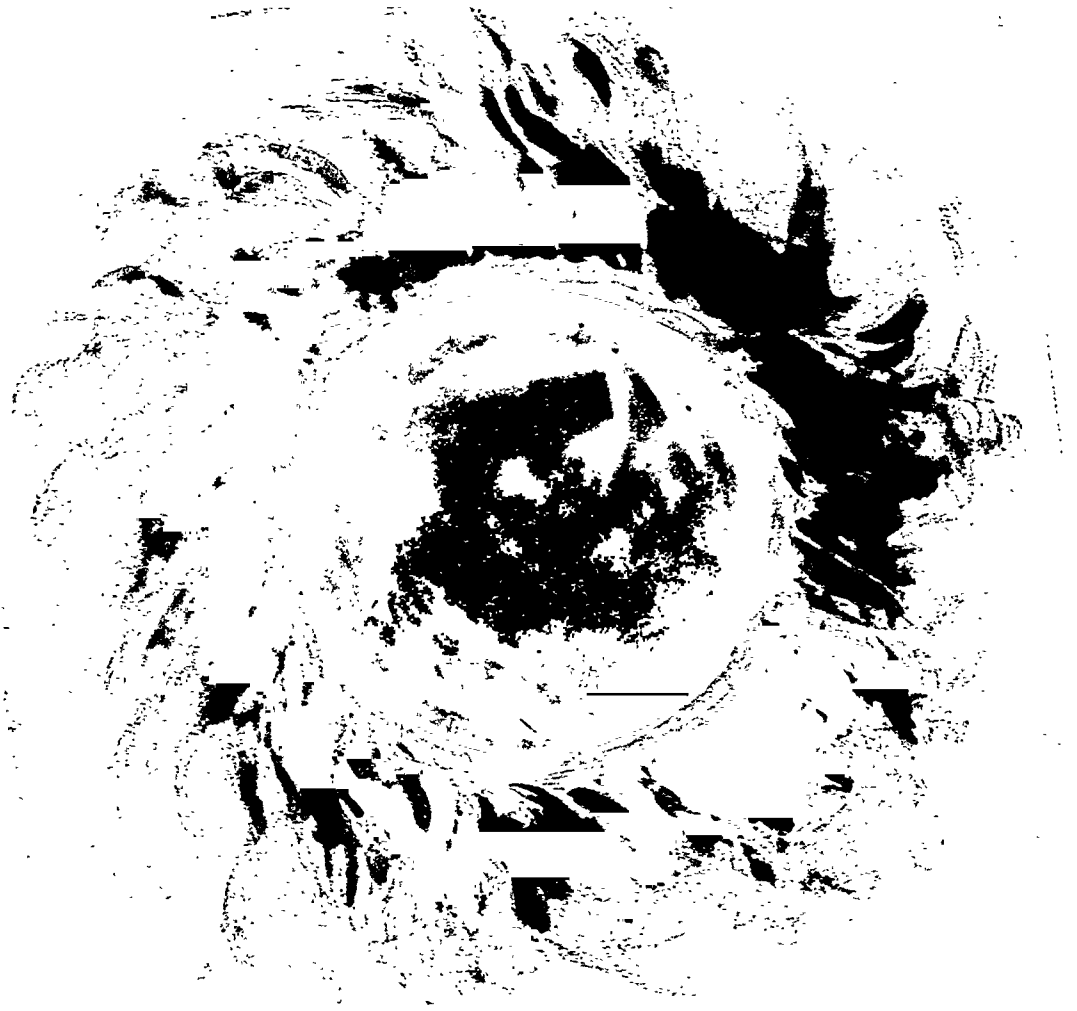
मूर्य—आग का दहकता हुआ गोला
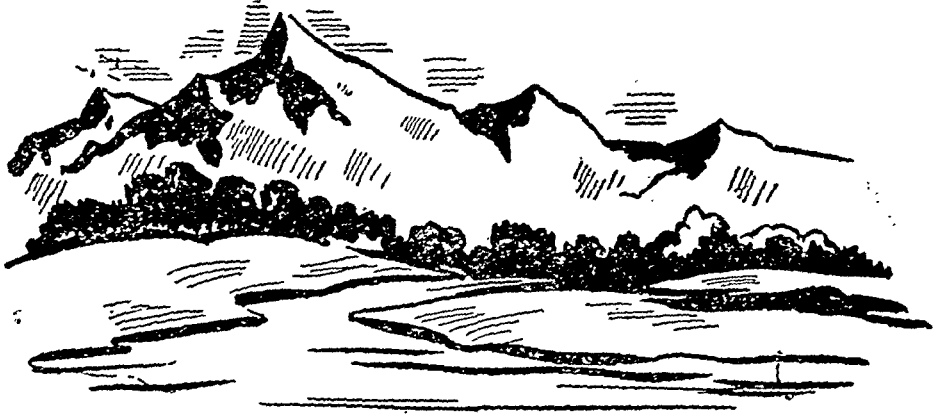
१

हमारी पृथ्वी

यह पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं, एक बहुत बड़ी नारंगी के समान है। इस पर बड़े बड़े पहाड़, नदियाँ, समुद्र, तरह तरह के पेड़-पौधे और पशु पाए जाते हैं। मगर इतनी बड़ी यह पृथ्वी ब्रह्मांड में रेत के एक कण के समान है।

हमारी पृथ्वी के चारों ओर करोड़ों चलते-फिरते, जलते-उबलते सूर्य और दूसरे ग्रह हैं। उन्होंने अरबों वर्ष पहले जन्म लिया था। अब भी वे कुछ तो उसी रूप में और कुछ ठंडे होकर चक्कर लगा रहे हैं। जो सूर्य हमें प्रतिदिन दर्शन देता है उसके सामने भी हमारी पृथ्वी एक छोटी-सी चीज है। यह अच्छा है कि पृथ्वी सूर्य से करोड़ों मील दूर है। यदि वह

कुछ कम दूर होती, तो उसके अग्नि-भंवर में खिचकर इस तरह भस्म हो जाती जैसे भट्टी में एक तिनका।

इस ब्रह्मांड में बहुत से सूर्य ऐसे हैं जो हमारे सूर्य से भी लाखों गुना बड़े हैं। इन बड़े सूर्यों के अलावा आग के दहकते हुए बड़े बड़े बादल भी हैं। यदि हमारी पृथ्वी को इनमें से किसी एक बादल में डाल दिया जाए, तो ऐसा लगेगा जैसे समुद्र में मटर का एक दाना पड़ा हो। हम यह ठीक ठीक सोच भी नहीं सकते कि ब्रह्मांड कितना बड़ा है और उसमें कैसी कैसी अनोखी चीजें हैं।

सूर्य और उसका परिवार

सूर्य हमें अपनी पृथ्वी से बहुत दूर मालूम होता है, मगर उसके प्रकाश को हम तक पहुँचने में कुछ मिनट ही लगते हैं। प्रकाश एक सेकेन्ड में दो लाख मील से कुछ ही कम की चाल से चलता है। लेकिन बहुत से तारे ऐसे भी हैं जिनके प्रकाश को हम तक पहुँचने में सैकड़ों साल लग जाते हैं। अगर रात-दिन चलनेवाली डाकगाड़ी से भी किसी एक तारे की यात्रा की जाए, तो उस तक पहुँचने में करोड़ों साल लग जाएँगे।

तनिक सोचिए तो, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि पृथ्वी बृहस्पति, शुक्र, मंगल और दूसरे कई ग्रहों के साथ हज़ारों मील प्रति मिनट की चाल से सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है। फिर सूर्य तो अपने पूरे परिवार के साथ उससे भी तेज़ चाल से उस खगोल में चक्कर लगा रहा है, जिसका न कोई ओर-छोर है और न जहाँ हवा ही है।

अभी हमने सूर्य के परिवार की चर्चा की है। क्या सूर्य का भी कुटुम्ब हो सकता है ?

जिस तरह मुर्गी अपने बच्चों को लिये-लिये फिरती है, उसी प्रकार सूर्य भी अपने पैदा किये हुए ग्रहों को साथ लिये घूमता है। यही सूर्य का कुटुम्ब है। इसी को सौर-मण्डल कहते हैं।

सौर-मण्डल में सूर्य सब ग्रहों का पिता है। इसलिए हम पहले सूर्य के बारे में कुछ बातें बताएँगे।

सूर्य ने केवल हमारी पृथ्वी ही को पैदा नहीं किया, बल्कि धरती पर जो भी ज़िन्दगी है, वह उसी के कारण है।

सूर्य आग का दहकता हुआ गोला है। वह करोड़ों साल से रात-दिन अपने चारों ओर गर्मी और प्रकाश फेंक रहा है। क्या गर्मी के मौसम में आपने कभी दोपहर में सूर्य की गर्मी सही है? कैसी झुलसा देने वाली होती है? फिर भी सूर्य के प्रकाश और गर्मी के दो अरब भागों में से केवल एक भाग ही पृथ्वी तक पहुँचता है।

सूर्य बहुत बड़ा है। अगर उसे दस लाख टुकड़ों में तोड़ दिया जाय, तो भी उसका हर टुकड़ा पृथ्वी से बड़ा होगा। वह इतना गर्म है कि यदि हमारी पृथ्वी उतनी गर्म हो जाए, तो पृथ्वी और उसकी सारी चीज़ें पिघलकर गैस और हवा बन जाएंगी।

सूर्य ने अपने कुटुम्ब को कैसे पैदा किया? इसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। ग्रहों के जन्म के बारे में बहुत से लोगों ने अटकलें लगाई हैं। पर आजकल सब मानते हैं कि पृथ्वी और दूसरे सभी ग्रह सूर्य से पैदा हुए।

आज से करोड़ों वर्ष पहले सूर्य अकेला ही था। वह बिना किसी ग्रह को साथ लिए आकाश में चक्कर लगा रहा था। अचानक

उससे भी बड़ा एक दूसरा सूर्य घूमता-फिरता उसके पास आ निकला।

यदि वह बड़ा सूर्य हमारे सूर्य के और पास आ जाता, तो दोनों में बड़ी भयानक टक्कर हो जाती और हमारे सूर्य का तो काम ही तमाम हो जाता। लेकिन संयोग की बात, वह बड़ा सूर्य अधिक पास नहीं आया। दोनों सूर्यों में केवल खींचतान होकर रह गई। फिर भी जो ताक़तवर और बड़ा था वह जीता। जो छोटा और कमज़ोर था, वह हार गया।

फल यह हुआ कि हमारे सूर्य की सतह से कुछ गैस एक बड़ी लहर के रूप में उठी और टूटकर सूर्य से इस तरह अलग हो गई, जैसे दो बच्चों के झगड़े और खींचतान में एक का कपड़ा फट कर अलग हो जाए। लेकिन वह बड़ा सूर्य हमारे छोटे सूर्य का फटा कपड़ा, यानी वह गैस जो अलग हो गयी थी, अपने साथ नहीं ले जा सका। वह उसे छोड़ कर आगे बढ़ गया। वह गैस दोनों तरफ़ से खिचने के कारण शकरकन्द की तरह लम्बी हो गई--सिरे पतले, बीच का भाग मोटा। फिर उस गैस ने हमारे सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना शुरू किया।

धीरे धीरे वह गैस ठंडी होती गई और उसमें जगह जगह गाँठें पड़ती गईं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, वे गाँठें ठोस और अधिक ठंडी होती गईं। आख़िर में वे उन ग्रहों में बदल गईं जिन्हें हम सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते देखते हैं। उन्हीं ग्रहों में से पृथ्वी भी एक है।

कहा जाता है कि पृथ्वी और दूसरे ग्रह सूर्य से पैदा हुए हैं। चित्र में दिखाया गया है कि जब एक दूसरा बड़ा सूर्य हमारे सूर्य के पास से निकला, तो कुछ गैस एक बड़ी लहर के रूप में उठी और टूटकर सूर्य से अलग हो गई।

सूर्य और उसका पूरा कुटुम्ब एक ही तरह चक्कर लगाता है। उनकी चाल के नियम भी एक जैसे हैं। जहाँ तक मालूम हो सका है, सबके सब एक ही प्रकार के पदार्थ से बने हैं। हो सकता है कि वे छोटे-बड़े, नये-पुराने हों, पर सूर्य के सिवा सभी देखने में लगभग एक-जैसे लगते हैं। वे सब सूर्य के चारों ओर एक ही दिशा में घूमते रहते हैं।

सूर्य से पैदा इन बड़े-बड़े ग्रहों की संख्या ९ है। छोटे छोटे तो अगणित हैं जो दिखाई भी नहीं पड़ते। ९ बड़े ग्रहों के नाम हैं:—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, वरुण (यूरेनस), वारुणी (नेपच्यून) और यम (प्लुटो)। उनमें से कुछ पृथ्वी से भी बड़े हैं। पर वे सभी सूर्य से बहुत छोटे हैं।

अन्य ग्रह सूर्य से कितने छोटे हैं?
यदि बड़े गोले को सूर्य मान लिया जाय तो अन्य ग्रह कितने छोटे होंगे। इस प्रकार मंगल, बुध और यम बिन्दु मात्र होंगे।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक चक्कर ३६५$\frac{१}{४}$ दिनों में पूरा करती है। हम इस अवधि को एक वर्ष कहते हैं। इसी प्रकार सब ग्रह अलग अलग अवधि में सूर्य के चारों ओर अपना-अपना चक्कर पूरा करते हैं। इसलिए किसी ग्रह का साल छोटा होता है, किसी का बड़ा।

बुध और शुक्र दो ऐसे ग्रह हैं जो पृथ्वी के मुक़ाबले में सूर्य से अधिक नजदीक हैं। बुध सूर्य के सबसे ज्यादा क़रीब है, फिर भी वह सूर्य से ३ करोड़ ६० लाख मील दूर है। वह सूर्य का एक चक्कर केवल ८८ दिन में पूरा कर लेता है, यानी उसका साल केवल ८८ दिनों

का हुआ। उसके बाद शुक्र आता है जो सूर्य से ६ करोड़ ७० लाख मील दूर है। वह एक चक्कर २२५ दिनों में पूरा कर लेता है, इसलिए शुक्र का साल २२५ दिनों का हुआ। तीसरा नम्बर पृथ्वी का है। वह सूर्य से ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है और एक चक्कर ३६५¼ दिनों में पूरा करती है। मंगल, बृहस्पति, शनि, वरुण, वारुणी और यम सूर्य से और भी दूर हैं। इसलिए वे सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में अधिक समय लेते हैं, यानी उनके साल की अवधि भी ज्यादा होती है। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि यम नाम का ग्रह जो सबसे छोटा है, अपना एक चक्कर लगभग २४८ वर्षों में पूरा करता है, यानी उसका एक वर्ष हमारे २४८ वर्षों के बराबर है। वह सूर्य से ३ अरब ६७ करोड़ मील दूर है।

इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि हमारे सूर्य का परिवार कितनी बड़ी जगह में फैला हुआ है।

पृथ्वी और उसकी बनावट

क्या आप जानना चाहते हैं कि पृथ्वी सचमुच कितनी बड़ी है? तो सुनिये। हमारी पृथ्वी इतनी बड़ी है कि अगर आप मोटर पर ३०० मील रोज़ के हिसाब से चलें, तो पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर लगाने में लगभग तीन महीने लगेंगे। यानी पृथ्वी का घेर लगभग २५,००० मील है। इसी प्रकार उसके आर-पार की लम्बाई कोई ८,००० मील है।
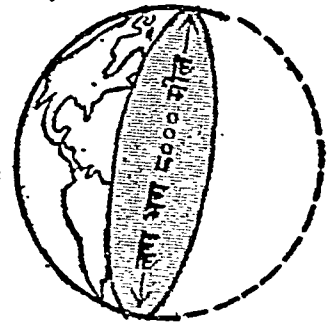
पृथ्वी का घेर लगभग २५,००० मील है और आर-पार की लम्बाई लगभग ८,००० मील।

यह हाल तो पृथ्वी के बड़े होने का है, उसका वज़न तो इतना है कि उसे सोचकर ही बुद्धि चकरा जाती है। कोई हज़ार दो हज़ार टन कोयले या मिट्टी का ढेर तो है नहीं जिसे आप आँख से देख लें या हिसाब लगा लें। पृथ्वी का भार ६,५७०,००००००,०००,०००,०००,००० टन है।

अगर आप पहाड़ियों और गड्ढों का विचार न करें और पृथ्वी पर दृष्टि डालें, तो वह चिपटी जान पड़ेगी। पर असल में पृथ्वी गोल है। सेब या नारंगी की तरह कह लीजिये, दोनों सिरों पर कुछ-कुछ चिपटी। उसके गोल होने के बहुत से प्रमाण हैं। पहला तो यह कि अगर किसी जगह से सीधे चलना शुरू करें, तो कुछ समय बाद पृथ्वी का पूरा चक्कर काटकर उसी
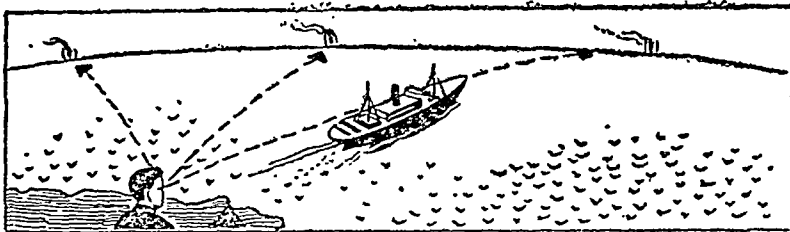
जगह आ जाएँगे, जहाँ से चले थे। दूसरे, यदि आप समुद्र के किनारे खड़े होकर दूर से आनेवाले जहाज़ को देखें, तो सबसे पहले जहाज़ का मस्तूल दिखाई देगा, फिर बीच का भाग और अन्त में निचला भाग। यदि पृथ्वी चिपटी होती, तो सारा का सारा जहाज़ एक साथ दिखाई दे जाता।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर तो घूमती ही है; साथ ही वह लट्टू की तरह अपनी धुरी पर भी घूमती है। इसीलिए पृथ्वी के उस हिस्से में दिन होता है जो सूर्य के सामने रहता है। जो सामने नहीं रहता, वहाँ रात होती है। लट्टू की तरह चक्कर
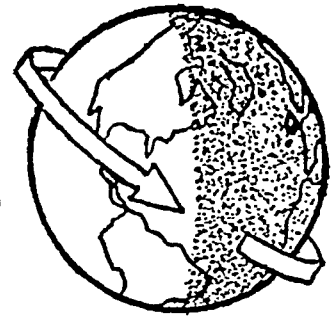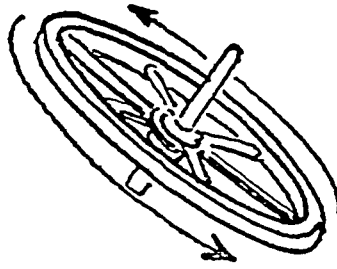
पृथ्वी अपनी धुरी पर एक पहिये की तरह घूमती हैं। इससे दिन और रात होते हैं।
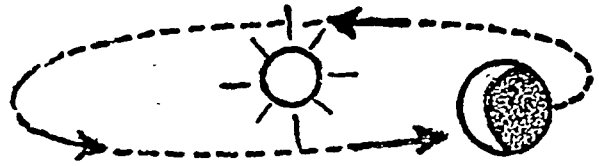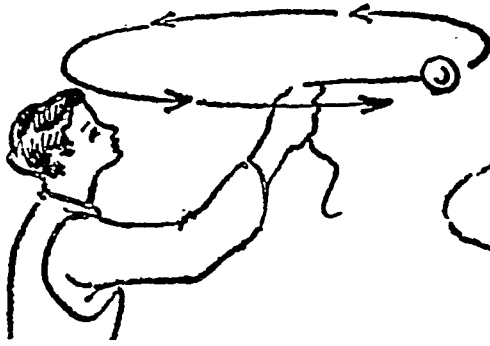
पृथ्वी सूर्य के चारों ओर इस प्रकार घूमती है जिस प्रकार एक पत्थर रस्सी के सिरे पर बांधकर घुमाया जाये। इससे मौसम होते हैं।

लगाने से पृथ्वी का हर भाग बारी बारी से सूर्य के सामने आता रहता है। रात के बाद दिन और फिर दिन के बाद रात का क्रम चलता रहता है।
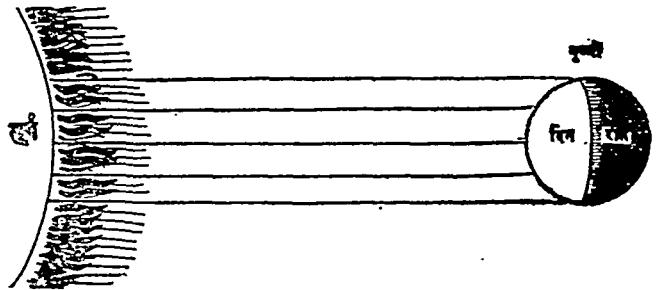
पृथ्वी का जो हिस्सा सूर्य के सामने होता है, वहाँ दिन होता है और जो सामने नहीं होता, वहाँ रात होती है।

पृथ्वी किस चीज की बनी है और उसमें क्या है ?

पृथ्वी का अधिक भाग चट्टानों और धातुओं से बना है। उसके ऊपरी भाग पर मिट्टी की एक चादर बिछी है, इस चादर की मोटाई कुछ इंचों से लगाकर कई फुट तक हो सकती है। इसके धरातल पर बहुत से गड्ढों में पानी भरा है, जिनसे झीलें और समुद्र बने हैं।

मिट्टी की चादर के नीचे पृथ्वी में तीस से लेकर पचास मील की गहराई तक ठोस चट्टानें हैं। उन ठोस चट्टानों और उनके साथ के धरातल की मिट्टी और पानी की चादरों को 'पृथ्वी का छिलका' कहते हैं। उस छिलके के नीचे पृथ्वी की और भी कई परतें हैं।

हम जैसे जैसे पृथ्वी के अन्दर जाते हैं, वैसे वैसे गर्मी बढ़ती जाती है। हर ६० या ६५ फ़ुट की गहराई पर तापमान एक डिग्री बढ़ जाता है। इस हिसाब से १० से लेकर ५० मील की गहराई पर, यानी 'पृथ्वी के छिलके के नीचे', इतनी गर्मी होनी चाहिए कि वहाँ सब चीजें पिघल जाएँ। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि इस गहराई में केवल गर्मी ही नहीं है, बल्कि 'पृथ्वी के छिलके' का दबाव भी पड़ रहा है। यह दबाव हर वर्ग इंच पर ?,५०,००० पौंड है। जब दबाव इतना अधिक हो, तो चीजें पिघल नहीं सकतीं। इसीलिए पृथ्वी में ६०० मील की गहराई तक जो पदार्थ मिलते हैं, वे गर्म होने पर भी पिघले नहीं होते। पृथ्वी के भीतर ५० मील की गहराई के बाद ६०० मील नीचे तक जो हिस्सा पड़ता है उसको हम पृथ्वी की 'बाहरी परत' कह सकते हैं।

छः सौ मील की गहराई के बाद पृथ्वी की 'बीच की परत' आती है। इसमें अधिकतर लोहा, दूसरी बहुत सी धातुएँ और पथरीले पदार्थ हैं।

पृथ्वी के बीचो-बीच 'पृथ्वी की गुठली' है। इस पर पृथ्वी की सब परतों का दबाव पड़ रहा है। यह दबाव हर वर्ग इंच पर ४½ करोड़ पौंड
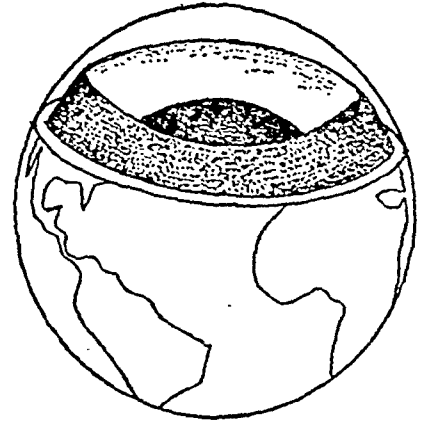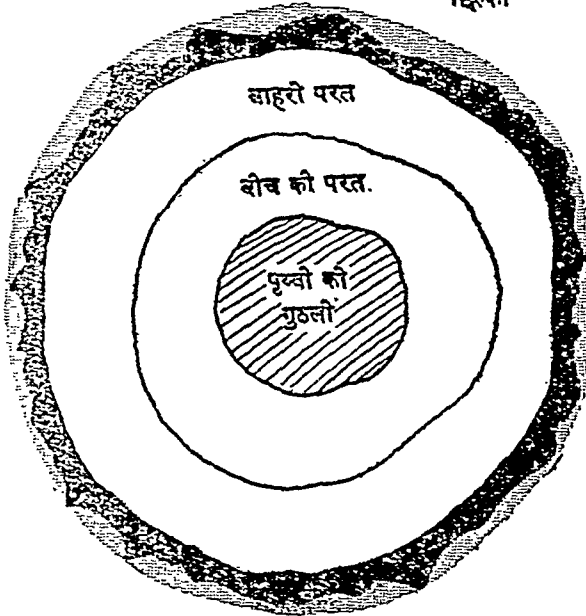
कहा जाता है कि जब पृथ्वी ठंडी हुई, तो सबसे भारी गैस और दूसरी वस्तुओं से पृथ्वी की गुठली बन गई, उससे हल्की वस्तुओं से बीच की परत बनी और सबसे हल्की वस्तुओं से पृथ्वी का छिलका बना।

है। वैज्ञानिकों का विचार है कि यह "गुठली" लोहे और गिलट की बनी है, क्योंकि हम जितनी धातुएँ जानते हैं, उनमें वे ही सब से भारी हैं।

आप पूछ सकते हैं कि हमें पृथ्वी का यह सब हाल कैसे मालूम हुआ ? इतनी गहराई तक कुएँ या सुरंगें तो खोदी नहीं जा सकतीं। बात यह है कि ज्वालामुखी पहाड़ पृथ्वी के सैकड़ों मील अन्दर की धातुएँ और चट्टानें धरती पर उगलते रहते हैं। उन पिघले हुए पदार्थों को हम लावा कहते हैं। उन्हें देखकर हम पृथ्वी के अन्दर की बहुत सी बातें जान सकते हैं। इसके अलावा भूकम्प बताने का एक यन्त्र होता है। वह हमें बताता है कि भूकम्प की लहरें पृथ्वी के किन-किन भागों से आई हैं और वे भाग किन-किन पदार्थों के बने हैं।

आप जानते हैं कि पृथ्वी का धरातल सब जगह समान नहीं है। जब आप कहीं की यात्रा करते हैं, तो पहाड़, मैदान, नदियाँ, झीलें, समुद्र, दलदल, चौड़ी वादियाँ, सँकरी घाटियाँ, रेगिस्तान और जंगल, यानी भाँति-भाँति की चीजें देखते हैं। ये सब चीजें पृथ्वी पर सदा से नहीं हैं और न अचानक हो गई हैं। वे बनती और बिगड़ती रहती हैं और उन्हें उन बड़ी शक्तियों ने जन्म दिया है, जो दिन-रात ज़मीन की तोड़-फोड़ में लगी रहती हैं। सबसे पहले हम यह देखें कि आरम्भ में पृथ्वी का धरातल कैसा था।

शुरू में पृथ्वी सूर्य के समान बहुत गर्म थी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, वह ठंडी होती गई और उसका ऊपर का छिलका कड़ा होकर चट्टान बन गया। उस समय सब तरफ़ चट्टानें ही चट्टानें थीं। मगर जीवन के लिए मिट्टी की जरूरत थी। इसलिये अभी उन चट्टानों को पिसकर मिट्टी बनना बाकी था। परन्तु उन्हें पीसता कौन ?

आपने यह कहावत सुनी होगी कि 'प्रकृति की चक्की बहुत धीरे धीरे पीसती है, लेकिन बहुत बारीक पीसती है।' प्रकृति की चक्की ने पीसना आरम्भ किया। वर्षा और हवाएँ, बर्फ़ और ओले यानी प्रकृति के बहुत से कर्मचारी पहाड़ों और चट्टानों को तोड़ते-फोड़ते, घिसते-पीसते रहे और मिट्टी बनती रही।

पृथ्वी का छिलक कड़ा हुआ, तो ठंडा होकर सिकुड़ने भी लगा। उसमें जगह जगह झुर्रियाँ और सिलवटें पड़ने लगीं। वे सिलवटें ही बड़े बड़े पहाड़ बन गईं। कहीं कहीं ज़मीन
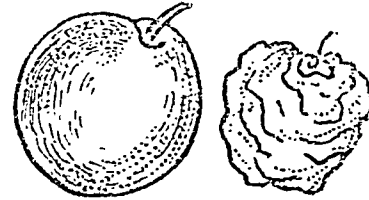
पृथ्वी ठंडी हुई तो उसमें सूखे सेव की तरह झुर्रियाँ पड़ गईं। इस प्रकार पृथ्वी पर पहाड़ बन गए।

गई और उसकी बड़ी बड़ी दरारों में से भाप और लावे की धाराएं बह
कलीं। पृथ्वी के भीतर का गर्म पदार्थ पृथ्वी का खोल या परतें तोड़-
ड़ कर निकलता रहा। हर जगह ज्वालामुखी पहाड़ों ने राख और गैस
ालनी शुरू की। आकाश धूल और राख के बादलों से भर गया।

पृथ्वी से निकली हुई गैस पृथ्वी के चारों ओर गिलाफ़ की तरह
पटती चली गयी और इस प्रकार
ु-मण्डल बन गया। भाप के
दलों ने पानी बरसाना शुरू
या, तो जल-थल एक हो गए।
र वह सब पानी नदी-नालों से
कर बड़े बड़े गड्ढों में जमा
ा, तो दुनिया के समुद्र बने और
ल के बड़े बड़े भाग महाद्वीप
ा गए। पहाड़ों की चोटियों पर
र्फ जम गई और वहाँ से नदियाँ
ुद्र की ओर बह निकलीं।

कहा जाता है कि जब पृथ्वी बन रही थी तो उसका धरातल बहुत गर्म और उजाड़ था। ज्वालामुखी पर्वत बहुत थे। गर्मी के कारण सारा पानी भाप बन गया था और राख के बादल आकाश पर छाए हुए थे। उस समय पृथ्वी पर कोई जीव न था।

करोड़ों वर्षों तक यह तोड़-फोड़ जारी रही। ज्वालामुखी पहाड़ियाँ
खती-चिल्लाती और लावा उगलती रहीं। पृथ्वी का धरातल तड़प तड़प
र करवटें बदलता रहा। पहाड़ बनते रहे और चट्टानें पिस पिस कर
ट्टी बनती रहीं। इस उथल-पुथल में कई बार ऐसा हुआ कि समुद्रों में से
वे ऊँचे पहाड़ निकल पड़े और सूखी धरती बड़े बड़े समुद्रों के पेट में समा
ई।

बहुत समय के बाद जब पृथ्वी का खोल काफ़ी कड़ा हो गया, तो ज्वालामुखियों का आग उगलना भी कम हो गया और उसीके साथ साथ धरातल पर अचानक उलटफेर और परिवर्तन भी कम हो गए। फिर भी परिवर्तन होते रहे। आग, पानी, हवा, पाला और जीव पृथ्वी के धरातल को तोड़ते-फोड़ते रहे।

प्रकृति के ये कर्मचारी आज भी अपने-अपने काम में लगे हुए हैं। नदियां अपने साथ मिट्टी बहा-बहा कर ले जाती हैं और समुद्र में डालती रहती हैं। समुद्र अपने किनारों को काटता रहता है। हवाएँ करोड़ों मन मिट्टी इधर उधर करती रहती हैं। धरती का कोई न कोई भाग बहुत धीरे धीरे उभरता रहता है। कौन जाने, कोई ज्वालामुखी किस समय और कहाँ फट पड़े और सब कुछ उलट-पलट डाले?

वायु-मंडल

जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर बहुत सी परतें या खोल हैं, उसी प्रकार उसके ऊपर हवा का एक गिलाफ़ भी चढ़ा है। जिस प्रकार मछलियां समुद्र की तह में रहती हैं, उसी प्रकार हम भी हवा के बहुत बड़े समुद्र की तह में रहते हैं। यह हवा बहुत सी गैसों से मिलकर बनी है। अगर हवा न होती, तो धरती पर कोई प्राणी न होता। हवा पृथ्वी के चारों ओर कई सौ मील मोटे कम्बल की तरह लिपटी हुई है और मिट्टी-पानी की तरह पृथ्वी के साथ साथ घूमती है।

हवा बहुत हल्की चीज़ है। समुद्र के धरातल पर एक घन फुट, यानी एक फुट लम्बी, एक फुट चौड़ी और एक फुट ऊँची, हवा का भार एक औंस या करीब आधी छटाँक है। हम जितना ऊपर जाते हैं, हवा का

गुब्बारे में मनुष्य की सबसे ऊँची उड़ान
७२३९५ फ़ुट

हवाईज़हाज की सबसे ऊँची उड़ान
५६०४६ फ़ुट

हवा की दूसरी परत

गुब्बारे की उड

हवाई जहाज की उड़ान

सबसे ऊँचे बादल

हवा की पहली परत

एवरेस्ट की चोटी
२९००२ फ़ुट
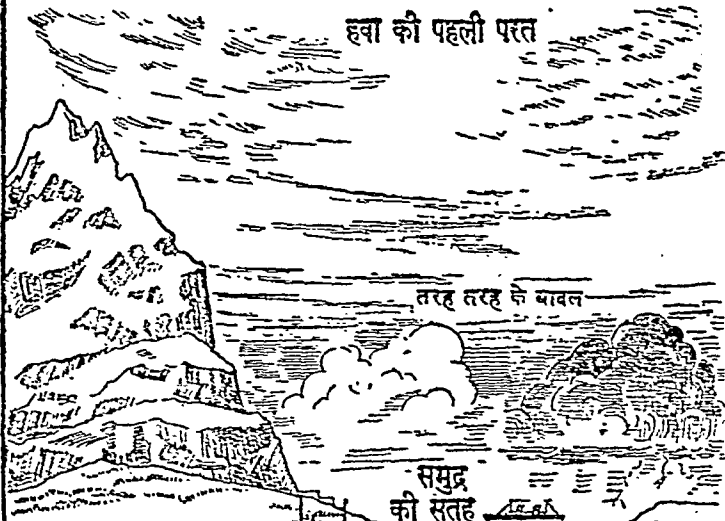
तरह तरह के बादल

समुद्र की सतह

आदमी ४२० फ़ुट तक डुबकी लगा सकता है।
पनडुब्बी नाव ६०० फ़ुट तक डुबकी लगा सकती है।
सबसे गहरी खान ९००० फ़ुट
सबसे गहरा तेल का कुआं १६००० फ़ुट

आदमी की डुबकी

पनडुब्बी नाव

पृथ्वी की औसत ऊँचाई ६२५ फ़ुट

सबसे गहरी खान

समुद्रों की औसत गहराई २½ मील

सबसे गहरा तेल का कुआं

समुद्र की अधिक से अधिक गहराई लगभग पौने सात मील

भार भी उतना ही कम होता जाता है। हवा कितनी ही हल्की क्यों न हो, उसकी मात्रा इतनी ज्यादा है कि पृथ्वी पर उसका भारी दबाव पड़ता ही रहता है।

समुद्र के धरातल पर हवा का दबाव १४·७ पौंड प्रति वर्ग इंच होता है। हवा का दबाव हम पर भी पड़ता है, लेकिन हम उससे कुचल नहीं जाते, क्योंकि वह दबाव हर दिशा में बँटा होता है। जितना दबाव हमारे शरीर के बाहर होता है, उतना ही हमारे शरीर में भी होता है। हाँ, अगर हम बहुत ऊँचाई पर चले जाएँ, जहाँ हवा का दबाव काफ़ी कम हो जाता है, तो शरीर में खून के अधिक दबाव के कारण कान और नाक से खून बहने लगेगा।
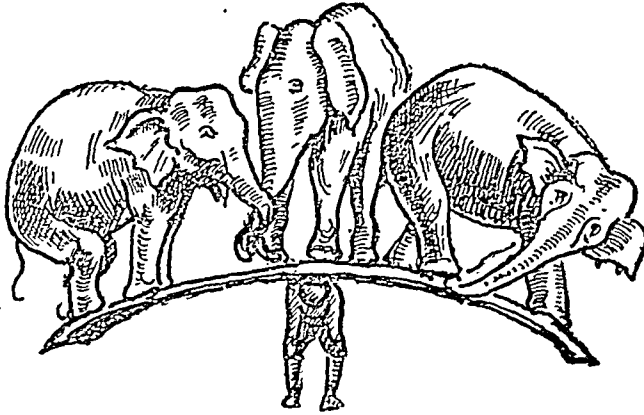
किसी आदमी के लिए पीठ पर तीन हाथियों का भार लेकर चलना असम्भव है, परन्तु प्रत्येक आदमी अपनी पीठ पर तीन हाथियों के भार के बराबर वायु का दबाव लिए फिरता है और उसे यह भार मालूम भी नहीं होता।

पृथ्वी की तरह वायु-मंडल को भी हम कई परतों में बाँट सकते हैं। सबसे निचली परत जो पृथ्वी से मिली हुई है, 'घूमनेवाली परत' कहलाती है। इस परत में हवा हमेशा चलती रहती है। हम इसी परत या खोल में रहते और साँस लेते हैं। जलवायु और मौसमों का सम्बन्ध भी इसीसे है। यह परत आठ-दस मील मोटी है। इसमें मिट्टी, धूल, भाप और बादल मिलते हैं।

इस घूमनेवाले खोल के ऊपर एक और खोल है जिसकी मोटाई ५० मील है। उस खोल के बीच में 'ओज़ोन-गैस' की एक मोटी परत है। वह सूर्य से आनेवाली अति-बैंगनी किरणों को अपने में सोख लेती है। वे किरणें बहुत तेज़ होती हैं। यदि यह गैस इन किरणों को न सोख ले, तो पृथ्वी के सारे प्राणी मर जाएँ।

उस दूसरे खोल के ऊपर हवा का तीसरा और आख़िरी खोल है। उसकी मोटाई ६५० मील है। यही वह खोल है जिसमें रेडियो की लहरें यात्रा करके दुनिया के हर भाग में पहुँच जाती हैं।

२

सभ्यता के उदय तक

बड़े-बूढ़े सदा से यह कहते आये हैं कि उनके बचपन में दुनिया की हालत कुछ और थी, अब कुछ और है। यह बात ठीक है। जीवन बदलता रहता है और बदलता रहेगा। जबसे आदमी दुनिया में आया, तबसे जीवन इतना बदल गया है कि उसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। कभी आदमी बनमानुसों की कुछ जातियों से बहुत भिन्न न था। वह जानवरों की भाँति अपना जीवन बिताता था। आज उसकी चौमुखी प्रगति देखकर सिर चकरा जाता है। कहाँ वह भयानक जंगली जीवन और कहाँ आजकल के शहरों की चहल-पहल, बिजली का प्रकाश, मोटर, रेल, हवाई-जहाज और वे सब सुविधायें जो आदमी का जीवन आनन्दमय बनाती हैं।

इस उन्नति का कारण यह है कि आदमी सोच सकता है और सोचता रहता है। उसकी कहानी इसी सोचने, समझने और समझकर काम करने की कहानी है।

विद्वानों का मत है कि बच्चा आरम्भ में मस्तिष्क से नहीं अपने हाथों से सोचता और समझता है। इसीलिये वह जिस चीज़ को देखता है, उसकी ओर हाथ बढ़ाता है और उसे छूना चाहता है, चाहे वह किसी आदमी का मुंह हो, या कोई फूल हो, या आग का अंगारा हो। आदमी की कहानी इससे आरम्भ होती है कि उसके हाथ थे। आदमी आदमी न होता यदि उसके हाथ न होते।

पहले मनुष्य की आँखें पेड़ों के फलों को देखती होंगी। उन्हें वह हाथों से तोड़कर खाता होगा। आँखें पौधों को भी देखती होंगी। हाथ उन्हें उखाड़कर उनकी कोमल जड़ों को ज़मीन से निकाल लेते होंगे। पशुओं की भाँति आदमी के जीवन का सारा समय भोजन की खोज में बीतता होगा। परन्तु उसके हाथों ने बताया होगा कि कुछ काम ऐसे हैं, जिन्हें वह नहीं कर सकता। उधर वे काम इतने जरूरी थे कि उनके बिना उसका जीना कठिन था। काटने, खुरचने,

छीलने और खोदने का काम आदमी के हाथ नहीं कर सकते थे। इससे दो बड़ी हानियाँ थीं। एक तो यह कि आदमी पशुओं से और दूसरे आदमियों से अपना बचाव नहीं कर सकता था। दूसरे वह फलों, जड़ों और कुछ छोटे पशुओं के सिवा और कुछ नहीं खा सकता था।

आदमी ने अपने ही हाथों से यह बात जानी कि एक चीज दूसरी से अधिक मजबूत होती है। मोटी लकड़ी पतली से और पक्की लकड़ी कच्ची से अधिक मजबूत होती है। पत्थर सूखी लकड़ी से
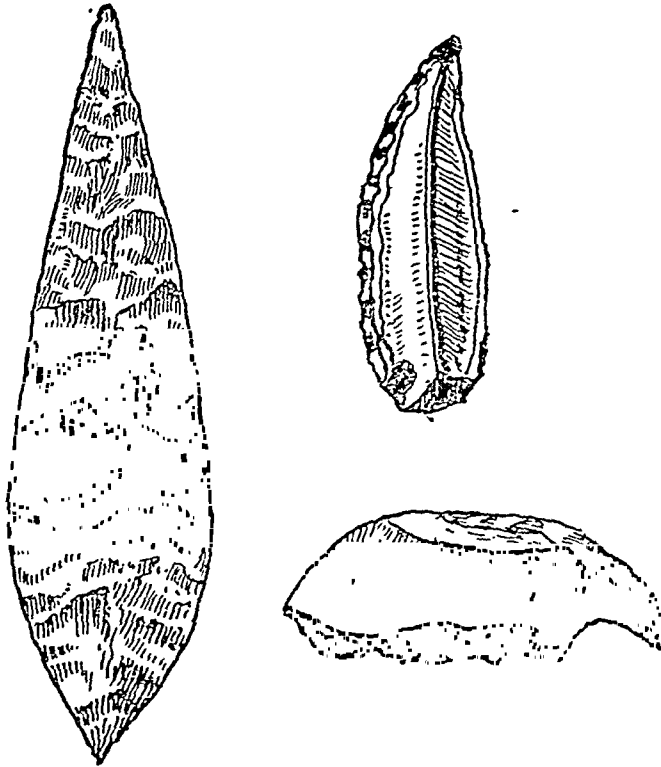
अधिक मजबूत होता है और कुछ पत्थर ऐसे भी होते हैं जिन्हें दूसरे पत्थरों से तोड़ा जा सकता है। इस प्रकार आदमी ने पहले ऐसे औजार बनाये

जिनसे वह काटने, खुरचने, छीलने और खोदने का काम ले सकता था। इस तरह औज़ार आदमी के हाथों के सहायक बन गये।

सर्द रातों में आदमी को गर्मी की आवश्यकता महसूस होती होगी।

दिन बीतने पर जंगलों के रास्ते शिकार से लौटते समय कभी-कभी वह देखता होगा कि पेड़ों में अकस्मात् आग लग जाती थी। वह अपने दैनिक कामों में बड़े पत्थर से छोटे पत्थर को तोड़ते हुए उनकी रगड़ से आग की चिनगारियाँ छिटकती भी देखता होगा। इन दोनों चीज़ों को देखकर उसने जाना और सीखा कि पत्थरों को रगड़कर आग और गर्मी पैदा की जा सकती है। आग आसानी से पैदा न होती थी। इसलिए उसे एक बार जलाने के बाद बुझने न दिया जाता था। जहाँ आग जलती थी, वहाँ जंगली जानवर न आते थे। वहाँ मांस भूना जा सकता था और जाड़ों में गर्मी पैदा की जा सकती थी। इस तरह आग की जानकारी ने आदमी के रहन-सहन को बहुत कुछ बदल दिया।

तेज बरसात, बर्फ़ीली और गर्म हवाओं से बचने के लिए आदमी ने ऐसी गुफ़ाएँ ढूंढीं, जिनमें वह

बराबर रह सके और जिनके दरवाज़ों पर आग जलाकर खतरनाक जंगली जानवरों से अपनी रक्षा कर सके। इस तरह आदमी पेड़ों तथा उनके तनों के खोखलों की बजाय गुफ़ाओं में रहने लगा।

यह युग, जब आदमी पत्थर के औज़ार बनाने लगा और गुफ़ाओं में रहने लगा, 'पत्थर का पुराना युग' कहलाता है।

इस पड़ाव से गुज़रने में आदमी को हज़ारों वर्ष लग गये। इन हज़ारों वर्षों में एक बार ऐसा हुआ कि संसार में सर्दी अचानक बढ़ गई। बीच के भाग के सिवा सारी धरती बर्फ़ से ढक गई। फिर सर्दी कम हुई, बर्फ़ पिघली और बड़े-बड़े जंगल उग आये। संसार में चार बार बर्फ़ का दौर आया और गया। उसके बाद आदमी की दशा बिल्कुल बदली हुई थी।

झुंड में रहने का स्वभाव तो आदमियों में बहुत पुराना है। जब उन्होंने पौधे उगाने शुरू किये, तो कई परिवार एक साथ रहने लगे। इस प्रकार सामाजिक जीवन की नींव पड़ी। उन्होंने समझा कि साथ रहने से लाभ तभी होगा जब काम का बँटवारा कर लिया जाय। इससे कारीगरी और उन कारीगरियों को काम में लानेवाले पैदा हुए। उन्होंने यह भी समझा कि जब आदमी साथ रहें और उनमें काम का बँटवारा हो, तो कोई ऐसा भी होना चाहिए जो सबसे वे नियम मनवाए, जिन्हें सब उपयोगी मानते हों। इसलिये उन्होंने अपने झुंड या समूह के सबसे बड़े बुज़ुर्ग या सबसे अधिक ताक़तवर आदमी को अपना नेता या सरदार माना; जो समय पड़ने पर उन्हें राय देता था, उनका झगड़ा निपटाता था। सरदार की बात सभी मानते थे। वह जैसा चाहता था गिरोह के लोग वैसा ही करते थे।

सरदार का काम केवल यहीं तक सीमित न था बल्कि दवादारू और जादू-मन्तर के काम भी वही करता था। आगे चलकर जब आदमी खेती करना सीख गया तब उसे अपने खेतों और घरेलू जानवरों की हिफ़ाज़त के लिये कानून-कायदों तथा इन्साफ़ की ज़रूरत पड़ी और झुंड या क़बीले के सरदार की ताक़तें बढ़ती गईं। इस प्रकार राज्य और राजनीति का आरम्भ हुआ।

आदमी ने देखा कि कुछ बातें बराबर होती रहती हैं। सूरज निकलता है, डूबता है, और फिर निकलता है। एक विशेष समय पेड़ों में नई कोंपलें निकलती हैं, फूल-फल आते हैं, पत्तियां झड़ जाती हैं। गर्मी होती है, सर्दी होती है, फिर गर्मी होती है। इस प्रकार उसने अपने स्वभाव और रहन-सहन को धीरे-धीरे इस जगत की बदलती हुई चीज़ों के अनुसार बदलना सीखा। उसने यह भी देखा कि आदमी पैदा होते हैं फिर मरते हैं। इस बात ने उसके मन में वे विचार पैदा किये होंगे जिन्होंने धीरे-धीरे धर्म का रूप लिया।

अनुभव से आदमी ने यह भी समझा कि जंगली फलों और जंगली जानवरों के मांस पर जीवन बसर करना असम्भव है। उसने यह देखा था कि पेड़ों और कुछ पौधों के फलों में बीज होते हैं। जब वे ज़मीन पर गिरते हैं, तो उनसे नये पौधे पैदा होते हैं। सो उसने बीजों को इकट्ठा करके बोना आरम्भ कर दिया।

भोजन के लिये अक्सर खाने भर से अधिक जानवर इकट्ठे हो जाते होंगे। मरे पशुओं का मांस जल्दी सड़ जाता होगा। इसलिये उन्हें अगले ही दिन खा लिया जाता होगा। घायल पशुओं को बचाकर उस

दिन के लिये रखा जाता होगा जिस दिन कोई शिकार न मिले। ऐसे जानवरों में से कुछ ऐसे होते होंगे जिनका रखना कठिन होता होगा और कुछ ऐसे जो आसानी से रखे जा सकते होंगे। इस प्रकार मनुष्य ने अनुभव से यह जाना होगा कि किन पशुओं को रखना चाहिए और किन्हें नहीं। रखे जानेवाले जानवरों में बहुतेरे कई-कई दिनों या हफ़्तों तक रह जाते होंगे। उस बीच आदमी ने मादा पशुओं के बच्चों को अपनी माँ का दूध पीते भी देखा होगा। उस दूध को मनुष्य ने भी चखा होगा। इस तरह उसने मीठे और अधिक दूध देनेवाले पशुओं को पहचाना और उन्हें
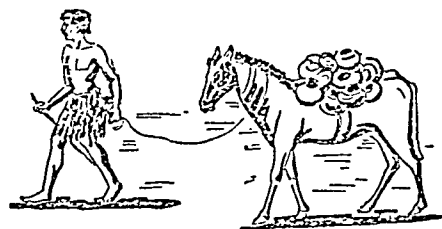
अधिक चावसे रखना शुरू किया। धीरे धीरे मनुष्य ने नर-पशुओं की उपयोगिता भी पहचानी और उन्हें बोझ आदि ढोने के काम में इस्तेमाल किया।

खेती के लिये आदमी ने पानी की जरूरत भी महसूस की। उसकी वह जरूरत उसे नदियों के किनारे ले आई। नदियों के किनारे के मैदानों में फ़सल को अच्छी होते देखकर आदमी ने वहीं रहना
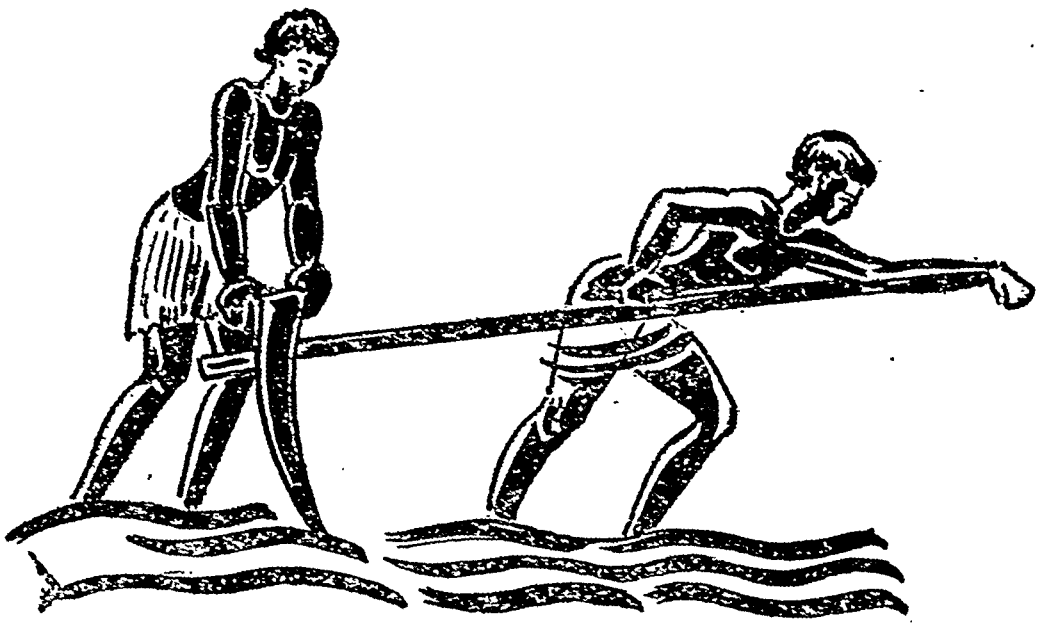
मुनासिब समझा। धीरे-धीरे आदमियों के ज्यादातर गिरोह नदियों के किनारे ही बसने लगे।

इस तरह आदमी ने अपना सामाजिक जीवन शुरू किया। अपना बचाव करना, खेती करना, औज़ार, बर्तन और दूसरी जरूरत की चीज़ें बनाना समाज के अलग-अलग लोगों में बांट दिया गया। इसी युग को 'पत्थर का नया युग' कहते हैं। अनुमान है कि यह युग अबसे दस-बारह हज़ार साल पहले आरम्भ हुआ होगा।

उस युग के पदार्थ संसार के अलग-अलग भागों में मिले हैं। उनसे पता चलता है कि आदमी ने उस समय तक कितनी उन्नति कर ली थी।

पत्थर के औज़ार अब सुघड़ और पहले की अपेक्षा बहुत अधिक काम के होने लगे थे। मिट्टी के बर्तन बनने लगे थे और आदमी बस्तियों में रहते थे। इन बस्तियों की रक्षा का प्रबन्ध था और यह बस्तियाँ काम के बँटवारे के कारण अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी कर लेती थीं।

काम का बँटवारा हो जाने के कारण लोग अपने-अपने काम में अधिक कुशल हो सकते थे। औज़ार बनानेवालों ने पत्थर से अच्छी चीज़ की खोज में धातुओं का पता लगा लिया था। वे ताँबे और काँसे की चीज़ें बनाने लगे थे। पत्थर और धातुओं का काम करनेवालों में से कुछ ने सुन्दर पत्थरों के और कुछ ने सोने-चाँदी के गहने बनाने शुरू कर दिये थे। मिट्टी से बर्तन बनानेवाले चाक से काम लेते थे। इस प्रकार बहुत सुडौल बर्तन बनने लगे थे।

आदमियों में अच्छी चीज़ों का शौक़ पैदा हो गया था। इसका फल यह हुआ कि एक जगह की बनी हुई चीज़ें दूसरी जगह पहुँचाई जाने लगीं। इस प्रकार व्यापार का आरम्भ हुआ।

व्यापार का माल पहले बोझा ढोनेवाले पशुओं पर लादकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता था। फिर पहिया बना और दो पहियों की गाड़ियाँ सामान ले जाने के लिये काम में लाई जाने लगीं। घोड़ों की
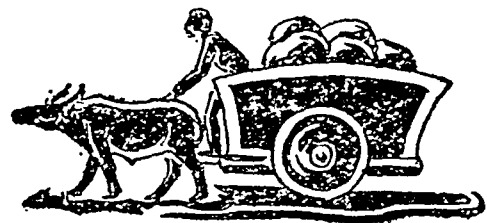
सवारी का चलन भी इसी समय आरम्भ हुआ।

इसी समय भाषाएँ भी बोली जाने लगीं। पहले आमदनी और खर्च का हिसाब रखने, फिर अपने विचार प्रकट करने के लिये लिखने के ढंग निकाले गये।

आदमी ने यह भी देखा कि कुछ बातें ऐसी होती रहती हैं, जिनपर उसका बस नहीं चलता और वे बातें ऐसी हैं जिनपर उसका सुख-दुःख, और भलाई-बुराई निर्भर है। सूरज निकलता है, डूबता है, और फिर निकलता है। सूरज की गर्मी और उसका प्रकाश मनुष्य को सुख भी पहुँचाता होगा। सूरज के डूब जाने पर अन्धकार में उसे कष्ट होता होगा। इसी प्रकार उसने देखा कि एक विशेष समय वर्षा होती है, जाड़ा आता है, पेड़ों में नयी कोंपलें फूटती हैं, फूल-फल आते हैं। खेतों में फ़सल लहलहा उठती है। ऐसा होते वह बार बार देखता रहा। इस प्रकार सूर्य, वर्षा, हवा और आग जैसी चीज़ों के लिये उसके मन में आदर और भय दोनों पैदा हुए। कुशल मंगल और उन्नति की इच्छा से इन महान् शक्तियों की वह पूजा करने लगा। इस तरह मन्दिरों और पूजा-पाठ का चलन हुआ।
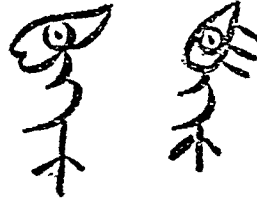
उसी प्रकार उन शक्तियों के और खुद अपने बारे में भी मनुष्य सोचता होगा कि यह सब क्यों होता है। मनुष्य क्यों मरता है, क्यों पैदा होता है। वर्षा क्यों होती है, हवा क्यों चलती है? सूरज क्यों

निकलता है, तूफ़ान क्यों आता है ? इन्हीं विचारों की कड़ियों ने आगे चल-कर धर्म और दर्शन का रूप ले लिया।

इस प्रकार वह चीज़ आरम्भ हुई, जिसे आजकल हम सभ्यता कहते हैं।

इस युग के बाद उन्नति की गति बहुत तेज़ हो गयी। इसका बड़ा कारण यह था कि लिखने के ढंग निकल चुके थे। ज्ञान को सुरक्षित करने और एक दूसरे तक पहुँचाने की सुविधा हो गयी थी। पत्थर के पुराने युग में भी आदमी बोलते रहे होंगे, परन्तु जितनी समझ थी उतना ही वह समझते और बतलाते थे। धीरे धीरे एक ओर समझ और जानकारी बढ़ी, दूसरी ओर जबान और ओठों में ध्वनि को ठीक निकालने की योग्यता आयी।

पत्थर के पुराने युग में जिन गुफ़ाओं में आदमी रहते थे, उनमें पशुओं के चित्र बने हुए मिले हैं। हम नहीं जानते कि वे चित्र बरकत यानी समृद्धि के विचार से बनाये गये थे या शिकार में सफलता की आशा

से या केवल शौक़ के लिये। परन्तु कुछ चित्रों को देखकर विश्वास होता है कि उनका उद्देश्य केवल आकार बनाना नहीं, बल्कि कुछ कहना भी था। इसी कारण से समझा जाता है कि लिखने का जो ढंग सबसे पहले चला, उसमें जिस चीज़ का ज़िक्र होता था, उसका चित्र बनाया जाता था।

मिस्र में इसका बहुत अधिक चलन था और इसके बहुत से नमूने अबतक पाये जाते हैं। मिस्र ही में पूरा चित्र बनाने के बदले उसका चिह्न बनाया जाने लगा। इस प्रकार लिखने में कुछ सरलता हो गई। उसके बाद यह हुआ कि चिह्न किसी चीज़ का चिह्न माने जाने के बदले किसी ध्वनि का चिह्न माना जाने लगा। फ़ोनेशिया की भाषा में घर को 'बेत' कहते थे। लिखने के लिये पहले घर का चित्र बनाया जाता था। फिर इस चित्र के बदले एक चिह्न बनाया जाने लगा और उसको 'बेत' कहने लगे। उससे 'बे' की ध्वनि निकली और 'बे' एक अक्षर बन गया।
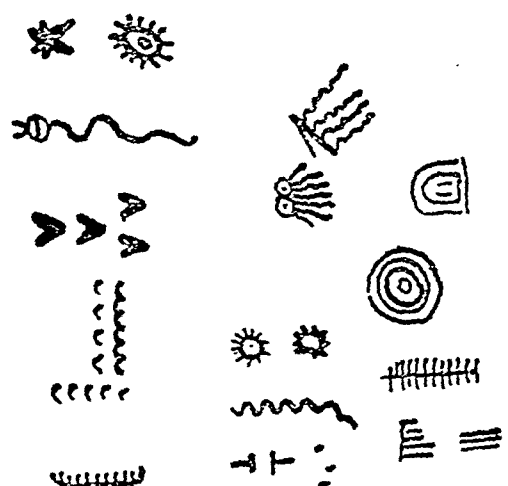
यह उन्नति इस कारण हुई कि आदमियों के अलग अलग समाजों में आपसी सम्बन्ध थे। यदि फ़ोनेशियावालों का ऐसे लोगों से सम्बन्ध न होता, जिनकी भाषा में घर को बेत नहीं कहा जाता, तो बेत के चिह्न से 'बे' का अक्षर नहीं बनता।

चीन के रहनेवालों का सम्बन्ध दूसरे देशवालों से उतना नहीं था, इसी कारण उनकी लिखाई का ढंग अबतक अधिक उन्नति न कर

सुमेर
चीन
सभ्यता का उदय
मिस्र
सिन्ध

सका। उनकी भाषा की अबतक कोई वर्णमाला नहीं है। वे पूरे शब्द ही लिखते हैं। काग़ज़ बनाना, और छापना सबसे पहले चीन में शुरू हुआ और यह भी एक वजह हुई कि वे अपनी लिपि नहीं बदल सके।

मिस्र में लिखने के लिये बाँस की क़लम और काग़ज़ की जगह एक पौधे की छाल काम में लाई जाती थी। बाबुल में काग़ज़ के स्थान पर मिट्टी की तख़्तियाँ और क़लम के स्थान पर एक नोकदार औज़ार काम में लाया जाता था। चीनियों ने काग़ज़ बनाकर और छपाई का ढंग निकाल कर दुनिया का बहुत बड़ा उपकार किया।

संसार में सभ्यता के पहले केन्द्र नील, फ़रात, सिन्ध और यांग्ट्सी नदियों के किनारे थे। वहाँ खेती के लिये भूमि थी, सिंचाई के लिये पानी था, और जलवायु ऐसी थी कि आदमी गर्मी और सर्दी दोनों के कष्टों से बचा रहे। वहाँ सभ्यता ने बहुत उन्नति की। चारों ओर से और संसार के दूसरे भागों से कम सभ्य या जंगली कबीले सभ्यता के उन केन्द्रों की ओर उसी प्रकार खिच-खिच कर आते रहे जैसे दीये के प्रकाश की ओर पतंगे। इससे एक संघर्ष छिड़ा, जिसने सभ्यताओं को मिटाया और मिटा कर बनाया, हानि पहुँचाई और उस हानि से लाभ के रास्ते निकाले।
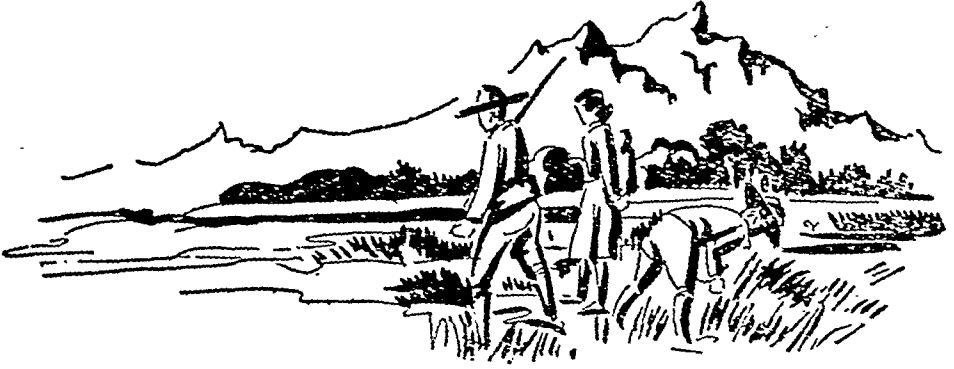
३

धरती की रूपरेखा

यह धरती जिसपर हम रहते हैं, हमारा घर है। वैसे तो सबको अपना घर अच्छा लगता है, परन्तु हमारा यह घर सचमुच ही बहुत अनोखा और मन-भावन है। वह इतना बड़ा है कि हम उसे पूरा देखने का भी अवसर नहीं पाते। फिर भी बहुत से ऐसे लोग हैं और हुए हैं जिन्होंने घूम घूम कर उसका कोना-कोना देखा है। उनकी बताई बातों को सुन या पढ़कर अब सभी जान सकते हैं कि हमारी धरती कैसी है और उसपर कहाँ क्या है।

पृथ्वी पर कहीं स्थल के बड़े बड़े भाग हैं और कहीं जल के। स्थल के बड़े भागों को महाद्वीप और पानी के बड़े भागों को महासागर कहते हैं। एशिया, अफ्रीका, युरोप, उत्तरी अमरीका, दक्खिनी अमरीका और

आस्ट्रेलिया स्थल के बड़े-बड़े भाग यानी महाद्वीप हैं। इनके अलावा एक बर्फ़ से ढका हुआ उजाड़ महाद्वीप भी है। वह पृथ्वी के दक्खिनी भाग यानी दक्खिनी ध्रुव-प्रदेश में है। प्रशान्त महासागर, अटलांटिक महासागर, भूमध्य सागर, हिन्द महासागर और आर्कटिक महासागर पृथ्वी पर पानी के बड़े भाग हैं।

हमारी दुनियां में कुल कितनी ज़मीन है और कितना पानी

पहाड़ों और समुद्रों के बीच में मैदान हैं और अधिकतर मनुष्य इन्हीं मैदानों में बसते हैं।

हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि पृथ्वी का दो तिहाई भाग पानी से ढका है। केवल एक तिहाई भाग स्थल है। उसी एक तिहाई भाग में आदमी रहते हैं और करोड़ों प्रकार के पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े और पेड़-पौधे पाए जाते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि स्थल के भी सब भाग ऐसे नहीं हैं, जिनमें प्राणी रह सकें।

हमारी यह धरती बड़ी ही रंग-बिरंगी है। कहीं भूरे और सफ़ेद

पहाड़ हैं, तो कहीं हरियाली ही हरियाली है। कहीं सूखे रेगिस्तान हैं, जहाँ रेत के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता, तो कहीं गर्मी और पानी अधिक होने के कारण घने घने जंगल हैं। ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की चोटियाँ तो बर्फ़ से ढकी हैं ही, कई जगह धरातल पर भी बर्फ़ ही बर्फ़ है—सफ़ेद और जगमगाती हुई बर्फ़। कहीं पहाड़ों से फूटकर सोते बह रहे हैं, तो कहीं पछाड़ खाती नदियाँ पहाड़ी ढालों से उतरकर मैदानों में रेंगती हुई समुद्र
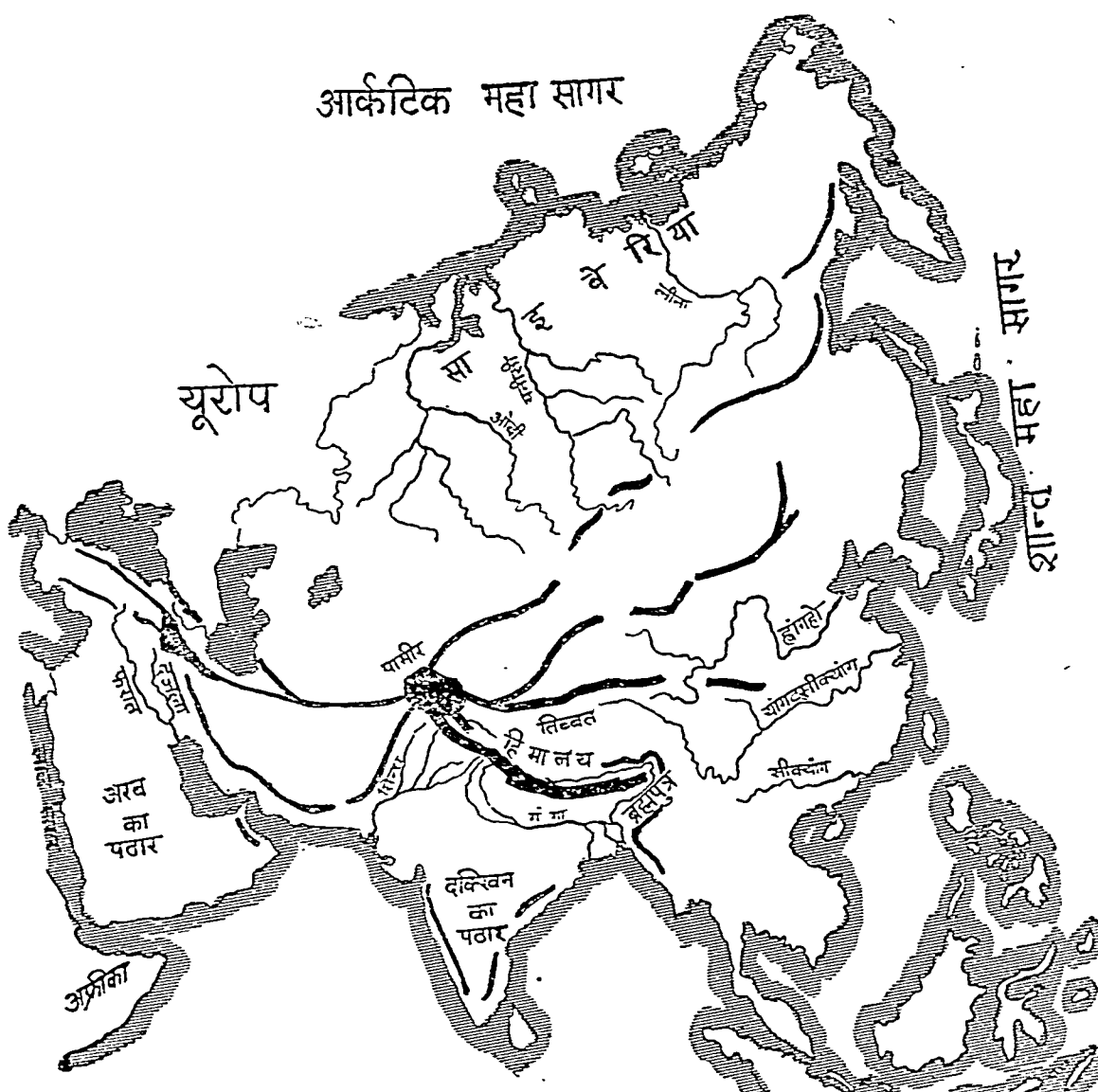
की ओर जा रही हैं।

धरती पर ऊँचे ऊँचे पहाड़ों के कई सिलसिले हैं। एशिया के पच्छिम से दो पर्वतमालाएँ आरम्भ होती हैं और वहुत दूर तक एक दूसरे के बराबर-बराबर चलकर पामीर के पठार में एक दूसरे से मिल जाती हैं। पामीर से पूर्व में एक पर्वतमाला ऊँची दीवार की भाँति चली गयी है। बर्मा और वियेत-नाम पहुंचकर यह पर्वतमाला अचानक दक्खिन की ओर मुड़ जाती है।

हिमालय दुनिया का सबसे ऊँचा पहाड़ है। वह इतना ऊँचा है कि आकाश को छूता हुआ जान पड़ता है। उसकी चोटियाँ हमेशा वर्फ़ से ढकी रहती हैं। हिमालय का अर्थ है–'बर्फ़ का घर'। उसकी सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट है, जो २९,००२ फ़ुट या लगभग ५$\frac{१}{२}$ मील ऊँची है। उस पर कुछ दिन पहले तक किसी आदमी ने पैर नहीं रखे थे। परन्तु बराबर कोशिश करने के बाद मई १९५३ ई० में एवरेस्ट की चोटी पर आदमी ने विजय पाई। तेनसिंह और हिलेरी नाम के दो वीरों ने एवरेस्ट की चोटी पर सफलता का झण्डा फहराया। तेनसिंह तो हमारे ही देश के हैं किंतु हिलेरी अंग्रेज हैं।

हिमालय के दक्खिनी ढालों पर वर्षा अधिक होती है, इसलिए उन ढालों पर बड़े बड़े और घने जंगल हैं।

बड़े बड़े पहाड़ों के बीच ऊँचे ऊँचे पठार हैं। पठार सपाट होते हैं। वे न तो पहाड़ों की भाँति ढालू होते हैं, और न उनकी भाँति ऊँचे। फिर भी उनमें कहीं कहीं पहाड़ियाँ उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं। उन्हें जगह-जगह काट कर नदियों ने अपने लिये रास्ते बना लिये हैं, जिन्हें घाटियाँ कहते हैं।

दुनिया का सबसे ऊँचा पठार पामीर है, जो अपनी ऊँचाई के कारण "दुनिया की छत" कहलाता है। मध्य एशिया में और भी कई ऊँचे ऊँचे पठार हैं। पामीर के पूर्व में तिब्बत का लम्बा-चौड़ा पठार है। दक्खिनी एशिया में अरब और दक्खिनी भारत के पठार आसपास की ज़मीन से अलग उभरे हुए दिखाई देते हैं। पहाड़ों के चारों ओर लम्बी लम्बी नदियाँ बहती हैं। उनके किनारे बड़े बड़े शहर बसे हुए हैं और खूब चहल-पहल है।

तिब्बत का पठार चारों तरफ ऊंचे पहाड़ों से घिरा हुआ है।

नदियाँ अपने साथ बहुत अधिक मिट्टी लाकर मैदानों में बिछाती रहती हैं। आदमी की उँगलियों की हल्की सी गुदगुदी से यह मुलायम मिट्टी खिलखिला उठती है और थोड़े परिश्रम से अच्छी अच्छी फ़सलें तैयार हो जाती हैं।

एशिया में हिमालय से दूर उत्तर में एक बड़ा मैदान है। उसका ढाल दक्खिन से उत्तर को है। उसे साइबेरिया का मैदान कहते हैं। उसका बिल्कुल उत्तरी भाग बहुत ठण्डा है। ज़मीन बर्फ़ से ढकी रहती है। वहाँ कोई चीज़ उग नहीं सकती। इसलिए जो लोग वहाँ रहते हैं, वे बर्फ़ में रहने-वाले जानवरों और मछलियों का गोश्त खाते और उनकी खालों के कपड़े बनाकर पहनते हैं। साइबेरिया के मैदान में ओबी, यनीसी

और लीना नाम की बड़ी नदियाँ हैं। वे इस इलाक़े में उत्तर की ओर को बहती हुई आर्कटिक महासागर में गिरती हैं। साल के अधिकतर भाग में उनके मुहानों पर बर्फ़ जमी रहती है, जिससे उनका बहाव रुक जाता है और पानी आस-पास के इलाक़ों में फैल जाता है। इससे बड़ी बड़ी दलदलें बन जाती हैं।

दक्खिनी एशिया में नदियों के बनाए दो बड़े मैदान हैं। एक गंगा, सिंध और ब्रह्मपुत्र का मैदान और दूसरा दजला और फ़रात का। ये दोनों दुनिया के बहुत ही उपजाऊ प्रदेशों में से हैं। इनमें मनुष्य की जरूरत की सब चीज़ें बहुतायत से होती हैं। इसलिए यहाँ आबादी भी बहुत घनी है।

हिमालय से पूर्व की ओर बहनेवाली नदियों ने चीन में बड़े बड़े उपजाऊ मैदान बनाए हैं। एक ह्वाँगहो या पीली नदी का मैदान है। इस मैदान में करोड़ों चीनी बसते और खेतीबारी करते हैं। दूसरा याँग्ट्सी-क्यांग या नीली नदी का मैदान है। यह नदी तिब्बत से निकलकर एक सँकरे पहाड़ी रास्ते से होकर ऐसे मैदान में जा पहुँचती है जहाँ झीलों और तालाबों की भरमार है। इस इलाके में बारिश भी काफ़ी होती है और गर्मी भी अच्छी पड़ती है। पानी और गर्मी की अधिकता के कारण यहाँ धान बहुत होता है। इसीलिये चावल यहाँ के रहनेवालों का मुख्य भोजन है।

जिस प्रकार एशिया में हिमालय बहुत बड़ा पहाड़ है, उसी प्रकार युरोप में आल्प्स है। युरोप के बीचोबीच आल्प्स की शाखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। उसकी कुछ चोटियाँ समुद्र की सतह से लगभग १४००० फ़ुट या ढाई मील ऊँची हैं और उनपर हमेशा बर्फ़ जमी रहती है।

युरोप के पूर्व में युराल नाम का पहाड़ है, जो युरोप को एशिया
से अलग करता है। युराल के पच्छिम में रूस का बड़ा मैदान है। जाड़े में
वहाँ कड़ाके की सर्दी पड़ती है, लेकिन गर्मियों में इतनी गर्मी हो जाती है।
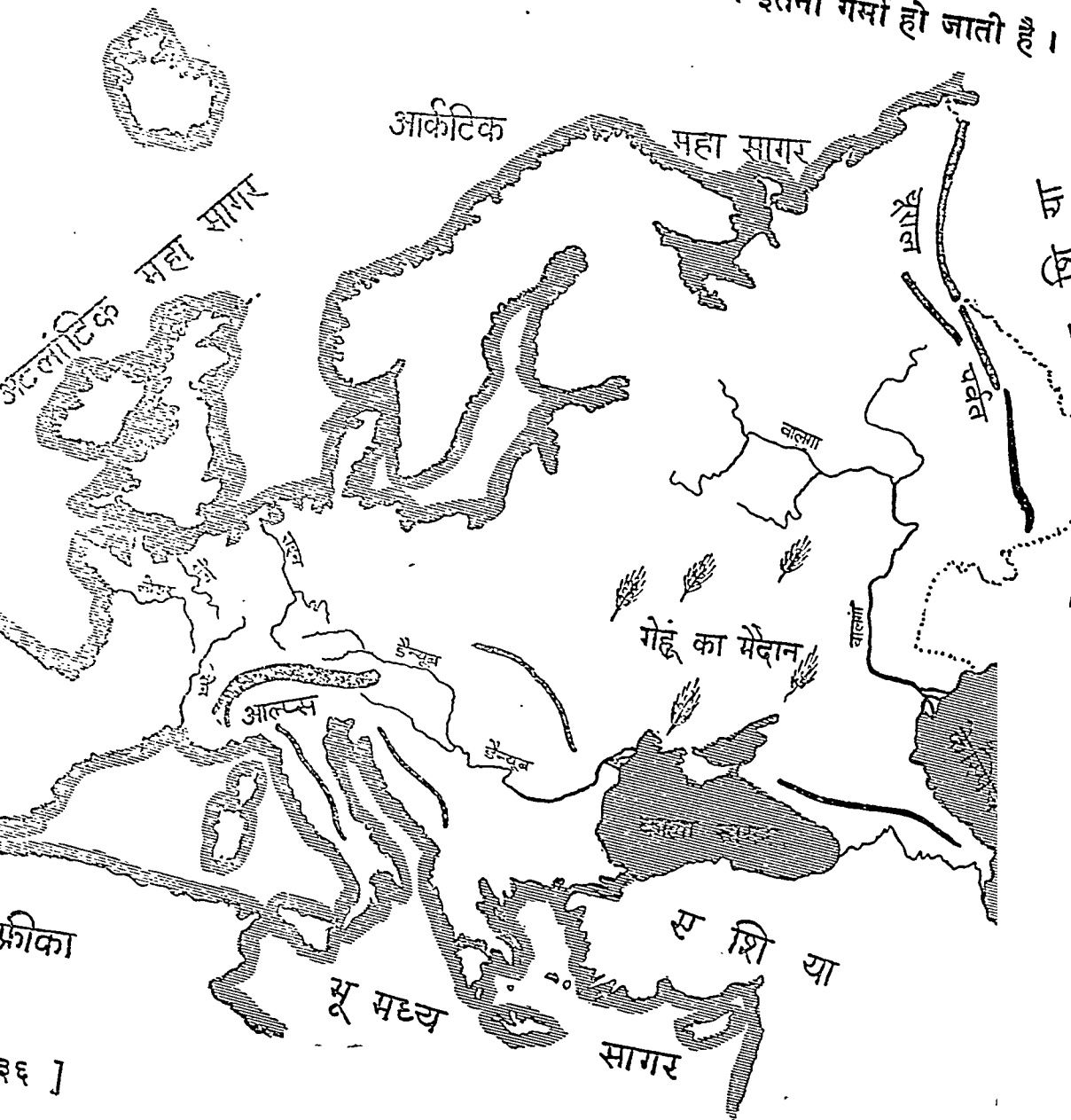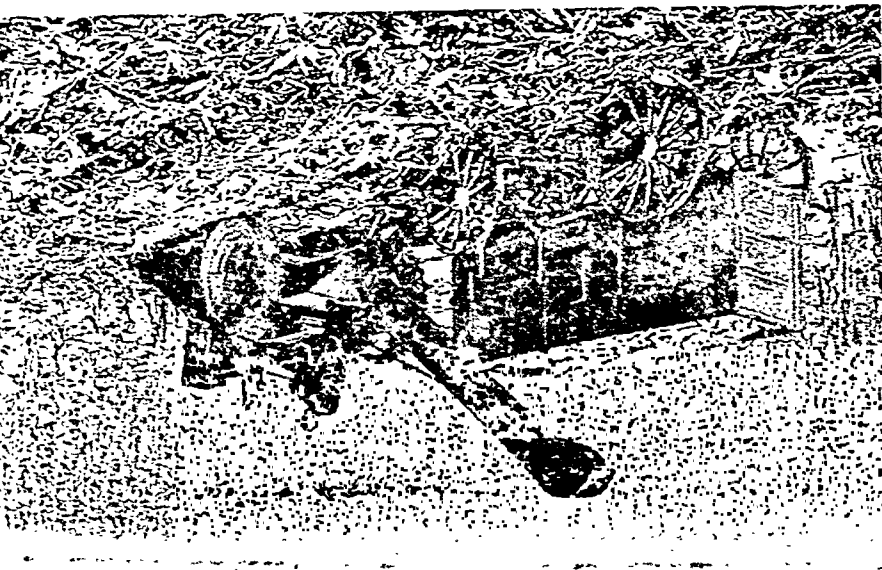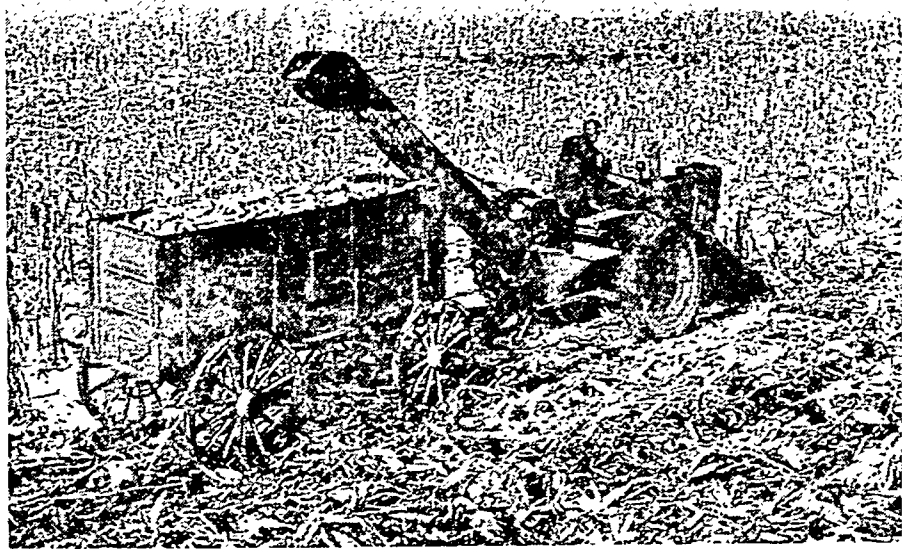
कि गेहूँ खूब पैदा हो सके। इस मैदान का दक्खिनी भाग गेहूँ की पैदावार के लिये दुनिया भर में मशहूर है। युरोप की सबसे बड़ी नदी वोल्गा इस मैदान से होकर उत्तर से दक्खिन को बहती है। जाड़े में उसपर बर्फ़ जम जाती है। इसलिए उसमें जहाज़ों का चलना बन्द हो जाता है। हाँ, पच्छिमी युरोप की नदियाँ राइन, सेन, लोएर, रोन और डैन्यूब विशेष उपयोगी हैं। इनमें राइन नदी सबसे अधिक महत्व की है। इससे बहुत व्यापार होता है। वैसे युरोप की नदियाँ व्यापार के लिए बहुत उपयोगी नहीं हैं, फिर भी उनसे दूसरे बहुत से लाभ हैं। जगह जगह उनसे सिंचाई होती है और उनके झरनों से बिजली भी तैयार की जाती है।

एशिया और युरोप के अलावा पहाड़ों की दूसरी बहुत बड़ी पाँत उत्तरी और दक्खिनी अमरीका में है। उत्तरी अमरीका के पच्छिमी किनारे के बराबर-बराबर हरे भरे पहाड़ों की कई पाँतें हैं। यह पर्वतमालाएँ राकीज़ कहलाती हैं। राकीज़ पर कई प्रकार की इमारती लकड़ियों के घने जंगल हैं। वे जंगल देश की बहुत बड़ी सम्पत्ति हैं।

राकी पहाड़ियों से घिरा हुआ कोलोरेडो का पठार है। इसी पठार से होकर कोलोरेडो नाम की एक अनोखी नदी बहती है। वह दो हज़ार मील तक बहुत ही सँकरी और गहरी घाटी में होकर गुज़रती है। उसकी मील भर गहरी घाटी की दीवारों में रंग-बिरंगी चट्टानों की तहें इतनी सुन्दर लगती हैं कि आदमी घंटों देखता रह जाता है।

उत्तरी अमरीका के पूर्वी भाग में आलपशियन पहाड़ियाँ हैं जो अटलांटिक के किनारे किनारे दो हज़ार मील तक फैली हुई हैं। राकीज़ और आलपशियन पहाड़ियों के बीच उत्तरी अमरीका का बड़ा मैदान है। इस
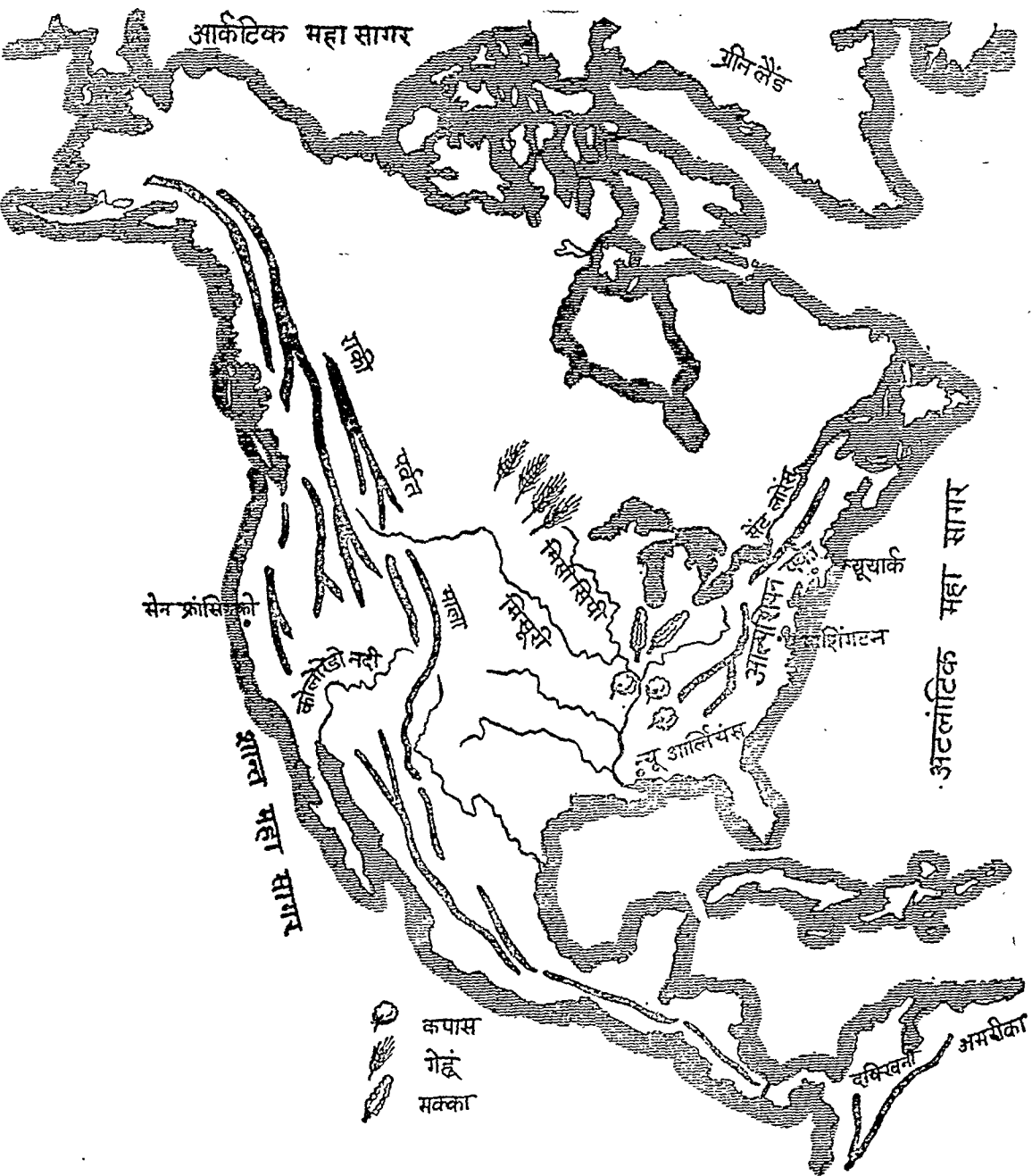
मैदान का बिल्कुल उत्तरी भाग साइबेरिया के समान बहुत ठंडा और उजाड़ है। बाकी हिस्सा बहुत ही उपजाऊ है। वहाँ गेहूँ, मकई और कपास

बहुतायत से होती है। इस मैदान को कई बड़ी बड़ी नदियाँ सींचती हैं। इनमें सबसे बड़ी और मुख्य नदी मिसीसिपी है। वह करोड़ों मन उपजाऊ मिट्टी लाकर मैदान में बिछा देती है। परन्तु व्यापार के लिए सेंट लारेंस नदी मिसीसिपी से अधिक उपयोगी है। यह नदी आल्पशियन पहाड़ियों के उत्तर में है और बहुत सी झीलों को समुद्र से जोड़ती है।

एशिया के बीच में हिमालय पहाड़ एक ऊँची दीवार की भांति पच्छिम से पूर्व को चला गया है, जिससे गंगा और सिंध का मैदान साइबेरिया की तीर सी चुभनेवाली ठंडी हवाओं से बच जाता है। परन्तु अमरीका में कोई ऐसा पहाड़ नहीं है। इसलिए जाड़ों में उत्तर की ठंडी हवाएँ दक्खिन तक अपना असर डालती हैं और गर्मियों में दक्खिन की गर्म हवाएँ उत्तर तक चली जाती हैं। यही कारण है कि इस पूरे मैदान में जाड़े में अधिक जाड़ा और गर्मियों में अधिक गर्मी होती है।

उत्तरी अमरीका की राकीज पहाड़ियों की पाँतें दक्खिनी अमरीका में भी चली गई हैं। वहाँ उनका नाम एंडीज है।

दक्खिनी अमरीका के पूर्वी भाग में ब्राज़ील और गायना नाम के दो पठार हैं। इन दोनों पठारों और एंडीज़ पर्वतमाला के बीच नदियों से आई मिट्टी का बहुत बड़ा मैदान है। इस मैदान में अमेजन नदी बहती है, जो ३,५०० मील लम्बी है। वह संसार की सबसे बड़ी नदी है। कहीं कहीं उसका पाट पचास मील से भी अधिक चौड़ा
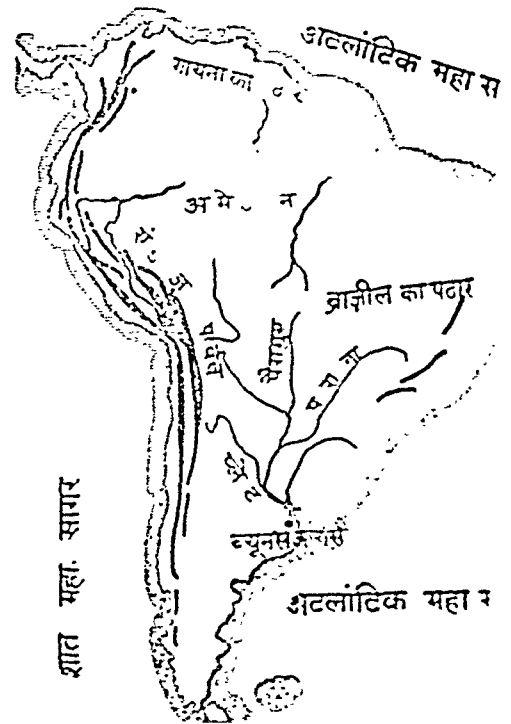
और गहराई १७५ फ़ुट से भी ज्यादा है। अमेज़न नदी ऐसे इलाके से होकर बहती है जहाँ पूरे साल बहुत गर्मी पड़ती है और वर्षा भी अधिक होती है। इसी कारण वह पूरा इलाका घने जंगलों से भरा हुआ है। उनसे इमारती लकड़ी और रबड़ पैदा होती है। लेकिन रास्ते न होने के कारण इनसे पूरा पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

एशिया, युरोप और अमरीका के अलावा और कहीं ऊँचे ऊँचे पहाड़ बहुत कम हैं। अफ्रीका के केवल उत्तरी भाग में एक बड़ा पहाड़ एटलस है। वह युरोप के आलपस पर्वत के बराबर समुद्र की सतह से कोई ढाई मील ऊँचा है और एवरेस्ट की ऊँचाई के आधे से भी कम है। अफ्रीका का बहुत बड़ा महाद्वीप प्रायः पूरा का पूरा एक लम्बा चौड़ा पठार है। वह पठार उत्तर से दक्खिन चार हज़ार मील लम्बा है और पूर्व और दक्खिन की ओर ऊँचा होता चला गया है।

एटलस के दक्खिन में दुनिया का सबसे बड़ा रेगिस्तान सहारा है। वह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों के क्षेत्रफल से दुगना है और उत्तरी अफ्रीका के आधे से
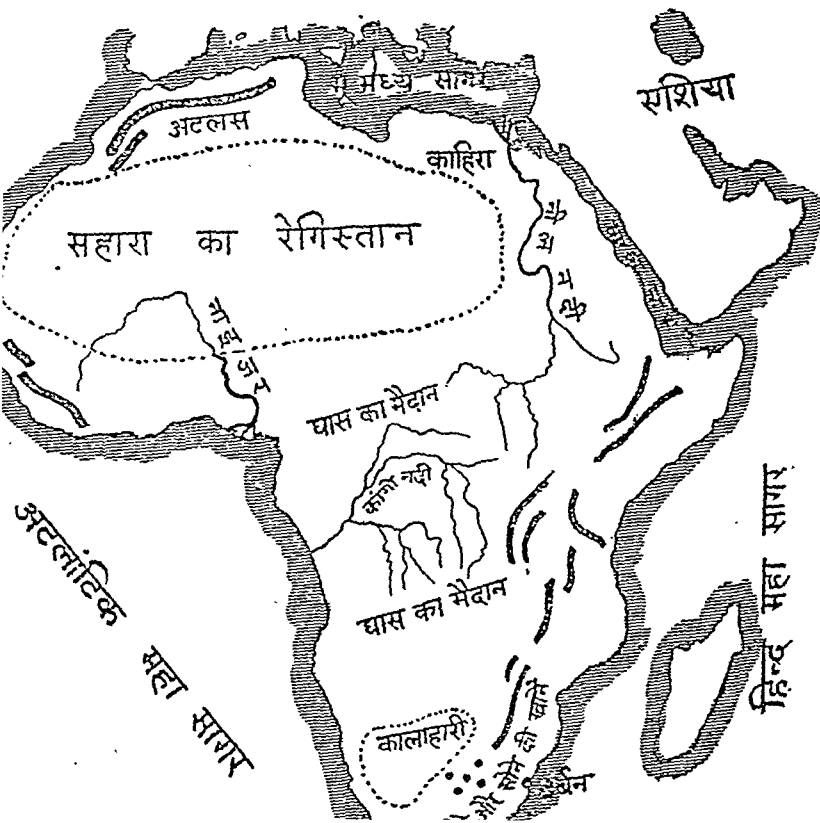
अच्छी गायें आस्ट्रेलिया की बड़ी सम्पत्ति हैं
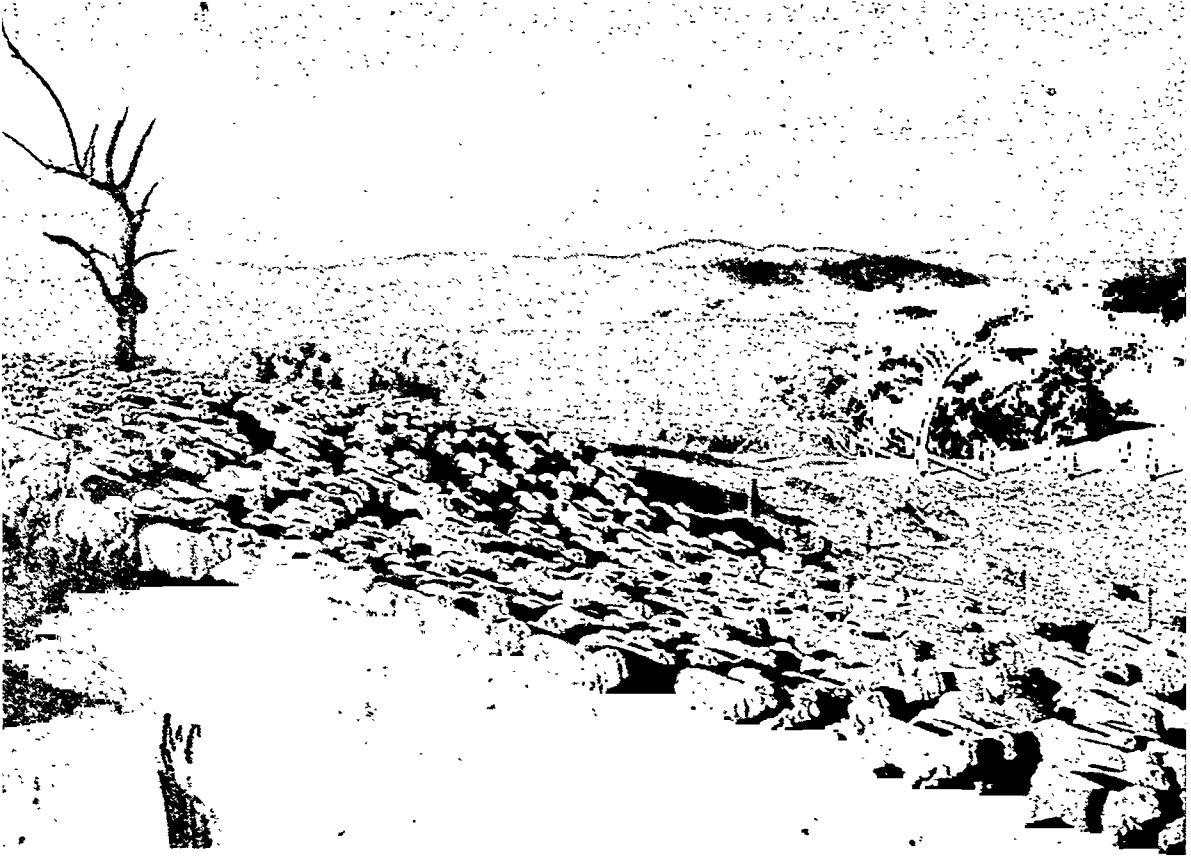
आस्ट्रेलिया की दूसरी बड़ी सम्पत्ति उसकी भेड़ें हैं।

अधिक भाग को घेरे हुए हैं। सहारा ने महाद्वीप के एक बड़े भाग को उजाड़ और भयावना बना दिया है।

अफ्रीका के उत्तरी-पूर्वी कोने में नील नदी बहती है। कहा जाता है कि "नील जिन्दगी का एक छोटा-सा सोता है, जो किसी न किसी तरह
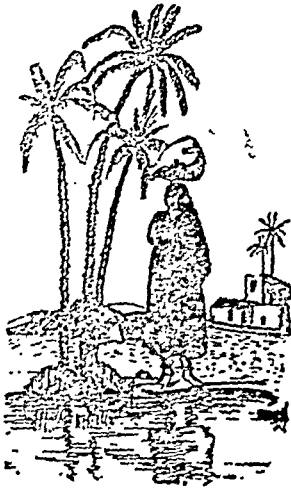
मौत के मुंह से बच निकलता है।" सच बात तो यह है कि मिस्र का इतना उपजाऊ होना, इतना भरा-पुरा होना और इतना आबाद होना इसी नदी पर निर्भर है। यदि नील नदी न होती, तो मिस्र भी रेगिस्तान होता।

अफ्रीका में नील के सिवा और भी कई बड़ी बड़ी नदियां हैं। कांगो नदी घने, अंधेरे और भयानक जंगल में चक्कर काटती है। इस जंगल और उसके उत्तर और दक्खिन के मैदानों में बहुतसे ऐसे जानवर पाये जाते

हैं जो दुनियाँ में और कहीं नहीं मिलते, जैसे दरियाई घोड़ा, गैंडा, ज़ेबरा और
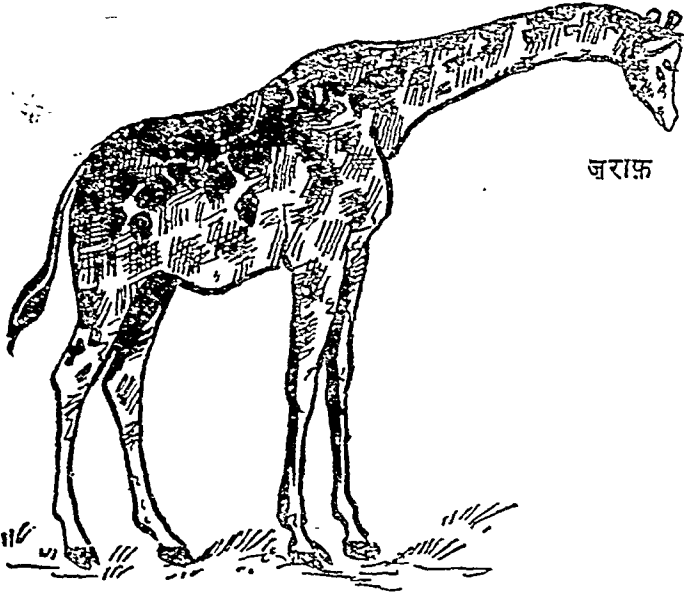
जराफ़। नाइजर नदी सहारा रेगिस्तान की दक्खिनी सीमा पर पच्छिम से पूर्व की ओर धनुष के रूप में बहती हुई अटलांटिक महासागर से मिल जाती है। दक्खिनी अफ्रीका की प्रसिद्ध नदी ज़ेम्बज़ी है। जब वह विक्टोरिया
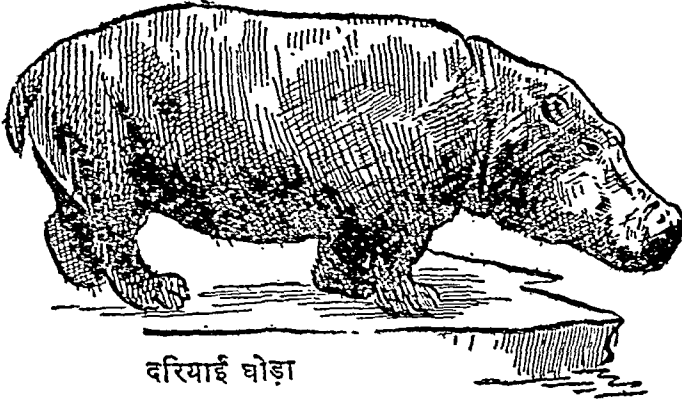
दरियाई घोड़ा

झरने पर तीन सौ साठ फ़ुट की ऊँचाई से गिरती है, तो छींटों के बड़े बड़े बादल उड़कर सैकड़ों फ़ुट तक जा पहुँचते हैं।

गैंडा
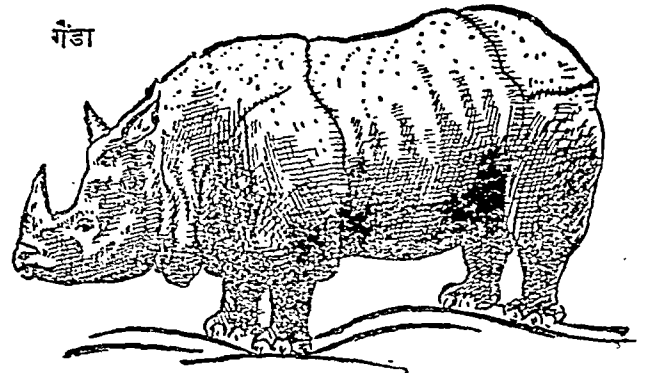
क्षेत्रफल की दृष्टि से अफ्रीका दुनिया का दूसरा

बड़ा महाद्वीप है। एशिया सबसे बड़ा है और आस्ट्रेलिया सबसे छोटा। आस्ट्रेलिया की धरती कहीं भी बहुत ऊँची नहीं है। ऊँची से ऊँची चोटी केवल सात हज़ार फ़ुट है। पूर्वी किनारे पर दो हज़ार मील तक फैली पर्वतमाला 'ग्रेट डिवाइडिंग रेंज' कहलाती है।
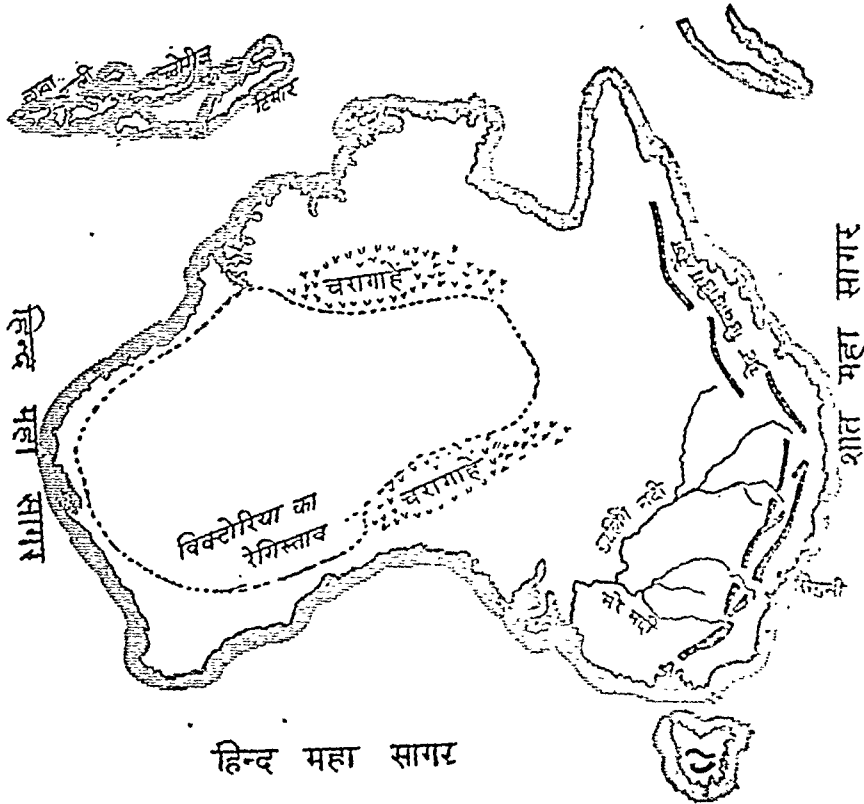
पूर्वी किनारे के सिवा यह पूरा का पूरा महाद्वीप बहुत ही सूखा है। नदियों में वैसे भी बहुत पानी नहीं होता। गर्मी में तो रहा-सहा भी सूख जाता है। इन नदियों में केवल मरे और डालिंग ऐसी हैं जिनका नाम लिया जा सकता है। अधिकतर आबादी भी दक्खिनी-पूर्वी किनारे पर है। पच्छिमी भाग पठार और रेगिस्तान है और वहाँ आबादी भी कम है।

आस्ट्रेलिया के बड़े बड़े मैदानों में भेड़ें और गायें बहुत पाली जाती हैं। यह देश ऊन, दूध और पनीर के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है। अच्छी जाति के इन पशुओं की यही देन है।

क्षेत्रफल में आस्ट्रेलिया से दुगुना एक महाद्वीप अंटार्कटिका है। वह दक्खिनी ध्रुव में फैला हुआ है। अंटार्कटिका बारहो मास बर्फ़ से ढका रहता है और बिल्कुल उजाड़ है। पेंगुइन चिड़ियों के सिवा यहाँ दूर दूर तक किसी और जीव-जन्तु के दर्शन नहीं होते।

४

चीन
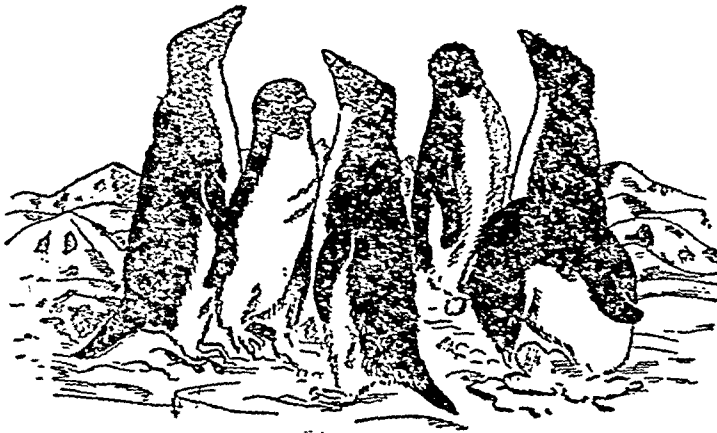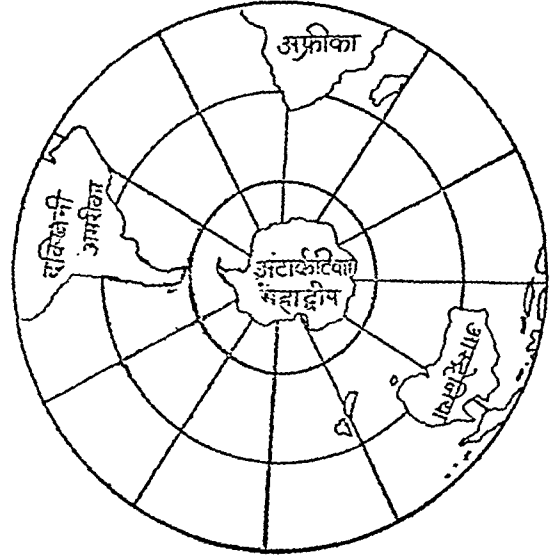
हमारा पड़ोसी चीन आबादी में दुनिया का सबसे बड़ा देश है। वहाँ लगभग साठ करोड़ लोग बसते हैं। वह विशाल देश हिमालय के उस पार लगभग ३७ लाख वर्ग मील में फैला हुआ है। पहाड़ों का एक सिल-सिला देश को दो भागों में बाँटता है—उत्तरी चीन और दक्खिनी चीन चीन की भूमि बहुत उपजाऊ है। उत्तरी चीन में गेहूँ अधिक होता है वर्षा बहुत होने के कारण दक्खिनी चीन में सब देशों से अधिक चावल पैदा होता है। वहाँ शहतूत के पेड़ भी बहुत हैं। रेशम, चावल, चाय, सूत, ससूर और अंडे चीन से दूसरे देशों को भेजे जाते हैं।

अब तक की खोज से पता चलता है कि मिस्र, सुमेरिया, सिन्ध-घाटी

और चीन की सभ्यताएँ दुनिया में सबसे पुरानी हैं।

कोई पाँच हज़ार साल पहले नील, दजला, फ़रात और सिन्ध नदियों के किनारे सभ्यता का विकास हो रहा था। लगभग उसी समय दक्खिन-पच्छिम की ओर से कुछ लोग चीन पहुँचे और ह्वांगहो नदी के किनारे-किनारे बस गए। उन्होंने 'याव' नाम के एक आदमी को अपना राजा चुन

सोवियत यूनियन
मंचूरिया
जापान
कोरिया
मंगोलिया
चीन की दीवार
पीकिंग
ह्वांगहो
यांगसी क्यांग
तिब्बत
फारमोसा
भारत
बर्मा
फिलीपाइन्स
बंगाल की खाड़ी
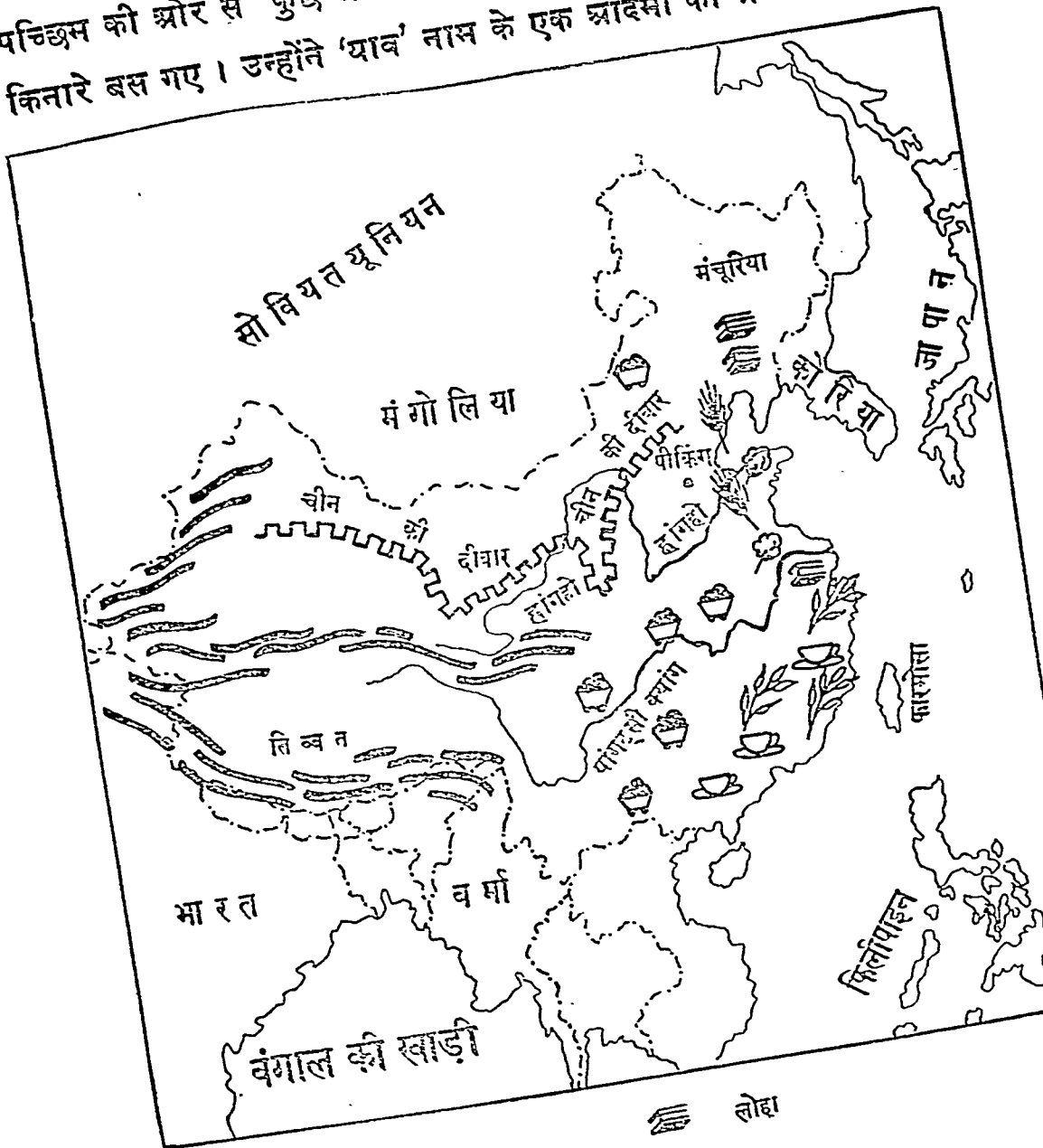
लोहा
गेहूँ
कोयला
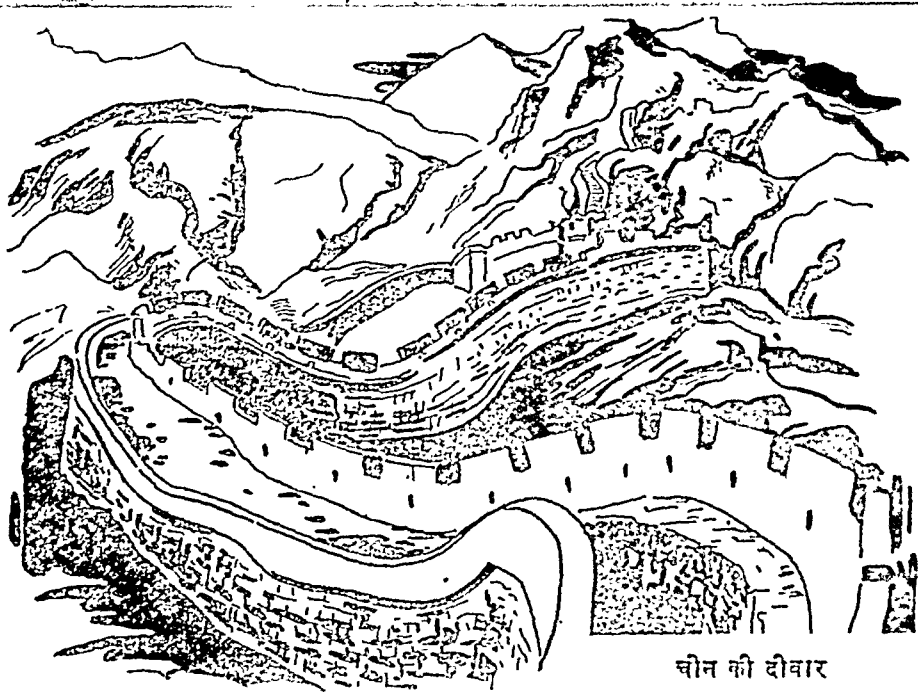
चीन की दीवार

लिया। याव जब बूढ़ा हुआ, तो उसने एक योग्य आदमी को राज का उत्तराधिकारी बनाया। 'याव' के बाद उस आदमी ने और फिर उसके परिवारवालों ने कोई ४०० साल तक चीन पर राज किया। उसके बाद चीन में 'शुंग' और 'चाओ' वंशों का राज रहा। यह बात ईसा से कोई पांच सौ वर्ष पहले की है। इसी समय चीन में कन्फ्यूशियस और लाओत्जे नाम के दो बड़े दार्शनिक और सुधारक हुए। चाओ-वंश के बाद चीन का विशाल देश टुकड़े-टुकड़े हो गया। फिर सम्राट् 'चिन' ने पूरे देश पर अधिकार कर लिया। देश का नाम 'चीन' उसी सम्राट् के नाम पर पड़ा। चीन की मशहूर दीवार भी उसी समय बनी। यह दीवार संसार की सात अनोखी चीजों में से एक है।

जिस समय चीन में चिन-वंश का राज शुरू हुआ, उस समय भारत में सम्राट् अशोक का राज था। यह ईसा से कोई ढाई सौ साल पहले की बात है।

चिन-वंश के बाद कई और वंशों ने चीन पर राज किया। उनमें

तुंग-वंश का समय चीन के इतिहास का सबसे शानदार ज़माना समझा जाता है। तुंग-वंश के सम्राटों ने लगभग ६०० ई० से ९०० ई० तक तीन सौ साल राज किया। इस काल में न सिर्फ़ सभ्यता और संस्कृति उन्नति की चोटी पर पहुँच चुकी थी, बल्कि जनता भी बड़ी सुखी थी। प्रसिद्ध यात्री हुएनसांग इसी काल में भारत आया था। उस समय भारत में सम्राट् हर्षवर्द्धन राज करते थे।

तुंग-वंश के बाद चीन के इतिहास में दूसरा जगमगाता युग मिंग-वंश का है। 'मिंग' शब्द का अर्थ है—चमकदार। इस राज-घराने ने चौदहवीं सदी से लेकर सत्तरहवीं सदी तक राज किया। उनके समय में देश में शान्ति रही और विदेशों से भी अच्छे सम्बन्ध रहे। भारत में सोलहवीं और सत्तरहवीं सदी में मुग़लों का ज़माना था।

चीन का आख़िरी राजवंश 'मांचू' था, जिसका शासन १९११ ई० तक रहा। मांचू-वंश में 'कांग' ही सबसे योग्य राजा हुआ है। उसने चीनी भाषा का एक बहुत बड़ा शब्दकोश और कई सौ जिल्दों का विश्वकोश तैयार कराया।

सम्राटों के समय की दीवार, जिसमें ९ अजगर बने हैं। अलग-अलग रंगों की पालिश की हुई ईंटें बहुत भली लगती हैं।
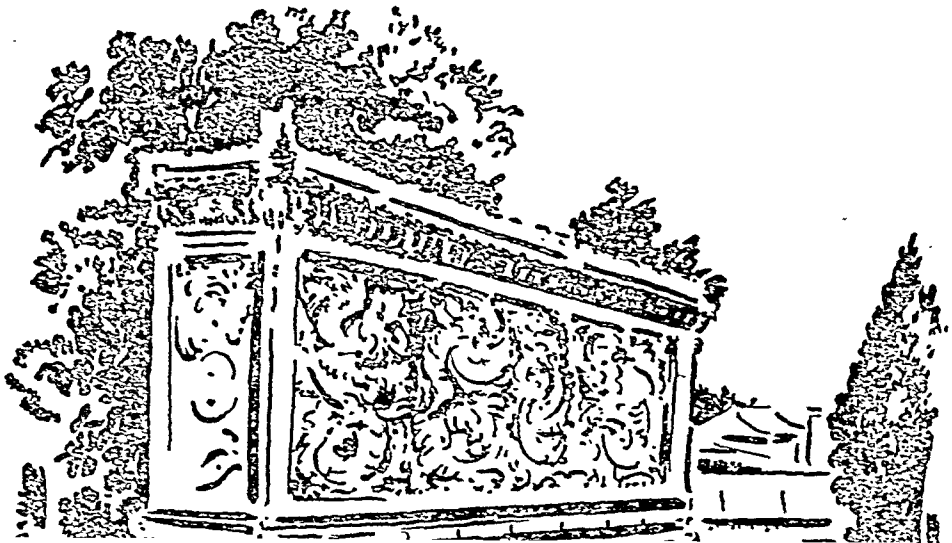
लेकिन मांचू-वंश के सम्राटों के ज़माने में ही युरोप के देशों का साम्राज्यवादी विस्तार शुरू हुआ था। जिस तरह भारत में व्यापार के नाम पर अंग्रेज़, फ्रान्सीसी और दूसरे युरोपीय साम्राज्यवादी अपना क़ब्ज़ा जमा रहे थे, उसी तरह चीन में भी वे जाल बिछाने लगे। आखिरी मांचू सम्राट् इतने कमज़ोर और भ्रष्टाचारी थे कि वे आसानी से विदेशियों की चाल के शिकार होते गए। इसलिये चीन की जनता उनके खिलाफ़ होती गई और 'कुओ-मिन्तांग' नाम का एक राष्ट्रीय संगठन बन गया, जिसमें सभी विचार के चीनी शामिल थे। इस संगठन ने विदेशी दस्तन्दाज़ी के खिलाफ़ राष्ट्रीय आज़ादी का आन्दोलन आरंभ किया। 'कुओ-मिन्तांग' के सबसे बड़े नेता 'डाक्टर सनयात सेन' थे। उन्हें चीन का गांधी कहा जा सकता है। सन् १९११ ई० में एक भारी क्रान्ति हुई और मांचू-शासन का अन्त हो गया। उस क्रान्ति के साथ ही राजतन्त्र भी समाप्त हो गया और एक राष्ट्रीय सरकार बनी।

१९२५ ई० में डाक्टर सनयात सेन की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद 'कुओ-मिन्तांग' की बागडोर 'च्यांग काई शेक' नाम के एक नेता के हाथ में आई। राष्ट्रीय क्रान्ति के लाभों को और भी ठोस बनाने और विदेशी अधिकारों का अन्त करने से पहले उन्होंने 'कुओ-मिन्तांग' दल में अपना सिक्का मज़बूत करने पर ध्यान देना शुरू किया। फल यह हुआ कि डा० सनयात सेन के वफ़ादार साथियों,

उनकी विधवा पत्नी और कम्युनिस्टों के साथ च्यांग काई शेक का झगड़ा हो गया। झगड़ा यहां तक बढ़ा कि हथियारबन्द लड़ाई शुरू हो गयी। उस लड़ाई में देश की सारी ताकत नष्ट होने लगी। अवसर से लाभ उठाकर जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन के कई भागों पर अधिकार कर लिया। कम्युनिस्टों और डा० सनयात सेन की विधवा पत्नी ने बार बार च्यांग काई शेक से कहा कि आपस में एका करके विदेशी साम्राज्यवादियों को भगाना सबसे पहला राष्ट्रीय काम है। पर च्यांग काई शेक ने एक न सुनी। बहुत दिनों तक घरेलू लड़ाई चलती रही। अन्त में जनता ने साम्राज्य-विरोधियों का साथ दिया और १९४९ ई० में कम्युनिस्टों की विजय हुई। चीन में एक नया लोक-राज बना। राज-काज चलाने के लिए एक जन-सलाहकार-समिति की स्थापना की गई। इस समिति में चीन के सब दलों के ६६२ प्रतिनिधि थे। इस समिति ने चीन का सामन्ती ढांचा खत्म करके एक ऐसा आर्थिक प्रोग्राम बनाया जिसपर सब दल सहमत थे। इसी समय चीन में नई केन्द्रीय सरकार का चुनाव हुआ। 'माओत्से तुंग' उसके पहले प्रधान चुने गए और पीकिंग को चीन की राजधानी बनाया गया। पहली अक्तूबर १९४९ ई० को चीन के 'नए-लोकराज' का एलान हुआ।

माओत्से तुंग

नए चीन में खेती की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा है। जमींदारियाँ खत्म कर दी गयीं हैं। हर किसान अपनी जमीन का मालिक है। सिंचाई का भी अच्छा
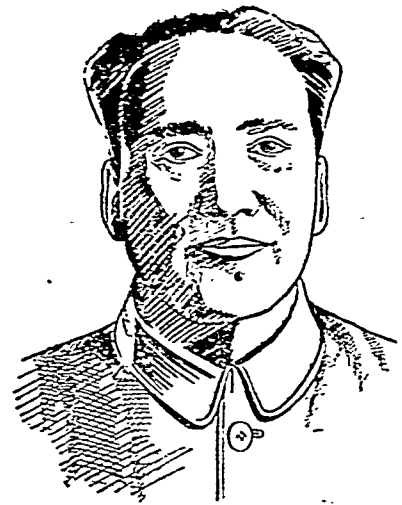
प्रबन्ध किया गया है। अब चीन अपनी जरूरत से बहुत अधिक अन्न पैदा कर रहा है।

चीन में खनिज पदार्थ बहुत हैं। वहाँ की खानों से हर साल कोई दो करोड़ टन कोयला निकाला जाता है। लोहा, तांबा, टीन, सीसा, और कांसा चीन के दूसरे खनिज पदार्थ हैं। इनसे पूरा लाभ उठाने के लिए बहुत से कारखाने खोले गए हैं। चीन के कुछ बड़े बड़े कारखानों में सरकार की पूंजी लगी है। पर लोगों को निजी तौर पर या मिलकर व्यापार करने का भी अधिकार है। इस समय चीन में कपड़ा, काग़ज, रबड़ और पटसन के कई कारखाने खुल गए हैं। घरेलू दस्तकारियों में भी चीन बहुत

बेलबूटेदार बर्तन

बढ़ा हुआ है। यहाँ के कारीगर चीनी के बर्तनों पर बहुत ही बारीक और सुन्दर बेलबूटे बनाते हैं, रेशम पर ज़री का काम बड़ा सुन्दर करते हैं, और तरह तरह की खादी भी बुनते हैं।

नए चीन में तनख़ाहें अनाज की क़ीमत के हिसाब से दी जाती हैं, इसीलिए अनाज का भाव घटने-बढ़ने के साथ ही तनख़ाहें भी घट-बढ़ जाती हैं। मान लीजिए कि किसीकी तनख़ाह एक मन अनाज की क़ीमत के बराबर है। यदि इस अनाज का भाव दस रुपए मन है, तो उसे दस रुपये दिए जाएंगे। अनाज के दाम बीस रुपए मन हो जाएं, तो उसकी तनख़ाह भी बीस रुपए हो जाएगी। अनाज के दाम घट जाने पर तनख़ाह भी उसी हिसाब से घट जाएगी।

चीन में जनता के स्वास्थ्य की देखभाल का भी अच्छा प्रबन्ध किया जा रहा है। गाँवों में लगभग १,८०० स्वास्थ्य केन्द्र हैं। गर्भवती स्त्रियों की देखभाल के लिए १,००० से अधिक अस्पताल हैं। लगभग ४० मेडिकल कालेज हैं, जिनमें २५,००० से ऊपर विद्यार्थी डाक्टरी की शिक्षा पा रहे हैं। चीन दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाला देश है। उसका इलाक़ा भी बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। केन्द्रीय सरकार इस तरफ़ ध्यान दे रही है कि मुल्क के सब लोगों को अच्छी डाक्टरी सहायता पहुँचायी जा सके।

चीन में शिक्षा का प्रसार भी तेज़ी से हो रहा है। प्राइमरी स्कूलों में पाँच करोड़ से अधिक बच्चे शिक्षा पाते हैं। देश में छोटी बड़ी साठ यूनिवर्सिटियाँ हैं। परन्तु विद्यार्थियों की संख्या अभी लगभग डेढ़ लाख ही है। यह आशा की जाती है कि कुछ ही वर्षों में शिक्षा और बढ़ जाएगी और

बहुत कम लोग अनपढ़ रह जाएंगे।

चीन का साहित्य बहुत पुराना है। चीनी लेखक बराबर साहित्य का भंडार बढ़ाते आए हैं। इस समय भी बहुत अच्छा साहित्य रचा जा रहा है। खेती-बाड़ी में होनेवाले सुधार, बाल-विवाह का विरोध, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार, देश-प्रेम और संसार में शान्ति, जैसे विषयों की ओर लेखकों का ध्यान अधिक है।

चीनी लिपि का नमूना

चीन की कला भी उसके इतिहास की भांति बहुत पुरानी है। चीन के चित्रकार काग़ज़ या रेशम की लम्बी पट्टियों पर भांति-भांति के चित्र बनाते हैं, जो अपनी बारीकी और मोहकता के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं।

गाना-बजाना, थियेटर और फ़िल्म चीनियों के मनोरंजन के साधन हैं। नाच-गाने और नाटकों पर इनके जीवन की गहरी छाप है। इन लोगों को खेल-कूद और तैराकी का भी बहुत शौक़ है।

चीन ने अपने पांच हज़ार साल के इतिहास में बड़े-बड़े काम किए हैं। क़ुतुबनुमा, काग़ज़, छपाई के टाइप, बारूद और रेशम की ईजाद का सेहरा इसी देश के सिर है।

५

इन्डोनेशिया

हमारे देश के दक्खिन-पूर्व में हिन्द महासागर से शान्त महासागर तक छोटे बड़े टापुओं की एक लड़ी फैली हुई है। वह लगभग ३,००० मील लम्बी और १,१०० मील चौड़ी है। टापुओं के इस समूह का नाम 'इन्डोनेशिया' है। गिनती में कुल टापू कोई तीन हज़ार हैं। उनमें बड़े टापू सुमात्रा, जावा, सुलावेज़ (सेलीबीज़), कालिमन्तान (बोर्नियो) और इरियन (न्यूगिनी) हैं। इरियन सबसे बड़ा है।

टापुओं की अधिकतर भूमि पथरीली है। संसार में ज्वालामुखी पहाड़ों का सबसे बड़ा सिलसिला इन्डोनेशिया में ही है; जिनसे निकले हुए लावे ने यहां की भूमि को बहुत उपजाऊ बना दिया है। इन्डोनेशिया की कुल भूमि का एक-तिहाई भाग ही खेती के योग्य है। वहां धान,
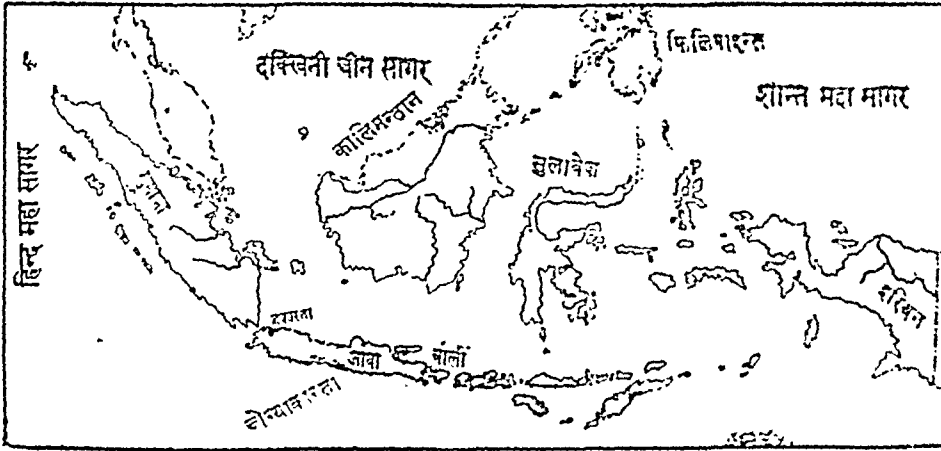
मकई, साबूदाना, चाय, कॉफ़ी और सिन्कोना बोए जाते हैं। इन्डोनेशिया के चारों ओर के समुद्र में मछलियां बहुत पायी जाती हैं। वहां से दूसरे देशों को भेजी जानेवाली चीज़ों में पेट्रोलियम, टीन, रबड़, नारियल और चाय खास हैं।
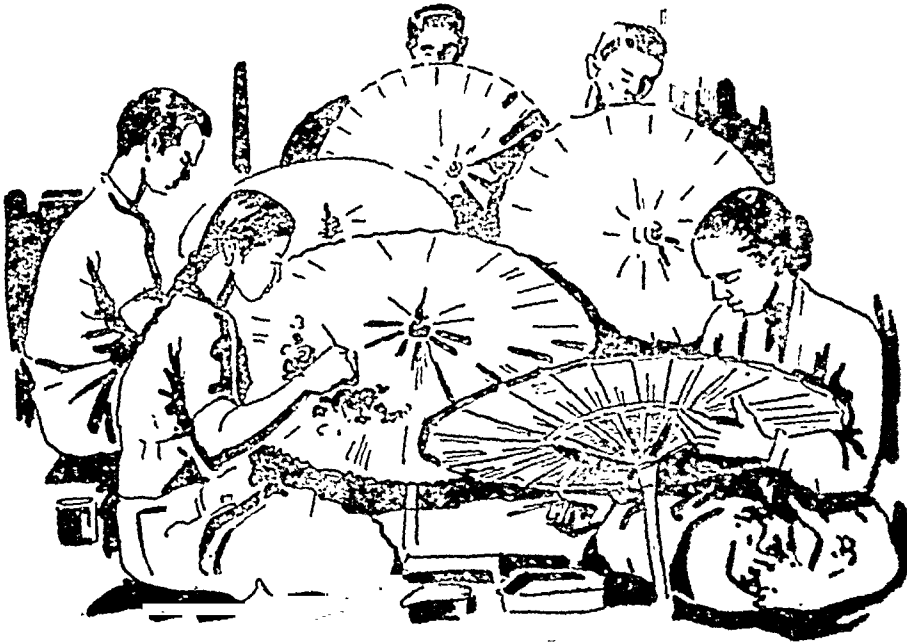
इन्डोनेशिया में झीलों और नदियों की भरमार है। नदियां गहरी नहीं हैं, पर बहती बहुत तेज हैं। बड़े-बड़े और घने जंगल भी जगह जगह हैं। उनमें शेर, गैंडा, सूअर और दूसरे भयानक जानवर घूमते रहते हैं। जंगली गायें, सांप और तरह तरह के जहरीले कीड़े भी पाए जाते हैं। रंग-रंग के चमकीले और सुन्दर पक्षी भी इधर उधर उड़ते दिखाई देते हैं। उनमें से एक पक्षी तो इतना सुन्दर होता है कि उसे 'स्वर्ग का पक्षी' कहा जाता है।

इन्डोनेशिया के टापू ज्वालामुखी पहाड़ियों, नारियल के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों, निर्मल झीलों, और समुद्र-तट के कारण बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। मनुष्य के हाथों ने स्थान-स्थान पर प्रकृति की इस सुन्दरता को और अधिक बढ़ा दिया है।

इन टापुओं के चारों ओर पानी ही पानी है। इसलिए जलवायु अच्छा और मौसम सुहावना रहता है। बरसात लगभग पूरे साल होती है। यहां गर्मी ९० से ९६ डिग्री तक रहती है; यानी न अधिक सर्दी, न अधिक गर्मी।

इन्डोनेशिया में अलग-अलग रंग-रूप के आदमी बसते हैं। उनमें 'मलायी' जाति के लोग अधिक हैं। पिछली मर्दुमशुमारी में इन टापुओं की आबादी कोई आठ करोड़ थी।

इस देश में कोई पच्चीस भाषाएं बोली जाती हैं, जिनमें मलायी भाषा का प्रचार सबसे अधिक है। यही इन्डोनेशिया की राष्ट्र-भाषा भी है। इसे सरकारी तौर पर "भाषा-इन्डोनेशिया" कहते हैं और लिखने के लिए रोमन-लिपि अपनायी गयी है।

इन्डोनेशिया में पुरुष अधिकतर निकर या तहमत पहनते हैं। शहरी स्त्रियों का पहनावा युरोपियन ढंग का है।

वहाँ की सभ्यता पर बहुत से देशों की सभ्यताओं का प्रभाव पड़ा है। लेकिन अरब-सभ्यता का असर अधिक है। हिन्दू, बौद्ध और ईसाई आदि धर्मों ने भी वारी वारी से अपना असर डाला है। यहाँ सब धर्मों को माननेवाले रहते हैं, जिनमें मुसलमान सबसे ज्यादा हैं।

हिन्दू, बौद्ध और इस्लामी संस्कृतियों का जैसा संगम वहाँ बना है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। वह हम भारतवालों के लिये एक सबक़ भी है। हालांकि इन्डोनेशिया के रहनेवाले अधिकतर मुसलमान हैं, पर जावा के हिन्दू मन्दिरों में फूल चढ़ाते उन्हें तनिक भी हिचक नहीं होती। उसी प्रकार बौद्ध-मठों की

जिस प्रेम और इज्ज़त के साथ उन्होंने सदियों से रक्षा की है, वह भी उनकी धार्मिक उदारता प्रकट करता है। इतना ही नहीं, दैनिक जीवन में इस्लाम-धर्म के नियमों की पूरी पाबन्दी करते हुए भी उन्होंने अपने नाच और नाटक की कलाओं को क़ायम रखा है। उनके नाच और नाटक की कलाओं पर रामायण और महाभारत जैसे हिन्दू-काव्यों का पूरा प्रभाव है। यह संस्कृतियों का मेल-जोल और धार्मिक उदारता उनके नामों में भी देखी जा सकती है जैसे इन्डोनेशिया के सबसे बड़े नेता और राष्ट्रपति का नाम है, डाक्टर अहमद सुकर्ण। वहाँ के एक और नेता हैं, जो पहले प्रधान मंत्री भी थे, जिनका नाम है अली शास्त्रोमिजोजो। इस प्रकार के नाम वहाँ सैकड़ों हजारों मिलते हैं।

नाच की कला में इन्डोनेशिया बहुत समय से प्रसिद्ध रहा है। बाली टापू के नाच का नाम दुनिया में दूर-दूर तक फैला हुआ है।

इन्डोनेशिया के बड़े शहर जकारता, जोग्याकारता और सराबिया हैं। जोग्याकारता इस देश की राजधानी है। इन्डोनेशिया में कई अच्छे बन्दरगाह हैं। उनमें यहाँ के व्यापार-केन्द्र सराबिया का बन्दरगाह "टॅंजिग्र-पैराक" सबसे बड़ा और ख़ास है।

इन्डोनेशिया से भारत का बहुत पुराना सम्बन्ध है। कोई १६००

वर्ष पहले भारत से हिन्दू व्यापारी वहाँ गए। वे अपने साथ भारत की महान् संस्कृति और सभ्यता भी लेते गए। वे वहाँ बड़े पैमाने पर तिजारत करने लगे। लोगों का आना-जाना बराबर जारी रहा। जो लोग हमारे देश से वहाँ गए, वे अपने साथ बौद्ध-धर्म भी लेते गए, जिसे इन्डोनेशिया के अनेक निवासियों ने अपना लिया, यहाँ तक कि ७वीं सदी में वहाँ भारतीयों का प्रभाव पूरी तरह जम गया। सुमात्रा में उनका और उनकी नयी सभ्यता से प्रभावित स्थानीय लोगों का एक साम्राज्य क़ायम हो गया। वह इतिहास में श्रीविजय-साम्राज्य के नाम से मशहूर है। सुमात्रा को तब 'स्वर्ण-द्वीप' यानी 'सोने का टापू' कहते थे। श्रीविजय-साम्राज्य एक महान् समुद्री ताक़त बन गया। उसका प्रभाव मलाया, फिलीपाइन्स, ताइपेह, विएतनाम के कुछ हिस्सों, कम्बोडिया और चीन के दक्खिनी भाग तक फैला हुआ था। उस समय को इन्डोनेशिया का 'सुनहरा युग' कहते हैं। तभी वहाँ कला, साहित्य आदि की उन्नति हुई।

लेकिन पूर्वी जावा का मद्जायाहिट-राज्य श्रीविजय-साम्राज्य के मातहत नहीं आया। १३वीं सदी से उसका महत्व इतना बढ़ने लगा कि आगे चलकर उसने महान् श्रीविजय-साम्राज्य को ख़त्म कर दिया।

के १८५७ ई० के विद्रोह से वहुत कुछ मिलती जुलती है।

आगे चलकर दुनिया में होनेवाली नयी घटनाओं का इन्डोनेशिया के लोगों पर भी असर पड़ा। आज़ादी की लड़ाई ने एक नया रूप ग्रहण किया। पहले महायुद्ध (१९१४–१८) के वाद हालैंड से पढ़कर लौटे देशभक्त विद्यार्थी प्रचार के ज़रिये अपनी जनता को जगाने लगे। वे ही देश के नये नेता वने। उनमें 'डा० अहमद सुकार्नो,' 'डा० मुहम्मद हाट्टा' और 'डा० सुल्तान शारियार' वहुत ही प्रसिद्ध हैं।

दूसरे महायुद्ध (१९३९–४४) के समय जापानियों ने हमला करके डचों से इन्डोनेशिया छीन लिया। पर उनकी हार के वाद वहां की देशभक्त जनता ने डा० सुकार्नो और डा० हाट्टा आदि नेताओं की देखरेख में डचों से डटकर लोहा लिया और अपनी आज़ादी हासिल की।

यह देश अव एक स्वतंत्र लोकराज है। १७ अगस्त, १९४५ ई० को इन्डोनेशियाई लोक-राज वना था। इस लोक-राज की नींव वहां के लोगों के अनुसार पांच वातों पर है—परमात्मा में विश्वास, सारे राष्ट्र के एक होने की भावना, लोक-राज की भावना, न्याय और मानवता। इसीको वे लोग 'पंच-शील' कहते हैं।

वोरोवोदुर के स्तूप का एक दृश्य। यह इन्डोनेशिया की कला का एक सुन्दर नमूना है।
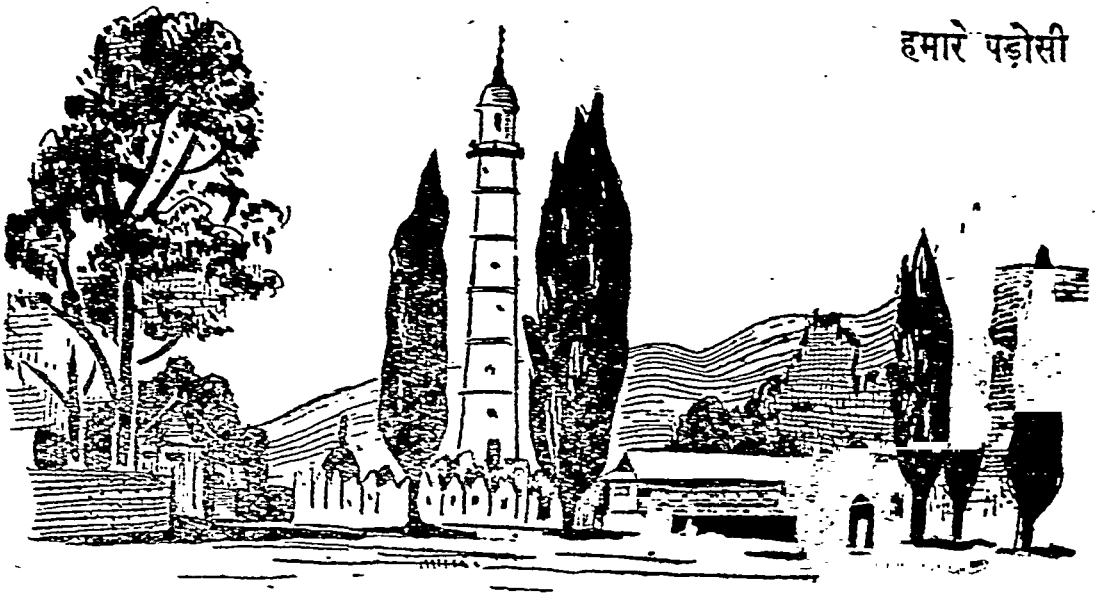
६

नेपाल

भारत के उत्तर में कमायूं और सिक्कम के बीच, पहाड़ों जंगलों, और उपजाऊ घाटियों की एक पट्टी है। वह कोई सवा पाँच सौ मील लम्बी है। उसकी चौड़ाई कहीं १४० मील है और कहीं ९० मील। इसीका नाम नेपाल है। नेपाल के उत्तर में तिब्बत और दक्खिन में हमारे देश के उत्तर-प्रदेश और बिहार के इलाक़े हैं। नेपाल के दक्खिनी भाग में जंगल और खेती के योग्य ज़मीन है। उसे तराई का इलाक़ा कहते हैं। उत्तरी भाग पहाड़ी और ऊँचा-नीचा है। वह उत्तर में तिब्बत की सीमा से मिला हुआ है। धौलगिरि, कंचनजंघा और एवरेस्ट की ऊँची ऊँची चोटियाँ उसी भाग में हैं। एवरेस्ट दुनिया की सबसे ऊँची चोटी है। इसकी ऊँचाई समुद्र

नेपाल की धरती में ताँबा, जस्ता, सीसा, आदि का ख़जाना भरा पड़ा है। वहाँ भूरे रंग का कोयला और चूने का पत्थर भी काफ़ी मिलता है। कहीं कहीं संगमरमर भी पाया जाता है।

नेपाल की आबादी कोई ८०-९० लाख है। अधिकतर नेपाली मंगोल जाति के हैं। उत्तर में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की गोद में रहनेवाले लोग या तो तिब्बती हैं, या मिली-जुली नस्ल के। वे "भोटिये" कहलाते हैं। दक्खिन की ओर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के परिवार हैं। उनके पुरखे किसी समय भारत से गए थे। नेपाल-वालों पर बौद्ध और हिन्दू धर्मों का असर है, इसीलिए वे लोग इन दोनों धर्मों में विश्वास रखते हैं। नेपाल में २,७०० से अधिक मन्दिर हैं। उनमें पशुपतिनाथ महादेव का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ हर साल शिवरात्रि के दिन बड़ा भारी मेला होता है। इस मेले में भारत से भी हजारों यात्री

पशुपतिनाथ का मन्दिर

जाते हैं।

नेपाल की तराई में अधिकतर गोरखाली रहते हैं। यही वह गोरखा जाति है, जिसकी बहादुरी और वफ़ादारी की कहानियाँ संसार के कोने-कोने में कही जाती हैं।

वहां कई भाषाएँ बोली जाती हैं। उनमें 'परवतिया' या पहाड़ी भाषा का अधिक प्रचार है। वह हिन्दी से बहुत मिलती जुलती है। भोटिये तिब्बती भाषा बोलते हैं और लिखने में भी उसी भाषा की लिपि काम में लाते हैं।

काठमांडू नेपाल की राजधानी है। वहीं नेपाल के महाराजाधिराज रहते हैं। पहाड़ों की गोद में बसा वह सुन्दर नगर नेपाल के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का केन्द्र है। १९५० ई० तक नेपाल में एक ऐसा राजतंत्र था जिसमें सारा अधिकार प्रधान मंत्री के हाथ में ही होता था। न केवल जनता की आवाज़ ही नहीं सुनी जाती थी, बल्कि प्रधान मंत्री के सामने महाराजाधिराज की भी कोई ताकत न थी। प्रधान मंत्री का पद खानदानी था और उन्हीं को सब अधिकार हासिल थे। वे राणा कहलाते थे और राणाशाही तानाशाही का दूसरा नाम बन गया था।

एक तरफ़ जनता बेचैन थी और दूसरी तरफ़ महाराजा। फल यह हुआ कि राणाशाही के विरुद्ध जनता के आन्दोलन उठ खड़े हुए। तभी नवम्बर, सन् १९५० ई० में एक दिन महाराजा चुपके से दिल्ली चले आए। भारत की सरकार और प्रधान-मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें बड़े आदर के साथ अपना मेहमान बनाकर रखा। महाराजा का काठमांडू

से चला आना जनता के आन्दोलनों के लिये एक बहुत बड़ा संकेत बन गया। जनता के आन्दोलन खूब तेज़ी से चलने लगे। अन्त में राणाशाही को घुटने टेकने पड़े और महाराजा फिर काठमांडू वापस आ गए। जनता की लोक-राज्य की माँग उन्होंने मान ली और १८ फरवरी, १९५१ को नेपाल में एक नए शासन का एलान हुआ। उस एलान के अनुसार राजतन्त्र क़ायम रहा पर महाराज ने जनता के प्रतिनिधियों की सलाह से ही राजकाज चलाने का इत्मीनान दिलाया। अब नेपाल लोक-राज के सिद्धान्तों पर आगे बढ़ रहा है।

नेपाल में उद्योग-धन्धे अधिक नहीं हैं। विराट नगर में दो जूट मिलें, एक शक्कर मिल, एक दियासलाई का कारख़ाना और एक सूती मिल है। वीरगंज नेपाल का दूसरा कारोबारी नगर है। यहाँ एक दियासलाई का कारख़ाना और एक सिगरेट बनाने का कारख़ाना है। धान कूटनेवाली मिलें तो तराई में कई जगह हैं।

शिक्षा का प्रसार कम हुआ है। स्कूलों की संख्या अधिक नहीं है। कालेज काठमाँडू और वीरगंज में हैं। अभी कोई विश्वविद्यालय नहीं खुला है। यहाँ के कालेजों का सम्बन्ध पटना-विश्वविद्यालय से है। नेपाल के विद्यार्थी ऊँची शिक्षा लेने भारत भी आते हैं। हमारे देश के साथ नेपाल का दोस्ती का सम्बन्ध बहुत पुराना है। आजकल एक विश्वविद्यालय खोलने की योजना बन गयी है। राणा-राज में नेपाल में कोई अखबार नहीं था। पर अब कई अखबार निकलने लगे हैं। जुलाई १९५६ ई० से अंग्रेज़ी का एक दैनिक अखबार, भी शुरू हुआ है।

कुछ समय पहले तक नेपाल के बारे में लोगों की जानकारी बहुत

कम थी। अब भारत से काठमाँडू तक अच्छी सड़क बन गयी है और यात्रियों के लिये बड़ी सुविधा हो गयी है। नेपालवासी अब भारत और अन्य देशों को आसानी से आ जा सकते हैं। सिंचाई और बिजली की एक योजना भी वहाँ आरम्भ हो चुकी है। उसके सफल होने पर नेपाल उन्नति के पथ पर तेज़ी से आगे बढ़ेगा।
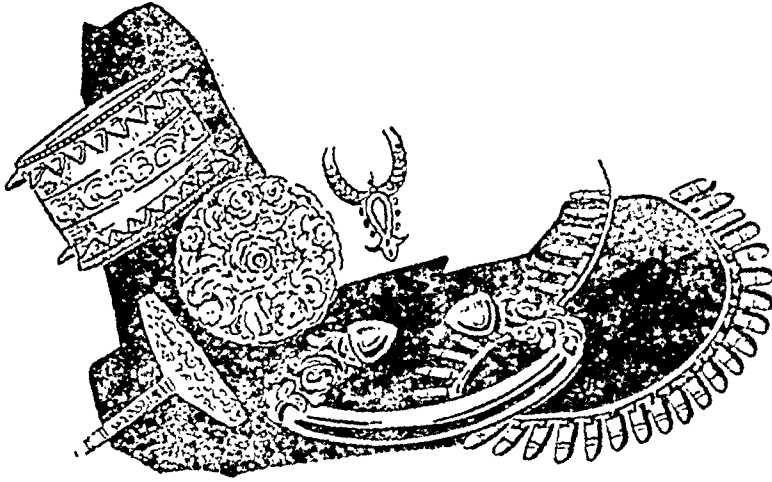
७

एवरेस्ट पर विजय

हिमालय पहाड़ भारत के उत्तर में है। उसकी सबसे ऊँची चोटी का नाम 'एव रेस्ट' है। यह नाम एक अंग्रेज सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर पड़ा था। उन्होंने सन् १८४१ ई० में हिमालय का सर्वे किया था। एवरेस्ट साहब चोटी के ऊपर नहीं चढ़े। उन्होंने केवल नीचे से और दूर से चोटी को देखा और कई यंत्रों की सहायता से उसकी ऊँचाई का ठीक ठीक हिसाब लगाने की कोशिश की। एवरेस्ट साहब के अनुसार इस चोटी की ऊँचाई २९,००२ फ़ुट है। इतनी ऊँचाई पर किसी मनुष्य का रहना क्या, पहुँचना भी जान पर खेलना है, और जान पर खेलना हिम्मतवालों का ही काम है। पिछले तीस-बत्तीस वर्ष से बराबर

अलग-अलग देशों के लोग एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने की कोशिश करते रहे। पर हर बार उन्हें निराशा का सामना करना पड़ा। फिर भी साहसी लोग हिम्मत न हारे। अन्त में २९ मई, सन् १९५३ ई० को मनुष्य इस चोटी पर पहुँच ही गया।

युरोप के लोगों ने एवरेस्ट पर चढ़ाई की सबसे पहली कोशिश १९२१ ई० में की थी। चढ़ाई करनेवाले लंदन की भूगोल सोसायटी के कुछ लोग थे। हावर्ड वैरी उनके नेता थे। वे लोग तिव्बत की ओर से गए थे। उन्होंने चारों ओर घूम फिरकर नक्शे बनाए और प्रसिद्ध यात्री मेलोरी ने चोटी पर चढ़ने का रास्ता मालूम किया। पर उस साल वह दल ऊपर तक नहीं गया। दूसरे साल एक और दल ने जनरल ब्रूस की देखरेख में इस चोटी पर चढ़ने की कोशिश की। मौसम साथ देता तो यह दल जरूर सफल हो जाता। उस दल के लोग दार्जिलिंग की तरफ से जा रहे थे और चढ़ते-चढ़ते २६,९८५ फ़ुट की ऊँचाई तक पहुँच गए थे। पर एकाएक मौसम खराब हो गया। मानसूनी झक्कड़ चलने लगे। उन्हें लाचार होकर लौटना पड़ा। वापसी में बर्फ़ का एक तूदा ऊपर से टूट कर गिरा, जिससे दबकर उनके साथ के सात कुली मर गए। जानें तो गईं, पर मनुष्य पहली बार लगभग २७,००० फ़ुट की ऊँचाई पर पहुँच गया। सन् १९२४ ई० में एवरेस्ट पर तीसरी चढ़ाई की गई। इस बार दो वीर, मेलोरी और इर्विन, २८,००० फ़ुट से भी ऊपर जा पहुँचे। परन्तु न वे वापस आए और न उनका कोई समाचार ही मिला। कुछ भी पता न चलने पर यह मान लिया गया कि वे दोनों वीर सदा के लिए हिमालय की गोद में सो गए। यह तीसरी चढ़ाई एवरेस्ट विजय के इतिहास में बड़े

महत्त्व की है, क्योंकि एक तो मेलोरी और इर्विन जैसे वीर इस चढ़ाई में शहीद हुए, दूसरे मनुष्य पहली बार २८,००० फ़ुट से भी ऊपर पहुँच गया।

फिर भी मंजिल अभी दूर थी और बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना था। मनुष्य ने हार न मानी। वह बराबर कोशिश करता रहा। सन् १९३३, १९३५, १९३६, और १९३८ ई० में साहसी पुरुषों के अलग-अलग दलों ने इस चोटी पर विजय पाने की कोशिश की। १९३६ ई० में इंगलैंड के दो हवाई जहाज एवरेस्ट के ऊपर उड़े। १९५२ ई० की गर्मियों में स्विट्ज़रलैंड का एक दल एवरेस्ट विजय के लिए चला, पर मौसम की कठोरता के कारण उसे भी निराश होना पड़ा। यह दल २८,२५० फ़ुट तक ही चढ़ पाया था।

एवरेस्ट पर चढ़ने की कोशिश मई के महीने में की जाती रही है, क्योंकि उन दिनों सर्दी कुछ कम रहती है और मौसम अच्छा रहता है। दूसरे सालों की तरह १९५३ ई० की मई में एवरेस्ट पर एक और चढ़ाई की गई। चढ़ाई करनेवाले ब्रिटिश-हिमालय दल के थे। दल के सरदार कर्नल हंट थे। हर बार चढ़नेवालों को कुछ तिब्बतियों या नेपालियों की सहायता लेनी पड़ती थी। इस बार तेनसिंह शेरपा नाम के एक युवक ने केवल सहायता ही नहीं दी, बल्कि उसने चोटी पर सबसे पहले चढ़ जाने का मान भी पाया। शेरपा जाति के लोग पहाड़ों पर चढ़ने में बड़े निपुण होते हैं। वे

लोग तिब्बती हैं, पर बहुत दिनों से नेपाल में और भारत के दार्जिलिङ्ग नगर के पास बस गए हैं। तेनसिंह उन्हीं शेरपाओं में से एक हैं।

२९ मई, १९५३ का दिन मनुष्य के साहस की कहानी में महान् दिन था। उसी दिन तेनसिंह और उनके साथी कप्तान हिलेरी ने अपने क़दम एवरेस्ट पर रखे। उन्होंने चोटी पर संयुक्त राष्ट्रसंघ, भारत, नेपाल और ब्रिटेन के राष्ट्रीय झंडे फहराए।

पिछले दलों के अनुभवों को सामने रखकर इस दल ने अच्छे वैज्ञानिक, भूगोल जाननेवाले, डाक्टर, फ़ोटो उतारनेवाले और पत्रकार अपने साथ लिए थे। चौदह आदमियों की यह टोली हर तरह से एक दूसरे का हाथ बटाती रही।

ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई में ऑक्सीजन की कमी सबसे बड़ी रुकावट होती है। ऑक्सीजन एक तरह की गैस है जो हवा में रहती है। सभी जीवधारियों के लिए वह बहुत जरूरी है। २६,००० फ़ुट की ऊँचाई पर ऑक्सीजन इतनी कम रहती है कि साँस लेना भी कठिन हो जाता है। इसलिए पहाड़ों
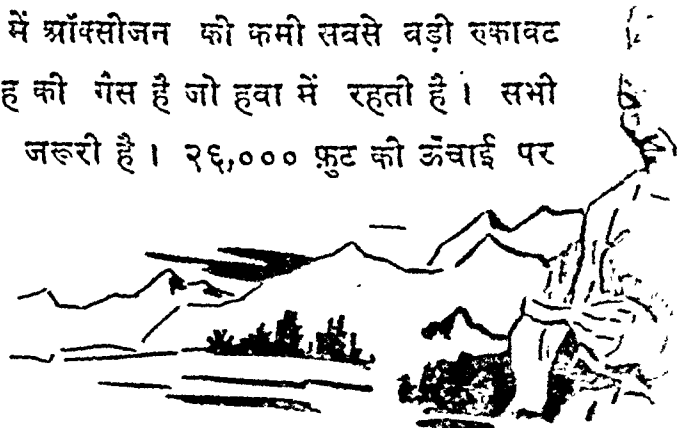
पर चढ़नेवाले अपने साथ ऑक्सीजन से भरे सिलेंडर या बेलन रखते हैं, और जब ऑक्सीजन की कमी जान पड़ती है, तो साँस लेने में उससे सहायता लेते हैं। कर्नल हंट और उनके साथी ऑक्सीजन के काफ़ी सिलेंडर अपने साथ ले गए थे।

एवरेस्ट पर ऐसी ठंडी बर्फ़ीली हवाएं चलती हैं कि अच्छे से अच्छा गरम कपड़ा भी बेकार हो जाता है। इस दल के लोग अपने साथ ऐसे विशेष ढंग के कपड़े तैयार करा ले गए थे, जो शरीर को हवा, पानी और बर्फ़ से बचा सकते थे और हल्के भी थे। इसी प्रकार विशेष ढंग के जूते भी बनवाए गए जिनपर सर्दी और वर्षा का प्रभाव न पड़े। इन चीज़ों के सिवा संदेश भेजनेवाले यंत्रों, खाने के डिब्बों, चूल्हों, खेमों, दवाइयों, एवरेस्ट के नक़्शों और दूसरी सैकड़ों चीज़ों का भी प्रबन्ध किया गया।

यह सारा सामान पहले नेपाल की राजधानी काठमाँडू पहुँचाया गया। वहाँ से सारे सामान के साथ यह दल थ्यांग-बोचे को रवाना हुआ जो पैदल १७ दिन का रास्ता है। वहाँ पहला कैम्प बनाया गया। थ्यांग-बोचे कोई १२,००० फ़ुट की ऊँचाई पर है। वहाँ से एवरेस्ट की चोटी तक आठ कैम्प और लगाए गए। ये कैम्प इसलिए लगाए जाते हैं कि यदि कोई बीमार पड़ जाए, तो उसे नीचे के कैम्प में भेज दिया जाए। रात में वे सोने के भी काम आते हैं। सभी कैम्पों में खाने की चीज़ों और रात बिताने के लिए कपड़ों का उचित प्रबन्ध था। आखिरी कैम्प २७,६०० फ़ुट की ऊँचाई पर लगाया गया, जिससे रात बिताने के बाद दूसरे दिन सवेरे ही चोटी पर पहुंचने का प्रयत्न किया जाए।

तेनसिंह एवरेस्ट की चोटी पर

वर्फ़ से ढका रास्ता

थ्यांगवोचे में पहला कैम्प
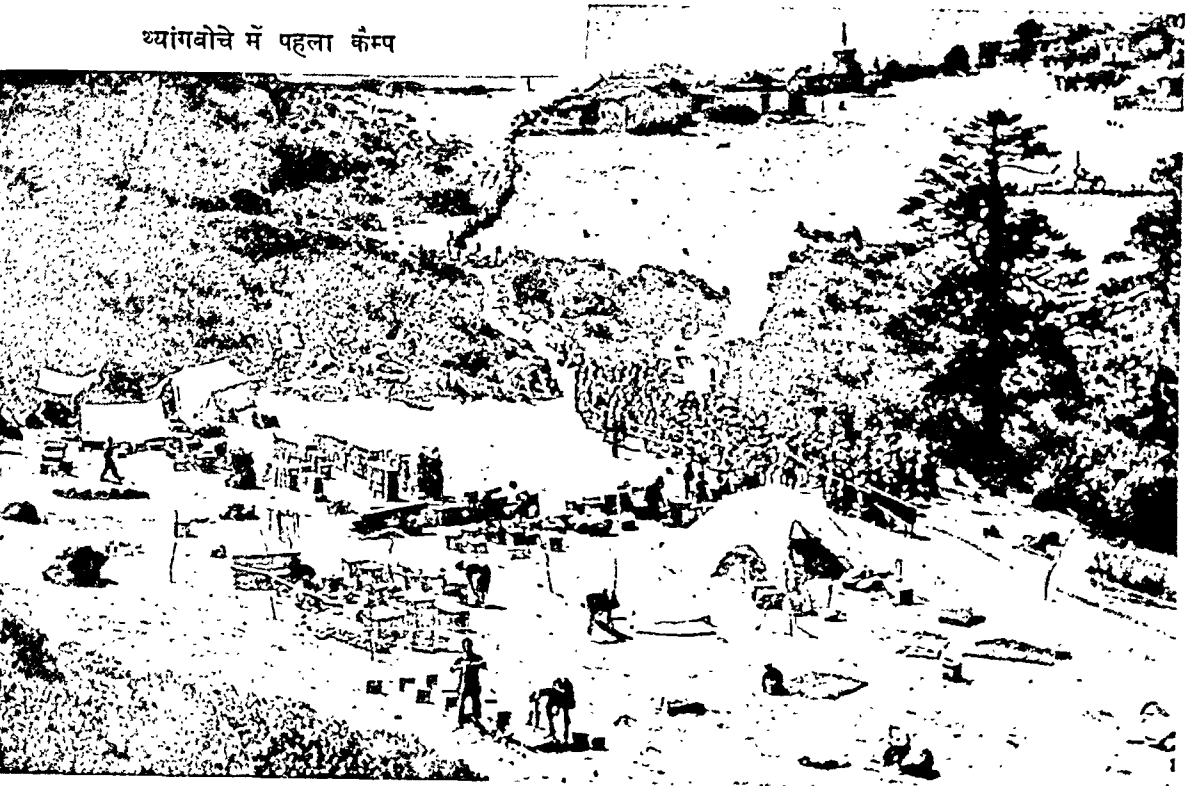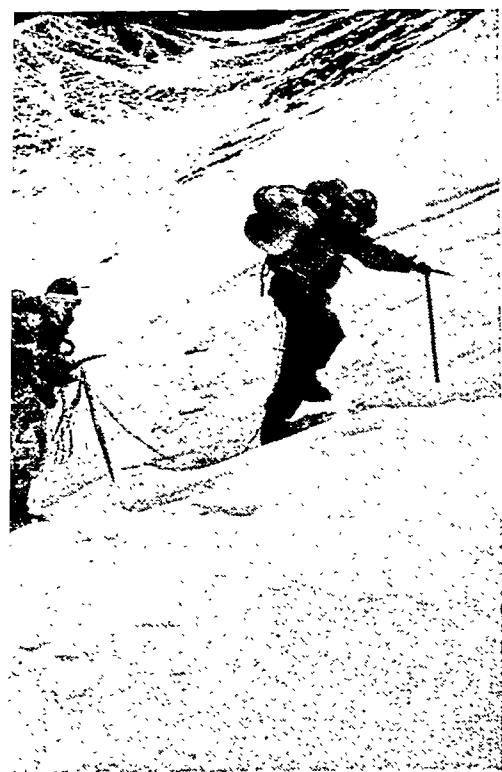
एक कठिन चढ़ाई

तेर्नसिंह और हिलेरी
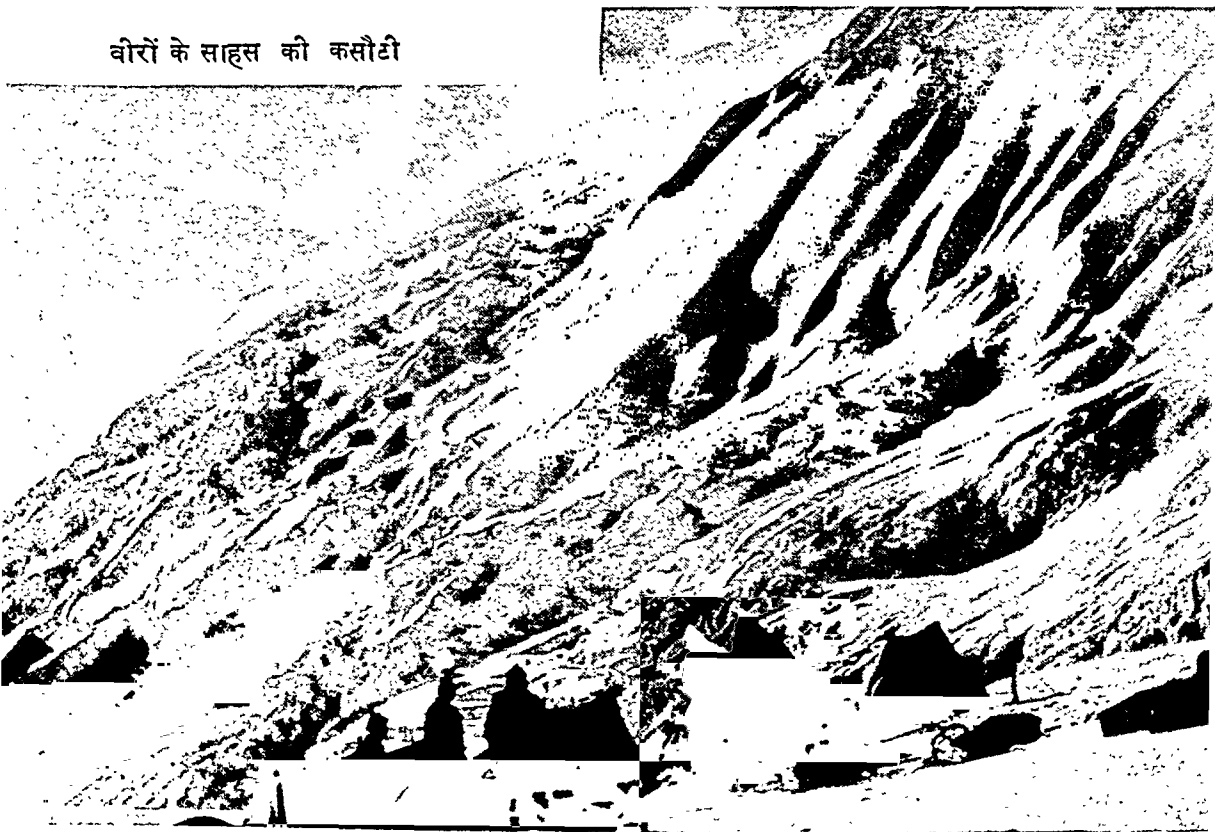
वीरों के साहस की कसौटी
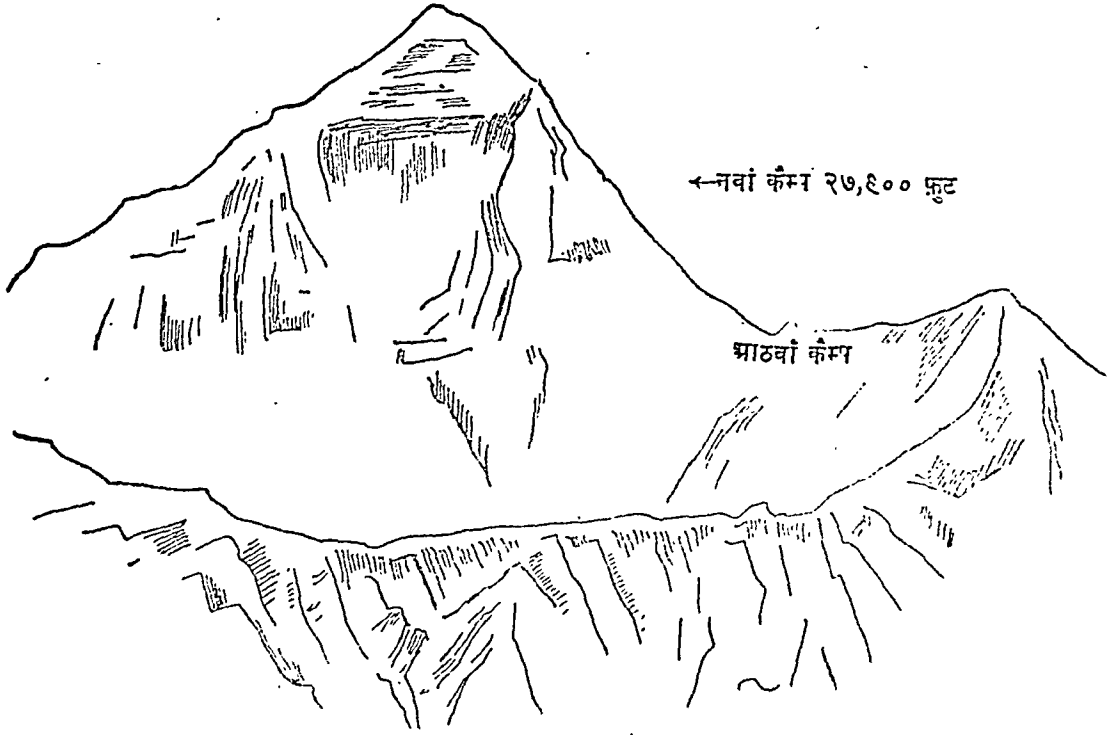
२६ मई को तेनसिंह और हिलेरी सवेरे ही नवें कैम्प से एवरेस्ट विजय को चल पड़े और ११½ बजे चोटी पर पहुँच गए। वहाँ वे लोग २० मिनट तक रहे। जिधर नज़र जाती थी, उधर बर्फ़ ही बर्फ़ दिखलाई पड़ती थी। दूर दूर पर हिमालय की बर्फ़ से ढकी दूसरी चोटियाँ नज़र आ रही थीं।

एवरेस्ट पर कुल ग्यारह बार चढ़ाई की गयी। इनमें से दस बार सफलता न मिली। परन्तु मनुष्य हार नहीं मानता। असफलता से अनुभव प्राप्त करता है। इसी का फल था कि अन्त में वह एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गया।

एवरेस्ट पर आदमी ने विजय तो पा ली। पर दुनिया की उस सबसे ऊँची चोटी पर बार बार चढ़ने की उसकी इच्छा कम न हुई। इसीलिए मई १९५६ ई० में स्विट्ज़रलैण्ड के कुछ लोगों ने एवरेस्ट पर फिर चढ़ाई की। उनके दल में कुल छः आदमी थे। उनमें से अर्नेस्टश्मित्त और मुर्ग-मार्मेत २३ मई को चोटी के ऊपर पहुँच गए और वहाँ घण्टा भर रुके रहे। उसके दूसरे दिन २४ मई को उनके दो और साथी एडॉल्फ़ रीस्त और एडॉल्फ़ हान्स भी एवरेस्ट पर चढ़ गए और वहाँ दो घण्टे तक रुककर उन्होंने पचासों फ़ोटो खींचे। तेनसिंह और हिलेरी एवरेस्ट के ऊपर कुल बीस मिनट ही रुक पाए थे।

८

श्रीकृष्ण जी

श्रीकृष्ण जी के जीवन की कथा इतिहास की सीमा में नहीं आती। इसलिए वे किस सन् या सम्वत् में पैदा हुए थे, यह बताना सम्भव नहीं है। मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि वे महाभारत के समय में आज से कई हज़ार वर्ष पहले हुए थे। यह सभी मानते हैं कि अपने पुराने इतिहास की हमारी जानकारी अधूरी है। इसलिए श्रीकृष्ण जी का जीवन चाहे हमारी ऐतिहासिक जानकारी के भीतर आवे या न आवे, वह हमारे देश की संस्कृति का एक ऐसा अंग बन गया है जिसने हमारे साहित्य और कला को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है।

ऐसे बहुत से लोग, जो इस बात में विश्वास करते हैं कि समय समय पर ईश्वर अवतार लेकर समाज में फैली बुराइयों को दूर करता है, श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार मानते हैं। पर जो ऐसा नहीं मानते उनमें से भी ज्यादातर लोग एक महापुरुष के रूप में उनका आदर और सम्मान करते हैं।

श्रीकृष्ण जी की जीवन-कहानी महाभारत और भागवत् पुराण में मिलती है। उन दिनों उग्रसेन मथुरा के राजा थे। वे यदुवंश के थे। उनकी बेटी देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ था। उग्रसेन के बेटे का नाम कंस था। वह बड़ा अत्याचारी था। अपने बाप को क़ैद में डालकर वह आप राजा बन बैठा। पर उसे हमेशा यह डर बना रहता था कि कहीं उसका कोई और सम्बन्धी राज न छीन ले। इसलिए वह अपने सभी सम्बन्धियों को अपने रास्ते का कांटा समझता था और उनका अन्त करने के प्रयत्न में लगा रहता था। यही कारण है कि उसने अपनी बहिन देवकी और बहनोई वसुदेव को भी क़ैद में डाल रखा था। भागवत पुराण के अनुसार क़ैद में ही वसुदेव और देवकी के सात बच्चे हुए, जिन्हें कंस ने मरवा डाला। आठवें बच्चे का जन्म भादों बदी अष्टमी को आधी रात के समय हुआ। उसी समय वसुदेव बच्चे को उठाकर किसी तरह क़ैदखाने से निकल गए। यमुना पार गोकुल नाम का गाँव था। वहाँ के मुखिया नंद वसुदेव के मित्र थे। वसुदेव अपने मित्र के घर पहुँचे और बालक को उनके सुपुर्द कर दिया। यही बालक

श्रीकृष्ण थे।

नन्द और उनकी पत्नी यशोदा ने बालक श्री कृष्ण को अपने बच्चे की तरह लाड़ के साथ पाला। श्री कृष्ण जी का बचपन गोकुल में और लड़कपन पास ही के गाँव वृन्दावन में ग्वाल-बालों के बीच बीता। श्री कृष्ण जी ने अपने बचपन में ही बड़े साहस के काम कर दिखलाए। कई अत्याचारियों को उन्होंने मारा। गाँववालों को बड़े-बड़े संकटों से बचाया। गोवर्द्धन उठाने की कहानी तो बहुत ही प्रसिद्ध है। श्री कृष्ण जी बड़े ही सुन्दर और होनहार बालक थे। सभी नर-नारी उन्हें प्यार करते थे। कवियों ने उन की बाल-लीला और राधा-कृष्ण के प्रेम का बहुत ही सुन्दर ढंग से बखान किया है।

बड़े होकर श्री कृष्ण जी मथुरा लौटे। उन्होंने कंस को मारा और लोगों ने चैन की साँस ली। कंस को मारकर वह आप राजा नहीं बने, बल्कि कंस के पिता उग्रसेन को क़ैद से निकालकर गद्दी पर बैठाया। कुछ समय बाद श्री कृष्ण जी द्वारका में जा बसे। वहाँ से उन्होंने भारत की राजनीति में भाग लेना शुरू किया और बहुत जल्दी वे उस पर छा गए।

इसी समय कुरु-वंश में कौरवों और पांडवों के बीच झगड़े शुरू हो गए। वे आपस में चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण जी ने इन झगड़ों को मिटाने की बहुत कोशिश की, पर दोनों तरफ़ की भूलों से झगड़े बढ़ते ही गए। अन्त में जब लड़ाई की नौबत आ गयी, तो श्रीकृष्ण जी

ने पांडवों का साथ दिया। हस्तिनापुर का कुरु-वंश भारत में सब से बलवान राजकुल था। इसलिए जब ये झगड़े बढ़े, तो आसपास के सब राजा इनकी लपेट में आ गए। किसी ने एक का साथ दिया, तो किसी ने दूसरे का। अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में दो बड़ी सेनाएं जमा हो गईं।
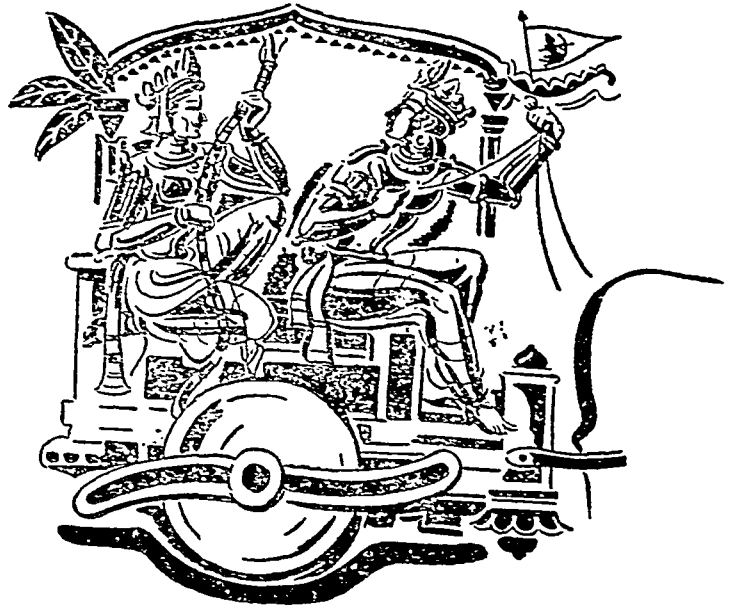
अठारह दिन तक घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के बड़े बड़े वीर काम आए। यही लड़ाई महाभारत की लड़ाई कहलाती है। इसमें जीत पांडवों की हुई, पर इस जीत का सेहरा श्रीकृष्ण जी के सिर था। उन्होंने पांडवों के सेनापति अर्जुन का रथ स्वयं हांका। समय समय पर पांडवों को अपनी अनमोल सलाहें दीं, और कई तरह के संकटों से निकाला। लड़ाई के शुरू में ही अर्जुन के मन में तरह तरह की शंकायें और डर पैदा होने लगे थे। उसी समय श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को वह अमर उपदेश दिया, जिसे आज सारा संसार 'भगवत् गीता' के नाम से जानता है।

महाभारत की लड़ाई के बाद श्रीकृष्ण जी द्वारका लौट गए और वैराग्य का जीवन बिताने लगे। अब उनका काम पूरा हो चुका था। वहीं कुछ वर्ष बाद जंगल में अचानक किसी शिकारी का तीर लग जाने से उनकी

सार-लीला पूरी हुई।

श्रीकृष्ण जी हमारे सामने तीन रूपों में आते हैं। पहले अपने बाल-रूप , जब निडर और साहसी बालक कृष्ण ने अपनी प्रतिभा से सब को चकित र दिया। उस समय वे आसपास के गांवों के नेता बने, और लोगों को त्याचार का सामना करना सिखाया।

इसके बाद श्रीकृष्ण जी हमारे सामने एक राजनीतिज्ञ के रूप में आते । देश के एक कोने में बैठकर उन्होंने भारत को एक सूत्र में बांधने की ोशिश की।

उनका तीसरा रूप इन दोनों रूपों से कहीं बढ़ कर है। इसमें वह मारे सामने एक बहुत बड़े मार्गदर्शक के रूप में आते हैं। गीता का जो ान उन्होंने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में दिया, उसमें मानव जीवन के हर पहलू र बड़ी गहराई से विचार किया गया है।

उस समय वेदों की रचना हो चुकी थी। उपनिषदों का सिलसिला भी, जसमें ईश्वर, जीव और जगत् पर बहुत गहराई से विचार किया गया है, ाफ़ी आगे बढ़ चुका था। श्रीकृष्ण जी ने इन सबका निचोड़ लेकर अपने नजी अनुभव से उसे चमका दिया। गीता उसी उपदेश का नाम है। यह पदेश किसी एक जाति, देश, समय या एक धर्मवालों के लिए नहीं है। चाई की खोज करनेवाला चाहे कोई हो, गीता से वह बहुत कुछ सीख कता है और लाभ उठा सकता है।

श्रीकृष्ण जी के उपदेशों को थोड़े में इस प्रकार कहा जा सकता —आत्मा अमर है। शरीर के कटजाने, जल जाने, या किसी तरह भी ष्ट हो जाने से आत्मा नष्ट नहीं होती। ईश्वर एक है। वही

सबका ईश्वर है। दुनिया के सब धर्म अपने अपने ढंग से आदमी को उसी एक ईश्वर तक पहुँचाते हैं। धर्म का असली सार किसी तरह का पूजा-पाठ, रीति-रिवाज या कर्मकांड नहीं है। असली सार है अपने आप को जीतना, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखना, सुख-दुःख और हानि लाभ सब में एक रस रहना, सबके साथ सचाई और नेकी का बर्ताव करना, सबकी भलाई के कामों में लगे रहना, और एक ईश्वर में अपने मन को लगाना। फल की चाह न करके कर्त्तव्य पर डटे रहना आदि। यही गीता के उपदेशों का सार है।

९
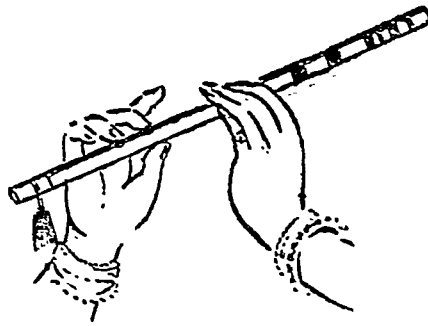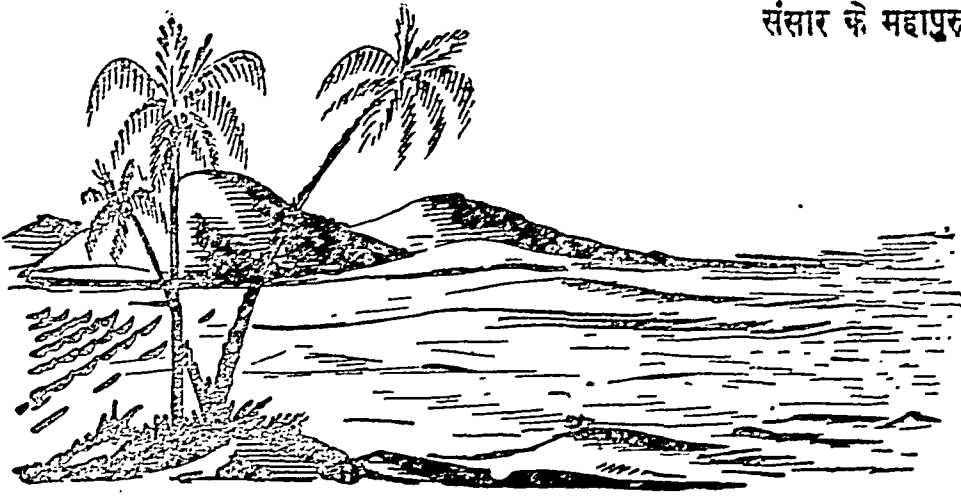
मुहम्मद साहब

मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५७० ई० में अरब देश के मक्का शहर में हुआ था। उनकी माता का नाम आमिना और पिता का नाम अब्दुल्ला था। उनके खानदान के लोग या तो मक्के के पुराने तीर्थ-स्थान, काबे के महन्त होते थे, या व्यापार से अपना गुज़र बसर करते थे।

अरब भारत से कुछ दूर पच्छिम में ईरान और अफ्रीका के लगभग बीच में एक देश है। मुहम्मद साहब के जन्म के समय उस देश की दशा बहुत गिरी हुई थी। देश भर में सैकड़ों छोटे-छोटे क़बीले थे, जो अक्सर एक दूसरे से लड़ते रहते थे। इन क़बीलों की आपसी लड़ाइयां पीढ़ियों तक चलती थीं। हर क़बीले का अपना एक देवता होता था, जो रंग रूप में दूसरे

क़बीलों के देवताओं से अलग होता था। हर क़बीला अपने ही देवता को पूजता था। क़बीलेवालों की लड़ाइयाँ इन देवताओं की लड़ाइयाँ भी समझी जाती थीं और कभी कभी तो जीतनेवाला क़बीला हारे हुए क़बीले के 'देवता' को क़ैद करके अपने यहाँ ले आता था। यह विचार कि सब का एक ही ईश्वर या अल्लाह है, उस समय अरब में बहुत ही कम लोगों का था।

अरब के अलग अलग भागों में अलग अलग राजा थे। उत्तर का बहुत सा इलाक़ा रोम के सम्राट् के अधीन था। पूर्व और दक्खिन के इलाक़ों पर ईरान का राज था। पच्छिम का एक बड़ा और उपजाऊ भाग अबीसीनिया के सम्राट् के कब्ज़े में था। बीच का भाग अधिकतर रेगिस्तानी था, पर इस भाग पर भी तीनों विदेशी ताक़तों के दांत बराबर

लगे हुए थे। मक्का और मदीना के मशहूर शहर इसी भाग में थे।

अब अगर हम अरब से हटकर उस समय के कुछ आसपास के देशों पर निगाह डालें, तो उनकी दशा विशेषकर धर्म या मज़हब के मामले में, और भी बुरी दिखाई देती है। ईरान में ज़रतुश्ती यानी पारसी धर्म चालू था। यह धर्म शुरू में दुनिया के और सब बड़े धर्मों की तरह बहुत ही ऊँचा धर्म था; पर जिन दिनों की बात हम कर रहे हैं, उन दिनों इसमें तरह तरह की बुराइयाँ घर कर चुकी थीं। युरोप में और विशेषकर रोम में उन दिनों ईसाई धर्म का बोलवाला था। उस धर्म के माननेवालों में भी वे बहुत से लोग जिनके हाथ में समाज का संचालन था, ईसा मसीह के ऊँचे आदर्शों से गिर चुके थे। उनमें बहुत से दल पैदा हो गए थे। ये दल छोटी छोटी बातों पर बहुत बहस करते और आपस में लड़ते-भिड़ते रहते थे। जीतनेवाले दल के लोग दूसरे दल के लोगों से ज़बरदस्ती अपनी बात मनवाते थे। अगर वे न मानते तो उन्हें तलवार के घाट उतार देना या ज़िन्दा जला देना वे अपना अधिकार समझते थे। मुहम्मद साहब के जन्म के समय रोम साम्राज्य और युरोप के दूसरे देशों में इलाक़े के इलाक़े इस धार्मिक पागलपन के कारण बरबाद हो गए थे। युरोप भर में धार्मिक आज़ादी या विचारों की स्वतन्त्रता का कहीं नाम तक न था।

इस तरह के देश और इस तरह की दुनिया में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ।

मुहम्मद साहब शुरू से ही बहुत विचारशील और एकान्तसेवी थे। वह अपने देशवासियों की हालत पर खूब सोचते रहते थे और उसे देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता था। अपने देश की दशा सुधारने के लिए

मुहम्मद साहब एक ओर तो ईश्वर से प्रार्थनाएँ करते थे, और दूसरी ओर अपने आप भी समाज सेवा के उपायों की खोज में लगे रहते थे। जल्दी ही उन्हें एक ऐसा अवसर मिल गया।

काबे की यात्रा या हज करने के लिए दूर दूर से यात्री आते थे उन्हें अक्सर रास्ते में ही लूट लिया जाता था। देश भर में कोई कचहरी या अदालत ऐसी न थी जिसमें वे न्याय के लिए फ़रियाद कर सकें। मुहम्मद साहब ने सबसे पहले मक्के के बहुत से ख़ानदानों के नौजवानों का एक दल बनाया, जो इन परदेसियों के जान-माल की रक्षा कर सके। कोई साठ साल तक यह दल बहुत अच्छा काम करता रहा।

कुछ दिन बाद एक और घटना हुई। पानी की बाढ़ से काबे की दीवारें फट गईं। उनकी मरम्मत के बाद काबे के पवित्र पत्थर, 'संगेअसवद', को फिर से ठीक जगह रखने का सवाल सामने आया। काबे के महन्तों का ख़ानदान कुरैश चार शाखाओं में बंटा था। इन चारों में इस बात पर झगड़ा होने लगा कि 'संगेअसवद' को उठाने और ठीक जगह रखने का मान किसे मिले। झगड़ा बढ़ता दिखाई दिया। आख़िर सबने मिल कर फ़ैसले के लिए मुहम्मद साहब को बुलाया। मुहम्मद साहब ने आकर बड़ी सुन्दरता के साथ सबका मान रखते हुए झगड़े का फ़ैसला किया। उन्होंने 'संगेअसवद' को एक चादर पर रखवाया, फिर चारों ख़ानदानों के एक एक आदमी से कहा कि वे चादर का एक एक कोना पकड़ कर उसे ऊपर उठाएँ। जब चादर ठीक जगह पर जा लगी, तब उन्होंने अपने आप 'संगेअसवद' को हल्के से सरकाकर उसकी जगह पर पहुँचा दिया। सबने उनकी चतुराई और शान्ति-प्रेम को सराहा।

उन दिनों मुहम्मद साहब अपने देश में अल-अमीन के नाम से मशहूर थे, जिसका अर्थ होता है—सब का विश्वासपात्र। सचमुच सब लोग उन्हें विश्वास और आदर की दृष्टि से देखते थे। उनकी ईमानदारी के कारण ही खुदैजा नामक एक धनवान महिला ने उन्हें अपने व्यापार की देखभाल के लिए रख लिया। मुहम्मद साहब व्यापारी क़ाफ़िलों के सरदार के रूप में दूसरे देशों में भी आने-जाने लगे। इस तरह उन्हें देश-देश के वासियों से मिलने और उनके बारे में लाभदायक जानकारी पाने का अवसर मिला। मुहम्मद साहब की ईमानदारी के कारण खुदैजा को व्यापार में बहुत लाभ हुआ। खुदैजा पर मुहम्मद साहब के सदाचार और व्यवहार का भी गहरा असर पड़ा और उन्होंने मुहम्मद साहब के साथ शादी कर ली।

विवाह के बन्धन भी मुहम्मद साहब को जन-हित की राह पर बढ़ने से न रोक सके। अब वे हिरा पहाड़ की एक गुफ़ा में जा बैठते और घंटों अपने देश और समाज की दशा पर विचार करते रहते। यह क्रम चालीस वर्ष की उम्र तक चलता रहा।

चालीस वर्ष की उम्र में मुहम्मद साहब ने अपने भीतर एक महान् शक्ति और प्रकाश का अनुभव किया। अब वे अपने अल्लाह का सन्देश अपने समाजवालों को भी सुनाने लगे। उनके उपदेशों की विशेष बातें ये थीं :

अल्लाह एक है। उसका कोई रंग-रूप नहीं है। उस एक के सिवा किसी दूसरे देवी-देवता या किसी और की पूजा करना पाप है।

संसार के सब आदमी वास्तव में एक ही परिवार के हैं। इसलिए उनमें क़बीले-क़बीले, जात-पांत, ऊँच-नीच, या छुआछूत का कोई भेद नहीं

होना चाहिए।

सबको हर तरह की बुराइयाँ छोड़कर वे काम करने चाहिए, जिन्हें सब लोग अच्छा समझते हैं।

मुहम्मद साहब ने अपने देशवासियों को समझाया कि जुआ खेलना, शराब पीना, सूद लेना और लड़कियों को जिन्दा दफ़न करना, आदि बुराइयों से और हर तरह की बदचलनी से बचो। स्त्रियों की दशा को उन्होंने बहुत ऊँचा उठा दिया। उन्होंने नियम बनाया कि स्त्रियों को भी बाप की सम्पत्ति में हिस्सा मिले। ग़ुलामों को भी बराबरी का दरजा दिलाया। उन्होंने अपने साथियों से कहा कि जो खाना तुम खाओ, वही अपने ग़ुलामों को खिलाओ, जो कपड़े तुम पहनो, वही उनको पहनाओ और उनके साथ कभी किसी तरह की कड़ाई न करो। मुहम्मद साहब ने अर्थ-व्यवस्था के भी कुछ ऐसे तरीके बताए, जिनसे धन केवल कुछ लोगों के हाथों में जमा ही न हों, बल्कि अमीरों से निकलकर ग़रीबों तक पहुँचता रहे।

मुहम्मद साहब धर्म के मामले में किसी के साथ किसी तरह की ज़बरदस्ती उचित नहीं समझते थे। वह सबके लिए पूरी धार्मिक स्वतंत्रता का उपदेश देते थे। उनका कहना था कि दुनिया के सब धर्म मूल रूप में सच्चे हैं, और सब उसी एक अल्लाह की ओर ले जानेवाले हैं। उनके माननेवाले अपने धर्मों के असल उसूलों से भटक गए हैं।

पहले तेरह साल तक मक्केवालों ने मुहम्मद साहब का डटकर विरोध किया। काबे की मूर्तियों की पूजा से रोजी कमानेवाले इन विरोधियों में सबसे आगे थे। मुहम्मद साहब और उनके गिने चुने साथियों को बड़ी बड़ी तकलीफ़ें दी गईं। उन्हें पीटा गया, गालियाँ दी गईं, उन

पर पत्थर फेंके गए और उनका कड़ा सामाजिक बहिष्कार किया गया। मुहम्मद साहब को मार डालने की भी साजिशें की गईं। तेरह वर्ष तक मुहम्मद साहब बड़े धीरज के साथ इन सब कठिनाइयों को सहते रहे और अपनी बात पर डटे रहे। उन्होंने अपने साथियों को भी सदा यही उपदेश दिया कि धीरज के साथ सब तरह की कठिनाइयाँ सहो और बुराई का बदला सदा भलाई से दो। तेरह वर्ष बाद मक्के से १६८ मील दूर मदीने के कुछ लोगों के दिलों में मुहम्मद साहब के उपदेशों ने विशेष रूप से घर किया। उन्होंने मुहम्मद साहब और उनके साथियों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। मुहम्मद साहब अपने मुट्ठी भर साथियों को लेकर अब मदीने जा बसे। वहाँ धीरे धीरे मदीने की ख़ास हालत और अपनी शान्ति तथा न्याय-प्रियता के कारण वह बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गए। यहाँ तक कि सबने मिल कर उन्हें वहाँ का हाकिम चुन लिया। इसके बाद मुहम्मद साहब ने अरब के दूर दूर के शहरों और क़बीलों में भी अपने उपदेशक भेजे और इस तरह मुहम्मद साहब का सन्देश दूर दूर तक फैलने लगा।

मुहम्मद साहब का रहन-सहन बहुत ही सीधा सादा और बिल्कुल ग़रीबों का सा था। मदीने के हाकिम होकर भी वह सदा नंगी ज़मीन पर या अधिक से अधिक खजूर की चटाई पर सोते थे। मुहम्मद साहब अपने कपड़े आप धोते थे, अपनी ऊंटनी का 'खरेरा' अपने हाथ से करते थे, अपनी बकरियों को अपने आप दुहते थे। वह अपने हाथ से ही अपने घर में झाड़ू लगाते थे और अपनी चप्पल भी खुद ही गाँठते थे। सरकारी लगान की आमदनी में से खजूर का एक दाना भी अपने या अपने घरवालों के लिए लेना वह पाप समझते थे।
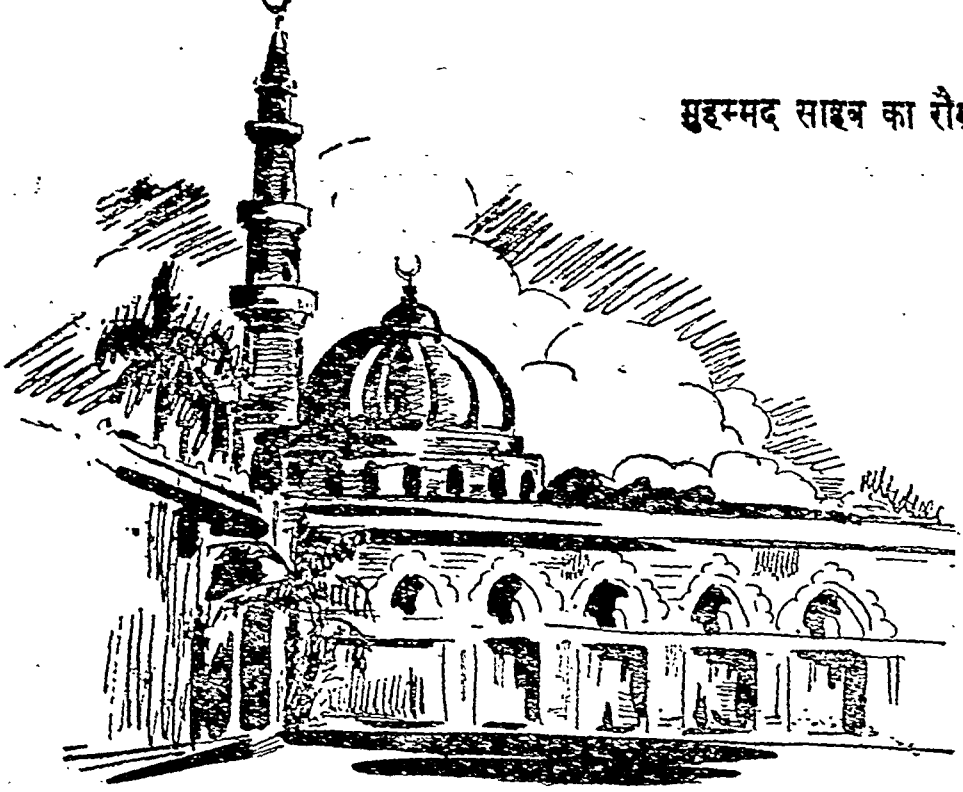
मुहम्मद साहब का रौज़ा

बाईस वर्ष तक की लगातार कोशिश का फल यह हुआ कि अरब के सारे अलग अलग क़बीले खत्म हो गए और सारा अरब एक क़ौम बन गया। उनके धार्मिक भेदभाव मिट गए और उनकी सामाजिक बुराइयाँ लगभग खत्म हो गईं। अरबवालों ने मुहम्मद साहब को अपना हाकिम मान लिया। अरब के कुछ इलाक़े विदेशी शासन के अधीन थे। अब वे सब भी अरबवालों के हाथ में आ गए और इस तरह सारा अरब एक उन्नत और स्वाधीन राष्ट्र बन गया।

सोमवार बारह रबी उल अव्वल, ४ जून, ६३२ ई० को मदीने में मुहम्मद साहब ने शरीर त्यागा। उस समय उनकी आयु ६२ बरस की थी।

एक अंग्रेज़ ने ठीक ही लिखा है कि मुहम्मद साहब को एक साथ तीन चीज़ें क़ायम करने का सौभाग्य मिला। एक राष्ट्र, एक राज, और एक धर्म। इतिहास में इस तरह की दूसरी मिसाल नहीं मिलती। सचमुच ही मुहम्मद साहब दुनिया के महान् से महान् आदमियों में से थे।

१०

बापू

गांधी जी को हम सब आदर से 'राष्ट्र-पिता' और प्यार से 'बापू' कहते हैं। कभी हमने यह भी सोचा कि इसका क्या कारण है ?

आखिर पिता कहते किसको हैं ? उसको जो पैदा करता है और पाल-पोस कर बड़ा करता है। हम यह मानते हैं कि असल में पैदा करनेवाला और पालनेवाला कोई और है। पर वह यह काम किसी आदमी ही के हाथ से लेता है। उसी आदमी को पिता कहते हैं।

अबसे चालीस वर्ष पहले भारत में लोग तो थे, पर भारत राष्ट्र न था। लोग टुकड़ियों में बँटे हुए, निर्बल, निराश, दूसरों के दास थे। उनको मिलाकर, उभारकर, उनकी गर्दन से गुलामी का जुआ उतारकर, उनका

एक स्वाधीन राष्ट्र किसने बनाया ? गांधीजी ने। राष्ट्रीयता यानी क़ौमियत के इस कोमल और नाज़ुक पौधे को सचाई, शान्ति और प्यार के अमृत से सींचकर पनपने और बढ़ने की राह किसने दिखाई ? गांधी जी ने। इसलिए वह भारतीय राष्ट्र या क़ौम के पैदा करनेवाले, पालनेवाले, राष्ट्र-पिता या बापू कहलाते हैं।

२ अक्तूबर, १८६९ को सौराष्ट्र के राजकोट शहर में करमचन्द गांधी के यहाँ एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम मोहनदास रखा गया। करमचन्द पोरबन्दर की छोटी सी रियासत के दीवान थे। सचाई, ईमानदारी और नेकी में उनका बड़ा नाम था। उनकी पत्नी पुतली बाई बड़ी धार्मिक और नेम-धर्म से चलनेवाली स्त्री थीं। मोहनदास गांधी में मां बाप दोनों के अच्छे गुण इकट्ठे हो गए। वह मां, बाप और गुरु का आदर करते, उनका कहा मानते, पढ़ने लिखने में जी लगाते और जो कुछ अपना कर्तव्य समझते, उसके पूरा करने में कुछ भी उठा न रखते। उनसे कोई भूल हो जाती तो उसको सचाई से मान लेते, उसकी सज़ा चुपचाप भुगत लेते और आगे के लिए कान पकड़ लेते। ये बातें बचपन में साधारण सीधी-सादी जान पड़ती थीं, लेकिन इन्हीं का वर्षों तक पालन करने से उनमें एक महापुरुष, महात्मा के गुण आ गए—उसी तरह जैसे मामूली, सीधी-सादी लकीरों से धीरे-धीरे एक सुडौल, सुन्दर और अच्छा चित्र बन जाता है।

गांधी जी ने १८८८ में राजकोट के हाई स्कूल से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास कर ली। उनके पिता कुछ दिन पहले स्वर्ग सिधार चुके थे। बड़े भाई अब घर की देख-भाल करते थे। उन्होंने मोहनदास को क़ानून

पढ़ने के लिये लन्दन भेजने का विचार किया। मोदी वनियों का समुद्र पार जाना अनोखी बात थी, इसलिए गांधी जी की बिरादरी ने उनको जाति से बाहर करने की धमकी दी। पर वह जिस बात को ठीक समझते थे, उसे करने से बिरादरी क्या सारी दुनिया की धमकी भी उनको न रोक सकती थी। उन्हें लन्दन जाने से कोई न रोक सका। हाँ, जाते वक़्त उन्होंने अपनी माँ को यह वचन दिया कि कभी शराब न पियेंगे, गोश्त न खायेंगे और किसी औरत को बुरी नज़र से न देखेंगे। इस वचन को उन्होंने मर्दों की तरह निभाया।

लन्दन में गांधी जी तीन साल रहे। पहले उन्होंने लन्दन यूनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। उसके बाद क़ानून पढ़कर इनर टेम्पुल से बैरिस्टरी का डिप्लोमा (प्रमाण-पत्र) लिया।

विलायत की हवा का पहले पहल उन पर वह रंग चढ़ा कि ठाट-बाट में अंग्रेज साहबों की नक़ल करने लगे। परन्तु थोड़े ही दिन बाद उनके दिल ने अंदर से कहा कि बड़े भाई की गाढ़ी कमाई का पैसा फूंकना बड़ी निठुराई है। वह कम खर्च का सादा जीवन, जैसा कि एक विद्यार्थी का होना चाहिए बिताने लगे, और तन की जगह मन को संवारने की कोशिश करने लगे।

१८९१ में जब गांधी जी बम्बई पहुँचे, तो मालूम हुआ कि उनकी माता का भी देहान्त हो चुका था। पिता पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। बड़े भाई का बोझ अब गांधी जी को बटाना पड़ा। बाईस साल के दुबले पतले नौजवान को देखकर लोग कहते होंगे कि यह इस भार को कैसे उठाएगा ? पर पक्के विश्वास और साहस ने कमज़ोर कंधों में इतना

बल पैदा कर दिया कि वह एक परिवार क्या, सारे देश का बोझ उठाने को काफ़ी था।

थोड़े दिन राजकोट में वकालत करने के बाद गांधी जी एक मुक़दमे की पैरवी करने नेटाल (दक्खिनी अफ्रीका) चले गए। वह मुक़दमा दो मुसलमानों में चल रहा था और दोनों तरफ़ से रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा था। गांधी जी ने दोनों को समझा-बुझा कर पंचायत से फ़ैसला करा दिया। साल भर में ही गांधी जी ने सचाई के जादू और प्रेम की मोहिनी से नेटाल और ट्रांसवाल के सब हिन्दुस्तानियों के दिलों को मोह लिया। क्या सेठ, क्या बाबू, क्या मज़दूर, सब उनको गांधी-भाई कहने लगे। उन लोगों ने गांधी जी को प्रेम के बन्धन में बांध कर रोक लिया। वे हिन्दुस्तान आकर बाल-बच्चों को ले गए और बीस बरस तक वहीं दक्खिनी अफ्रीका में रहे। बीच में केवल दो बार हिन्दुस्तान और दो बार इंगलैंड गए।

आप सोचते होंगे, गांधी जी देश छोड़ कर विदेश में क्यों रहने लगे? बात यह है कि उन्होंने दक्खिनी अफ्रीका में युरोपियनों को हिन्दुस्तानियों के साथ ऐसा अपमान का बर्ताव करते देखा कि उनकी आत्मा कांप उठी। सारे हिन्दुस्तानी कुली कहलाते थे। उनको युरोपियनों के साथ होटल में ठहरने और रेल या घोड़ा गाड़ी में साथ बैठने न दिया जाता था। कहीं कहीं तो जिन सड़कों पर युरोपियन टहलते थे उन पर चलना और सूरज डूबने के बाद घर से निकलना तक मना था। खुद गांधी जी को एक बार रेल के पहले दर्जे के डिब्बे से निकाल दिया गया और कई बार तरह तरह से उनका अपमान किया गया। पैसेवाले हिन्दुस्तानियों को कभी

नागरिकों के कुछ साधारण अधिकार मिल जाते और कभी फिर छीन लिए जाते। ग़रीब मज़दूरों को जो अपमान और अत्याचार सहने पड़ते, उनकी तो कोई गिनती ही न थी। गांधी जी ने ठान लिया कि उस अंधेर नगरी से भागने के बदले वहीं पैर जमाकर उन अत्याचारों का सामना करेंगे।

देखने की चीज़ यह थी कि उन्होंने सामना कैसे किया। गांधी जी ने देखा कि दक्खिनी अफ्रीका का हिन्दुस्तानी समाज अपने देश हिन्दुस्तान का एक छोटा सा नमूना था। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सब अपने को अलग-अलग जातियां समझते थे। इससे उनकी ताक़त घट गई थी और उनमें इतनी हिम्मत नहीं रही कि अत्याचार और अन्याय का सामना करने के लिए खड़े हो सकें। इसलिए पहले १८६४ में नेटाल इंडियन कांग्रेस बना कर उन्होंने हिन्दुस्तानियों में एकता की भावना पैदा की और उनका संगठन किया। फिर 'इंडियन ओपिनियन' (भारतीय सम्मति) नाम का अख़बार निकाल कर उसके ज़रिये युरोपियनों की सरकार और युरोपियन लोगों से न्याय की अपील करते रहे। अंत में सत्याग्रह के निराले हथियार से उन्होंने सरकार के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ दी।

सत्याग्रह का अर्थ है—"सचाई पर अड़ जाना"। इसके लिये हर तरह का इतना दुःख उठाना कि अत्याचारी के दिल में न्याय, दया और प्रेम जाग उठे। गांधी जी ने एक आश्रम बनाया जिसमें सत्याग्रही अपने आप को इस लड़ाई के लिए तैयार करते थे। इन लोगों को साथ लेकर गांधी जी उन क़ानूनों को तोड़ते, जो न्याय के विरुद्ध थे। हंसी खुशी जेल जाते और सब तरह के कष्ट सहते। सात साल तक अहिंसा की यह लड़ाई लड़ने के बाद १९१४ में सत्याग्रहियों की जीत हुई और दक्खिनी अफ्रीका की सरकार ने

इन्डियन रिलीफ़ ऐक्ट पास करके हिन्दुस्तानियों की बहुत सी माँगें पूरी कर दीं। अब वे दक्खिनी अफ्रीका में कुछ मान और चैन से रह सकते थे।

जिस काम का बीड़ा उठाया था, उसको पूरा करके गाँधी जी इंगलैंड होते हुए जनवरी, १९१५ ई० में हिन्दुस्तान आए। यहाँ भी वे चाहते थे कि दक्खिनी अफ्रीका के ढंग पर काम करके भारत माता को ग़ुलामी से छुड़ाएँ। अपने अनपढ़, निर्धन, निराश भाइयों को इस तरह ऊँचा उठाएँ कि वे ग़रीबी और अज्ञान से छुटकारा पाकर अपने मन पर और अपने देश पर आप राज कर सकें।

अब गाँधी जी को अपने नए हथियार, सत्याग्रह से तीन मोर्चों पर अहिंसा की लड़ाई लड़नी थी; एक तरफ़ विदेशियों की ग़ुलामी से, दूसरी तरफ़ ग़रीबी और अज्ञान से, और तीसरी तरफ़ आपस के ऊँच-नीच, छूतछात और साम्प्रदायिकता के भेदभाव से। उन्होंने दक्खिनी अफ्रीका की तरह हिन्दुस्तान में भी इन लड़ाइयों के लिए सिपाही तैयार करने का बीड़ा उठाया और इसके लिए सत्याग्रह आश्रम खोला। यह आश्रम १९१५ से १९३३ तक अहमदाबाद के पास साबरमती में रहा और तीन साल बन्द रहने के बाद १९३६ में वर्धा के पास सेवाग्राम में आ गया।

अब अहिंसा की लड़ाई लड़ने के लिए गाँधी जी के पास दो ताक़तें थीं। एक उन रचनात्मक कार्यकर्ताओं की फ़ौज जो आश्रम में हमेशा रहते या कभी-कभी आकर रहा करते और दूसरी काँग्रेस। यह संस्था १८८५ में कुछ देश-भक्तों ने बनाई थी, पर अबतक उसमें बस थोड़े से पढ़े लिखे पैसे वाले लोग ही थे, और सरकार से देश के लिए कुछ छोटी छोटी माँगें किया करते थे। उस समय तक देश में 'स्वराज्य' की माँग करनेवालों में

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक सबसे आगे थे। गाँधी जी ने आगे चलकर जिस राष्ट्रीय आन्दोलन की राह दिखाई उसकी तैयारी में लोकमान्य तिलक का हाथ था। श्री तिलक के बाद गाँधी जी ने जनता को एक तरफ़ आज़ादी की लड़ाई के लिये तैयार किया और दूसरी तरफ़ कांग्रेस को बड़े पैमाने पर मज़बूत किया। गाँधी जी ने उसका दरवाजा किसानों, मज़दूरों के लिए खोल दिया, जिससे उसकी ताक़त कई गुना बढ़ गई और उसमें इतनी हिम्मत पैदा हो गई कि वह पूर्ण स्वराज्य लेने की कोशिश करे।

गाँधी जी का सारा जीवन सत्याग्रह का एक लम्बा संग्राम था। जितनी लड़ाइयाँ लड़ी गईं, वे सब इसलिए कि अत्याचार, अन्याय और अधर्म करनेवालों को, चाहे वे देशी हों या विदेशी, कड़ी चोट लगे। शरीर की चोट नहीं, दिल की चोट जो मन की सारी भावना बदल देती है—न्याय, दया और प्रेम के सोए हुए भावों को जगा देती है। गाँधी जी जिन साधनों से काम लेते थे, उनमें पहला नरमी से, धीरज से समझाना-बुझाना था, जिसके लिए उन्होंने पहले 'यंग इंडिया', फिर 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' नाम के पत्र अंग्रेजी, गुजराती, हिंदी और उर्दू में निकाले। जब समझाने बुझाने से काम न चलता, तो वह सत्याग्रह का आंदोलन शुरू करते। इसमें सत्याग्रही ऐसे क़ानून को, जिसमें खुला हुआ अन्याय या अत्याचार हो, तोड़ते और उसके बदले हंसते-हंसते जेल जाते, लाठियाँ और कभी-कभी गोलियाँ खाते, पर दूसरों पर हाथ न उठाते और उनको बुरा भला भी न कहते। जब ऐसा मौक़ा आ जाता कि खुद गांधी जी या उनके साथियों के मन में धर्मसंकट होता, या अँधेरे में उनको अपना रास्ता न सूझता, तो गाँधी जी सात दिन, चौदह दिन, इक्कीस दिन का व्रत या मरण-

व्रत रख लेते। इससे उनको प्रकाश और शक्ति मिलती थी। दूसरों का दिल भी नर्म हो जाता था।

गाँधी जी ने आज़ादी के लिए सत्याग्रह के कई बड़े-बड़े आंदोलन चलाए। अफ्रीका से आने के बाद महात्मा गाँधी ने अपना सबसे पहला सत्याग्रह आन्दोलन चम्पारन में किया। इस सत्याग्रह ने महात्मा गाँधी की इज़्ज़त को काफ़ी बढ़ा दिया। लाहौर के जलयाँवाले काँड से देश ग़ुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिये बेताब हो उठा। गाँधी जी ने आगे चलकर असहयोग आन्दोलन को आरंभ किया जिसमें विदेशी सरकार की ओर से दिए गए ख़िताबों, विदेशी कपड़ों और विदेशियों के क़ानून पर चलनेवाली
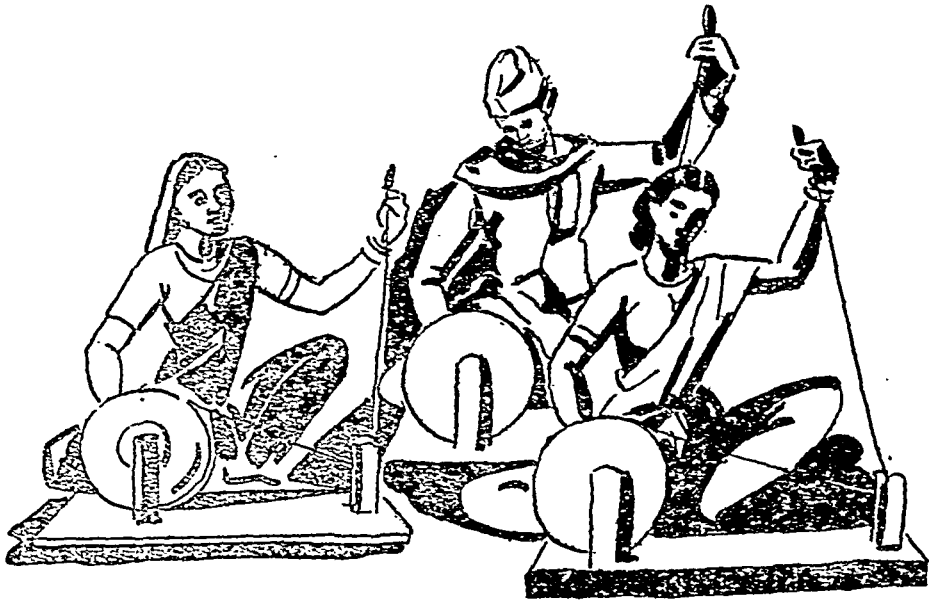
अदालतों आदि का 'बायकाट' किया गया। जगह-जगह कांग्रेस कमेटियां बनाई गईं और नए लोगों को उसमें भर्ती किया गया। अंग्रेज़ हुक़ूमत ने कांग्रेस तथा गाँधी जी द्वारा चलाये जाने वाले इस आन्दोलन को दबाना चाहा। किंतु बजाय दबने के आग भड़कती गई। सिविल नाफ़रमानी के

ज़माने में क़ानून तोड़े गए, टैक्स देना बंद किया गया और सन् १९२१ में हज़ारों आदमी-औरतों को जेल जाना पड़ा। लड़ाई चलती रही, कई आन्दोलन चलाये गए और देश आज़ादी की राह पर बढ़ता रहा। यहाँ तक कि १५ अगस्त, १९४७ को अंग्रेज़ों ने देश की हुकूमत जवाहरलाल नेहरू की राष्ट्रीय सरकार को सौंप दी। सारे देश में आज़ादी का झंडा लहराने लगा।

ग़रीबी को दूर करने के लिए गाँधी जी ने चरखा संघ और ग्राम उद्योग संघ बनाए कि लोगों को, ख़ास कर गाँववालों को, रोज़ी देने वाले धन्धे सिखाए जाएँ। मूर्खता और अज्ञान को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी-तालीमी संघ बनाया, जो बुनियादी शिक्षा या ऐसी तालीम दे जिससे बच्चों के अन्दर सारी अच्छी शक्तियाँ उभर आएँ और वे ऐसा समाज बनाने के लिए तैयार हो जाएँ जिसमें एक दूसरे को लूटें नहीं, बल्कि सहायता दें। ऊँच-नीच, सवर्ण-अछूत का भेद दूर करने के लिए गाँधी जी ने हरिजन सेवक संघ बनाया। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी इत्यादि का भेदभाव दूर करने में तो उन्होंने अपना सारा जीवन बिता दिया।
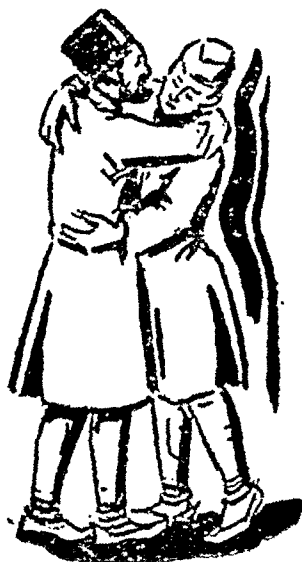
हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तो गान्धी जी ने जान तक दे दी। भारत की आज़ादी के समय जब देश दो हिस्सों में बँटा, तो भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में कुछ लोगों ने आदमी-आदमी के बीच नफ़रत की आग भड़काई। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए गाँधी जी ने अपने प्राणों की

बाज़ी लगाकर नोआखाली की यात्रा की। उनका वहाँ पहुँचना था कि जनता में फैली आपसी नफ़रत की आग ठंडी पड़ गई। नोआखाली से लौटकर महात्मा गाँधी दिल्ली आए किन्तु कुछ दिन बाद ही एक गुमराह व्यक्ति ने देश के बापू की हत्या करके सदा-सदा के लिये अपने नाम पर कलंक लगा लिया। ईसा मसीह की तरह महात्मा गाँधी की यह महान् क़ुरबानी सचाई, सेवा और राष्ट्रीय एकता की एक अमर यादगार है।
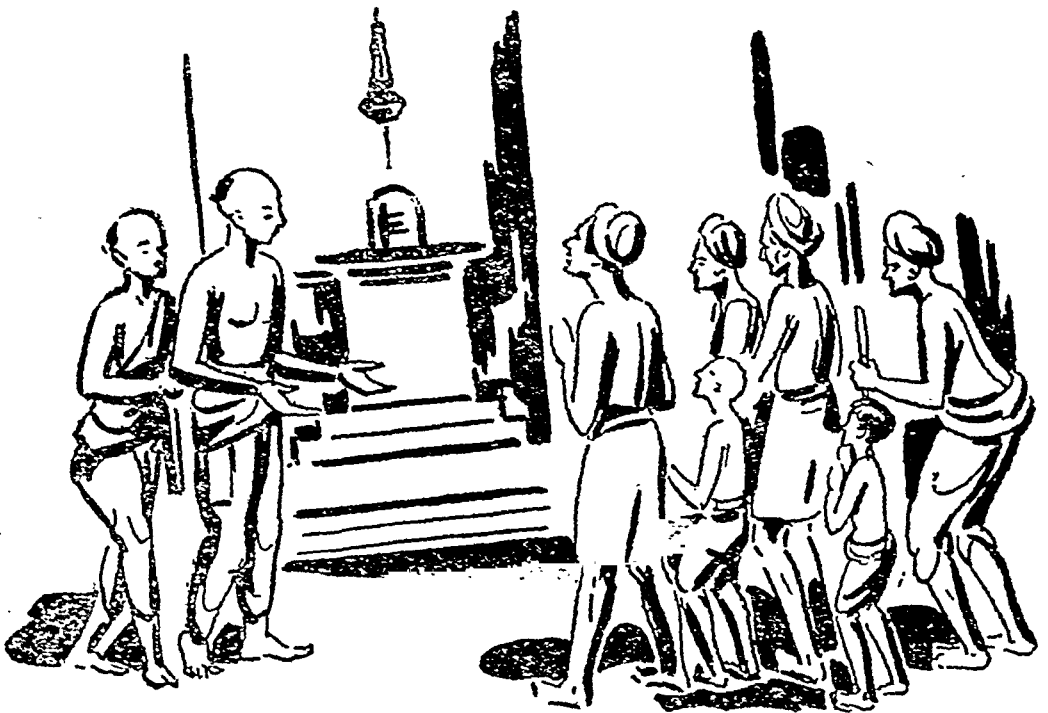
गाँधी जी ने ज़िन्दगी का जो रास्ता अपने देशवालों को और सारी दुनिया के लोगों को बताया, हर एक धर्म ने अपने-अपने ढंग से सचाई और मुक्ति का वही रास्ता बताया है। हाँ, सैकड़ों साल से किसी ने इस रास्ते पर चल कर नहीं दिखाया था। यह काम गाँधी जी ने कर दिखाया।

बुरा न सुनो　　　　बुरा न देखो　　　　बुरा न कहो

इस राह पर चलने के उपाय ये हैं :—

१. अहिंसा—कोई काम इस नियत से न करना कि किसी को दुःख पहुँचे। हर काम में दया और प्रेम की सच्ची भावना रखना।

२. सत्य—सदा सच्ची बात कहना, नर्म और मीठे शब्दों में सदा सचाई और न्याय का साथ देना।

३. किसी की चोरी न करना—किसी के माल या उसकी मेहनत से अनुचित लाभ न उठाना।

४. उन चीजों में से जो जीने के लिए जरूरी हैं, किसी चीज पर कब्जा या मिलकियत न रखना।

५. वासनाओं को, विशेषकर काम-वासना को वश में रखना।

६. किसी से न डरना।

७. अपनी रोजी कमाने के लिए हाथ पाँव से मेहनत करना।

८. सब धर्मों की बराबर इज्जत करना, साम्प्रदायिकता का भेदभाव मिटाना।

९. छूतछात और ऊँच-नीच का भेद न रखना और समाज से इस रोग को दूर करना।

१०. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना।

११. अस्वाद।

गाँधी जी की मिसाल और उनकी शिक्षा ने भारत में अभी तक थोड़े से लोगों के दिलों में एक छोटे से पौधे के रूप में जड़ पकड़ी है। दूसरे देशों में इसका बीज पहुँच चुका है, पर वह अभी यह देख रहे हैं कि पौधा खुद अपनी जमीन में कहाँ तक पनपता और फलता-फूलता है। अब यह हमारा काम है कि उसे श्रद्धा और मेहनत के जल से सींचकर एक छायादार पेड़ बना दें, जिससे दूसरे देशवालों को अपने यहाँ यह पौधा लगाने की प्रेरणा मिले और दुनिया अहिंसा और सत्य का हरा-भरा बाग़ बन जाए।

११

पुराणों का महत्त्व

किसी भी धर्म को समझने में उसकी गाथाओं या कहानियों से बड़ी सहायता मिलती है। उन कहानियों या गाथाओं को इतिहास भले ही न माना जाए, पर उनमें अक्सर ऐसा मतलब छिपा रहता है जिसकी गुत्थी सुलझाने से धर्म की बहुत सी गुत्थियां आप ही आप सुलझ जाती हैं।

प्रायः सभी धर्मों में ऐसी गाथाएँ होती हैं, और संसार के पुराने धर्मों में तो उनकी भरमार है। गाथाओं के भीतर से किसी भी धर्म की महिमा झलक जाती है और उस धर्म का पूरा रूप हमारे सामने आ जाता है।

हर कहानी गाथा नहीं कही जा सकती। जिन कहानियों का प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के साथ सम्बन्ध हो, उन्हें 'गाथा' के नाम से पुकारा

जाता है। गाथाएँ परम्परा से चली आती हैं और राष्ट्र के चरित्र को ऊँचा उठाती हैं। उन्हें प्रेम और श्रद्धा के साथ सुना या गाया जाता है।

हिन्दू धर्म बहुत पुराना धर्म है। उसमें गाथाओं की कोई गिनती नहीं। उन गाथाओं का भंडार पुराण हैं, जिनकी संख्या १८ है। वे सब संस्कृत भाषा में हैं और श्लोकों में लिखे गए हैं। किन्तु हिन्दू धर्म की कुछ शाखाएँ ऐसी भी हैं, जो पुराणों को नहीं मानतीं। पुराणों को माननेवाले हिन्दू आम तौर पर सनातन-धर्मी कहलाते हैं।

पौराणिक गाथाएँ अधिकतर देवी देवताओं की कहानियां हैं। उनमें ऐसे ऋषि-मुनियों की भी कहानियां हैं जो जिंदगी भर बड़ी लगन के साथ सचाई, तप और त्याग के ऊंचे आदर्श पर चले।

पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही ईश्वर के तीन स्वरूप

माने गये ब्रह्मा के स्वरूप में ईश्वर संसार की रचना करता है और उसकी सब च को रूप देता है। वह संसार को चारों वेदों का ज्ञान भी अपने उसी रूप ा है। इसलिए ब्रह्मा के चार मुख माने जाते हैं। उसीकी कृपा से इस संसार में साहित्य, संगीत और कला का प्रकाश हुआ। ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती विद्या की देवी मानी जाती हैं। उनके एक हाथ में सदा वीणा और दूसरे में पुस्तक रहती है। उनका रंग सफ़ेद कमल की तरह है। उनका पूरा पहनावा भी सफ़ेद है। सरस्वती की सवारी हंस है, जो सफ़ेद रंग का होता है। कहते हैं कि हंस का काम मोती चुगना है। वह मिले हुए दूध और पानी को भी अलग-अलग कर देता है। जिस मनुष्य के सिर पर सरस्वती विराजे उसमें भी हंस जैसा ज्ञान आ जाता है।

ब्रह्मा के रूप में जो भगवान इस संसार की रचना करते हैं, विष्णु रूप में वही उसका पालन करते हैं। संसार सत्य और धर्म या नेकी पर टिका है। अगर आज दुनिया के लोग एक दूसरे पर विश्वास करना छोड़ दें, तो दुनिया का सारा काम रुक जाए। इसलिए विष्णु का दूसरा नाम सत्य है। विष्णु भगवान के चार हाथ माने जाते हैं। एक में शंख, दूसरे में चक्र, तीसरे में गदा और चौथे में कमल का फूल

रहता है। शंख ज्ञान का, चक्र दुनिया के दांव-पेचों का, गदा साहस और शक्ति का और कमल शान्ति का चिह्न है। पुराणों के अनुसार संसार की उन्नति का भेद इन्हीं चार में छिपा है। विष्णु भगवान की शक्ति 'लक्ष्मी' धन की देवी हैं।

पुराणों का कहना है कि विष्णु भगवान समय-समय पर इस संसार में अवतार लेते रहते हैं। संसार की रक्षा का भार उन्हीं पर है। श्री रामचन्द्र जी और श्री कृष्ण जी उन्हीं अवतार माने जाते हैं।
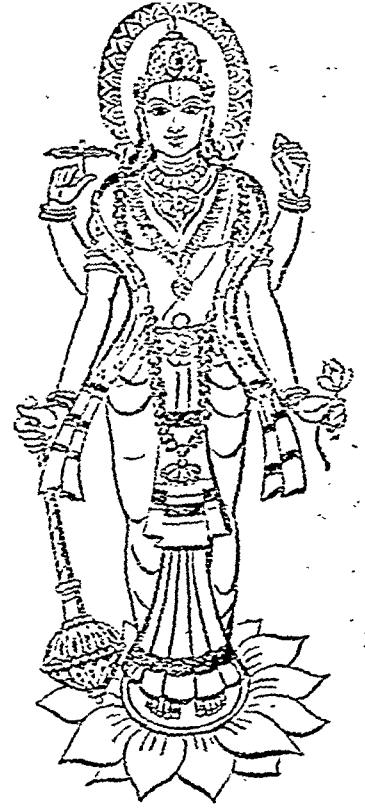
भगवान अपने तीसरे स्वरूप में शिव या महादेव हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार दुनिया में बारी-बारी से चार युग आते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। चारों युगों की अपनी अपनी अवधि है। चारों की अवधि पूरी हो जाने पर प्रलय होता है। प्रलय में सारे संसार का नाश हो जाता है, जिससे उन्नति का अगला युग आरम्भ हो सके। प्रलय का समय आने पर भगवान अपने शिव रूप में
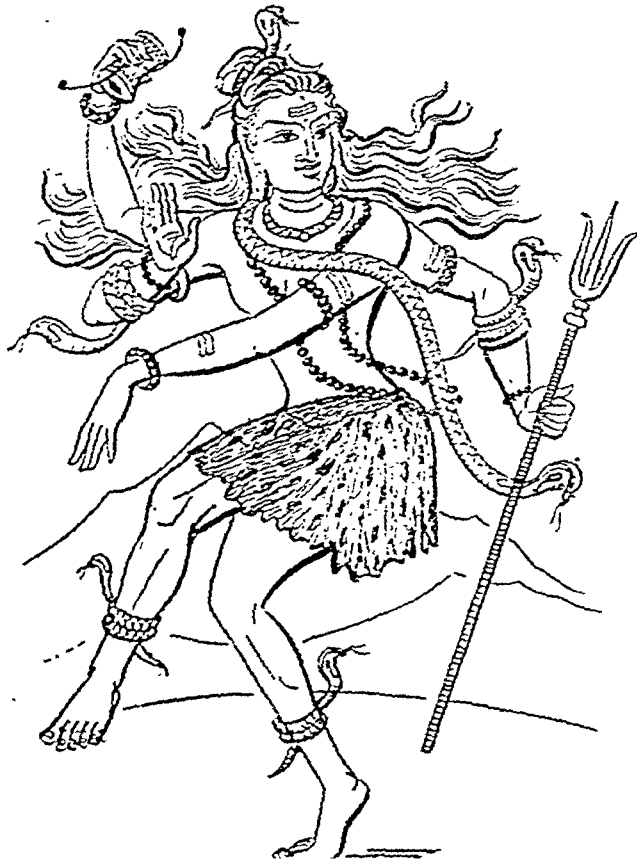
उल्लास में आकर नाचते हैं। उस नाच को तांडव नृत्य कहते हैं। तांडव-नृत्य होते ही संसार का सर्वनाश हो जाता है। कहीं कुछ बाक़ी नहीं रहता। शिव का काम यहीं पूरा नहीं हो जाता। उसके बाद वह समाधि में चले जाते हैं और नए युग के लिए संकल्प करते हैं।

शिव की शक्ति का नाम पार्वती है। वह सदा शिव के साथ रहती हैं। दुर्गा, भवानी, माता, ये सब पार्वती ही के रूप हैं। वह शक्ति की देवी हैं। उनकी सवारी शेर है, जो शक्ति की निशानी है। गणेश शिवजी के पुत्र हैं। वह विघ्न-बाधा दूर करते हैं। इसलिए कोई भी काम आरम्भ करने से पहले गणेश जी पूजे जाते हैं।

मोटे तौर पर पौराणिक गाथाओं का आधार यही है, पर इसके साथ पुराणों की एक बात और भी समझ लेनी ज़रूरी है। उनमें बताया गया है कि हमारी दुनिया की तरह देवताओं का भी एक संसार है। उसका नाम स्वर्ग है। देवता वहीं रहते हैं। जिस तरह हमारे संसार की रक्षा का भार विष्णु भगवान पर है, उसी तरह स्वर्ग की रक्षा का भार इन्द्र पर है। इन्द्र देवताओं के राजा हैं, इसीलिए उन्हें देवराज इन्द्र के नाम से पुकारा जाता है।

पौराणिक गाथाओं में जगह-जगह इस बात का वर्णन मिलता है कि विष्णु और इन्द्र दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं। इस दुनिया में रहनेवाले ऋषि-मुनि अपनी तपस्या के बल से स्वर्ग में स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं। अगर कोई मनुष्य १०० अश्वमेध यज्ञ ठीक से पूरे करले, तो उसे देवराज इन्द्र की जगह भी मिल सकती है। परन्तु यह पद पाने के लिए उसे बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इन्द्र उसकी तरह-तरह से परीक्षा लेते हैं। पुराणों में इस विषय की अनेक मनोरंजक और शिक्षा देनेवाली कथाएँ मिलती हैं।

पौराणिक गाथाएँ एक सागर के समान हैं। उनके भीतर के सच्चे मोती उसीके हाथ लग सकते हैं, जो उनमें गहरा ग़ोता लगाए। पुराणों से मिलनेवाली शिक्षा का निचोड़ इस प्रकार है:—

अठारहों पुराणों में उनके रचनेवाले व्यास मुनि दो बातें बतलाते हैं, दूसरे की भलाई करना पुण्य है और किसी को कष्ट देना पाप।

दो गाथाएँ

१

सावित्री सत्यवान

मद्र देश में अश्वपति नाम के एक राजा थे। वह बड़े धर्मात्मा थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी। राजा को और सब सुख थे, पर एक दुःख उन्हें बराबर सताया करता था। उनके कोई सन्तान न थी। सन्तान के लिए वह तपस्या करने लगे। जब तप करते-करते अट्ठारह साल हो गए तो सावित्री देवी ने उनको दर्शन दिया और वरदान माँगने को कहा।

राजा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना कीः—"माता, मैं पुत्र चाहता हूँ जिससे मेरा वंश चल सके।"

देवी ने राजा से कहाः—"पहले जन्म में तुमने ऐसे बुरे काम किए हैं कि तुम्हें पुत्र नहीं मिल सकता। हाँ, तुम्हारे ऐसी नेक लड़की होगी जो वंश का मान बढ़ाएगी। उसी से तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे।"

समय पर राजा के एक कन्या हुई। वह लड़की क्या थी, मानो लक्ष्मी। रूप, गुण और सुन्दरता में कोई भी लड़की उसकी बराबरी की न थी। उसका नाम सावित्री रखा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान सावित्री बढ़ने लगी।

लड़की ब्याह के योग्य भी हो गई। उन दिनों स्वयंवर का चलन था। लड़की खुद अपना पति चुनती थी। राजा ने सावित्री को वर खोजने की आज्ञा दी। सावित्री बूढ़े मंत्रियों को साथ लेकर चल पड़ी। खोजते खोजते वह शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के यहाँ पहुँची। द्युमत्सेन अन्धे हो गए थे और शत्रुओं ने उनका राज्य छीन लिया था। वह जंगल में आश्रम बनाकर रहते थे। सावित्री को उनका पुत्र सत्यवान पसन्द आया। उसने उसी को अपना पति चुन लिया।

अपने काम में सफल होकर सावित्री जब घर लौटी, तो देखती है कि राज-सभा में नारद महाराज विराजमान हैं। सावित्री ने नारद जी और अपने पिता को प्रणाम किया और सब समाचार कह सुनाया। राजा ने नारद जी से पूछा कि "सत्यवान कैसा लड़का है ?" नारद जी ने कहा: —

"सत्यवान में सब गुण हैं। वह सदा सच बोलता है। बहुत ही सीधा है। छल और कपट तो उसे छू भी नहीं पाए। अपनी बात पर वह सदा अटल रहता है। पर एक बात है—वह आज से पूरे एक साल बाद मर जाएगा।"

नारद जी की बात सुनते ही राजा सन्न रह गए। उन्होंने अपनी पुत्री को समझाया कि वह कोई और वर चुन ले। पर सावित्री राज़ी

न हुई। उसने नम्रता के साथ कहा:--"पिताजी, राजा एक ही वार आज्ञा देते हैं और बुद्धिमान एक ही बार प्रतिज्ञा करते हैं। मैंने जिसे एक बार चुन लिया, अब वही मेरा पति है, चाहे वह थोड़े दिन जिए या अधिक दिन। अब मैं अपनी बात से टल नहीं सकती। आप और नारद जी मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

सावित्री की इस बात से नारद जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा से कहा:--"आपकी पुत्री की बुद्धि डाँवांडोल नहीं होती, इसलिए उसका मंगल ही होगा।"

जब राजा ने देखा कि सावित्री अपनी बात पर अटल है, तो उन्होंने सत्यवान के साथ उसके विवाह का प्रबन्ध किया। आश्रम में ही सावित्री का विवाह हुआ और वह बनवासियों की तरह सीधे-सादे ढंग से रहने लगी। वह घर का सब काम-काज करती और मन लगाकर सास-ससुर की सेवा करती। उसके स्वभाव और व्यवहार से घर और बाहरवाले सब प्रसन्न थे। सत्यवान तो उसे पाकर अपने को धन्य मानता था।

समय बीतता जा रहा था, पर नारद जी ने जो बात कही थी, सावित्री उसे भूली न थी। वह बराबर चौकन्नी रहती। जब उस अशुभ घड़ी को चार दिन रह गए, तो सावित्री ने एक व्रत रखा। तीन दिन उसने बिना कुछ खाए पिए संयम से बिताए। चौथे दिन जब सत्यवान कन्द-मूल-फल लाने के लिए वन जाने लगा, तो सावित्री भी उसके साथ गई। सत्यवान ने पहले कुछ फल बीने। फिर लकड़ियाँ काटने के लिए पेड़ पर चढ़ा। जब वह लकड़ियाँ काट रहा था, तभी उसके सिर में बड़े जोर का दर्द हुआ। वह नीचे उतर आया और सावित्री की जाँघ पर सिर रखकर

लेट गया।

इतने में सावित्री ने देखा, कोई सूर्य के समान तेज वाला, लाल रंग के कपड़े पहने, सिर पर मुकुट रखे और हाथ में गदा-फन्दा लिए बढ़ा चला आ रहा था। सावित्री ने पति का सिर धरती पर रख दिया और आनेवाले को प्रणाम किया। वह तो साक्षात् यमराज थे और सत्यवान की आत्मा लेने आए थे।

जब यमराज सत्यवान की आत्मा को लेकर चलने लगे, तो सावित्री भी उनके साथ चल पड़ी। यमराज ने उसे लौटने को कहा, तो उसने उत्तर दियाः—"पतिव्रता स्त्री सदा अपने पति के साथ रहती है। इसलिए आप जहाँ मेरे पति को लिए जा रहे हैं, मुझे भी वहीं जाना चाहिए। विद्वानों का कहना है कि सज्जन पुरुषों के साथ सात पग चलने से मित्रता हो जाती है। उस मित्रता के नाते मैं आपसे नम्रता के साथ पूछती हूँ—क्या मैंने और मेरे पति ने गृहस्थ-आश्रम के नियमों को पालने में कोई भूल-चूक की है?"

यमराज सावित्री की बातों से बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा, "सत्यवान के प्राणों को छोड़कर तुम और जो चाहो, माँग लो।"

सावित्री ने कहाः—"मेरे ससुर अन्धे हैं और दुबले हो गए हैं। मैं

चाहती हूँ कि वह फिर देखने लगें और उनका शरीर भी बलवान हो जाए।"

यमराज ने कहा:—"ऐसा ही होगा और समझाया कि तू थक गई है, इसलिए लौट जा।"

सावित्री ने कहा:—"यह सब चाहते हैं कि कुछ देर सज्जन का साथ रहे। उनके साथ रहना कभी बेकार नहीं जाता।"

यमराज को सावित्री की यह बात बहुत अच्छी लगी और उन्होंने सत्यवान के जीवन के सिवा और कोई भी वर माँगने को कहा।

सावित्री ने दूसरा वर यह माँगा कि मेरे ससुर को उनका राज्य फिर मिल जाए।

यमराज "ऐसा ही होगा" कह कर आगे बढ़े, तो देखते हैं कि सावित्री अब भी पीछे-पीछे चली आ रही है। यमराज रुके और बोले:—"तू लौटी नहीं। अब क्यों हमारे पीछे चली आ रही है ?"

सावित्री ने नम्रता के साथ कहा:—"यमराज, आप सब जीवों को नियम के भीतर रखते हैं और जो जैसा करता है, उसे उसके काम के अनुसार दण्ड देते हैं। इसीलिए आपका नाम यम है। मैं आपसे विनय के साथ पूछती हूँ, क्या यह सज्जनों का धर्म नहीं कि वे किसी से बैर न रखें और सब पर दया करें ? अगर यह ठीक है, तो न जाने आप क्यों मुझे लौटने को कहते हैं। मुझ पर तो आपको दया आनी चाहिए।"

यमराज सावित्री की ऐसी चतुरता भरी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और सत्यवान को जिलाने के सिवा और कोई वर माँगने को कहा।

सावित्री ने इस बार अपने पिता का वंश बढ़ाने वाले सौ पुत्र माँगे।

यमराज ने यह बात भी मान ली और कहा:—"अब तुम लौट जाओ। बहुत दूर आ गई हो।"

सावित्री बोली:—"भगवन्, मेरे लिए दूरी और पास में अन्तर क्या? मेरा घर तो वही है जहां मेरे पतिदेव हों। आप सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं। शत्रु और मित्र में पक्षपात नहीं करते। सब के साथ समान व्यवहार करते हैं। इसीलिए सारी प्रजा मर्यादा के भीतर रहकर अपने अपने धर्म का पालन करती है और आप धर्मराज कहलाते हैं। इसके सिवा, संसार में सब लोग जितना विश्वास अपने आप पर नहीं करते, उतना नेक लोगों पर करते हैं। उनसे अपने मन की बात कहते हैं और उनकी इच्छा पूरी होती है।"

सावित्री की इन ज्ञान की बातों का यमराज पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा:—"सत्यवान के प्राणों को छोड़कर तुम और जो चाहो मांग लो और अपने आश्रम को लौट जाओ।"

ससुर और पिता के कुल की भलाई तो हो चुकी थी। सावित्री का ध्यान अपनी भलाई की ओर गया। पतिव्रता स्त्री तो अपने पति के मंगल में ही अपनी भलाई देखती है। उसने खूब सोच-विचारकर चौथा वर मांगा:—"महाराज, मैं चाहती हूँ कि मेरे सौ बलवान पुत्र हों और उनसे मेरा वंश बढ़े।"

यमराज ने कहा "ऐसा ही होगा" और आगे बढ़े। सावित्री ने विनय की:—"सज्जन पुरुष जो कुछ कहते हैं, उसे पूरा करते हैं। फिर प्रसन्नता, धन और मान ये तीनों चीजें सज्जनों से ही मिलती हैं।"

यमराज रुके और कहा:—"अब तू क्या चाहती है, जल्दी बता।"

सावित्री यमराज के चरणों में झुक गई। उसका गला भर आया।

वह इतना ही कह सकी:—"अभी आपने कहा है कि मेरे सौ पुत्र हों, परन्तु यदि मेरे पति जीवित न हुए, तो यह बात पूरी नहीं हो सकती। पतिव्रता स्त्री अपने पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष की ओर देखती भी नहीं।"

यह सुनते ही यमराज ने सत्यवान के प्राणों को छोड़ दिया और आशीर्वाद दिया कि उसकी ४०० वर्ष की आयु हो।

यमराज इतना कहकर अन्तर्धान हो गए और सावित्री लौटकर वहाँ पहुँची जहाँ उसका पति पड़ा था। सावित्री ने ज्यों ही सत्यवान को छुआ, वह जाग पड़ा।

रात हो गई थी। माता-पिता सत्यवान के न लौटने से बहुत चिन्तित थे। पास-पड़ोस के मुनि उन्हें समझा-बुझा रहे थे। इतने में सावित्री और सत्यवान जा पहुँचे। उनके पहुँचते ही आश्रम में खुशी छा गयी।

मृत्यु पर प्रेम की जीत की यह अनोखी गाथा है। आज भी भारत की नारियां यह कहानी बड़े प्रेम से कहतीं और सुनतीं हैं और सावित्री-वट की पूजा करके अपने पति का मंगल मनाती हैं।

भीष्म प्रतिज्ञा

हस्तिनापुर में शान्तनु नाम के बड़े प्रतापी और धर्मात्मा राजा थे। उनके एक पुत्र हुआ। उसका नाम देवव्रत रखा गया। देवव्रत ने कुछ साल तक वशिष्ठ और परशुराम से वेद, वेदांग और धनुष चलाने की विद्या सीखी। जब उसकी पढ़ाई पूरी हो गयी, तो राजा ने उसे युवराज बनाया। चार साल तक राजा ने उसकी शासन करने की योग्यता देखी। वह देवव्रत को राज्य देने का विचार कर ही रहे थे कि एक ऐसी घटना हुई जिससे देवव्रत ने अपनी इच्छा से राज-पद छोड़ दिया।

एक दिन शान्तनु नदी के किनारे सैर करने गए। वे टहल रहे थे कि हवा के झोंके के साथ ऐसी सुगन्ध आई जो राजा का तन-मन गुदगुदा गयी। पता लगाने से मालूम हुआ कि वह सुगन्ध मछुओं के राजा की परम् सुन्दरी बेटी सत्यवती के शरीर की थी। राजा सत्यवती के पिता के पास

गए और उससे प्रार्थना की कि वह अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दे। मछुओं के राजा ने कहा :—"मैं अपनी बेटी आपको दे सकता हूँ। परन्तु शर्त यह है कि आपके बाद मेरा धेवता ही राजा बनाया जाय।"

राजा ने शर्त न मानी और लौट आए। पर सत्यवती उनके मन में बस गयी थी। उनकी यह दशा हो गयी कि न खाना पीना-अच्छा लगता, न रात में नींद आती। दिन पर दिन सत्यवती के प्रेम में घुलते जाते। देवव्रत पिता की यह दशा देख बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने पिता से कारण पूछा, परन्तु पिता ने कुछ न बताया। अन्त में जब बूढ़े मंत्री से सारा हाल मालूम हुआ, तो देवव्रत कुछ बड़े बूढ़ों को साथ ले मछुओं के राजा की सभा में पहुँचे और अपने पिता के साथ सत्यवती का विवाह कर देने की प्रार्थना की।

मछुओं के राजा ने कहा :—"सम्बन्ध तो ऐसा है कि मैं क्या इन्द्र भी आपके घराने में लड़की देना पसन्द करेंगे। पर यह मैं कभी स्वीकार न करूँगा कि मेरा धेवता राजा न बने।"

देवव्रत ने कहाः—"मैं वचन देता हूँ कि मैं राज न लूंगा। सत्यवती की कोख से जो लड़का होगा, वही राज्य करेगा।"

लेकिन बूढ़े का मन इतने से सन्तुष्ट न हुआ। उसने कहाः —"माना आप राज न लेंगे, मेरे धेवते को ही दे देंगे। पर आपका लड़का अगर छीन ले, तो ?"

सत्यवती के पिता की शंका सुनकर देवव्रत ने दोनों हाथ उठाकर कहा :—"आप चिन्ता न कीजिए। मैं सारी जिन्दगी ब्रह्मचारी रहूँगा। यह राज क्या, तीनों लोकों के राज के लिए भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से न हटूंगा।

चाहे सूर्य अपना तेज, चन्द्रमा अपनी शीतलता और धर्मराज अपना धर्म छोड़ दें, पर देवव्रत अपनी प्रतिज्ञा से न टलेगा।"
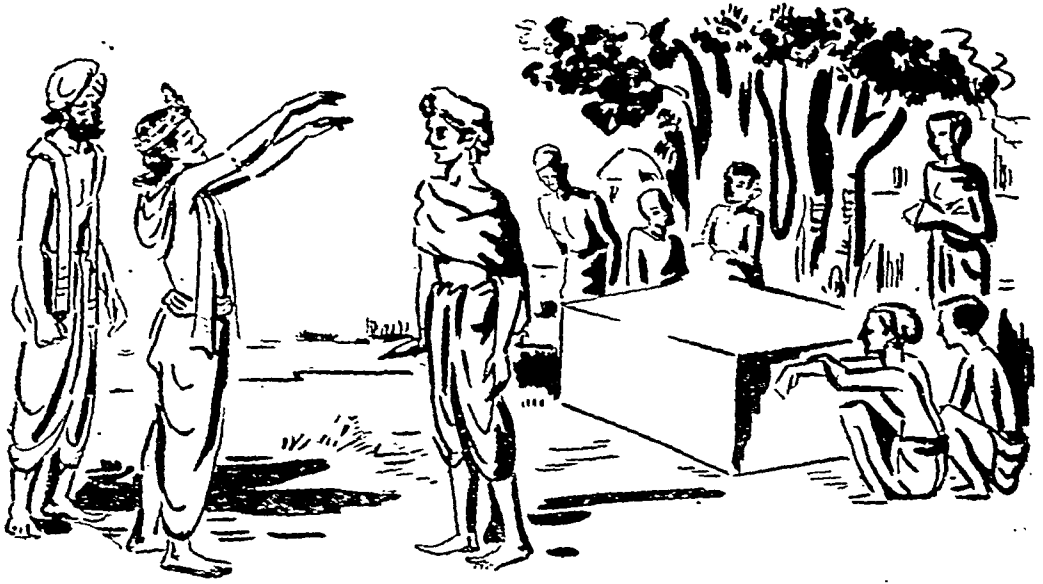
अब कठिनाई क्या थी? शान्तनु के साथ सत्यवती का विवाह हो गया। पिता की इच्छा पूरी करने के लिए ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करने के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया। समय पर सत्यवती के दो पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। बड़ा शान्तनु के बाद राजा बना, पर वह एक युद्ध में मारा गया। तब भीष्म ने छोटे भाई को राजा बनाया। उसका विवाह भी भीष्म ने ही कराया था। अभी विचित्रवीर्य को राज करते सात साल हुए थे कि उसे क्षय रोग हो गया जो उसके प्राण लेकर ही गया। उसके कोई सन्तान न थी।

भीष्म को भाई की मृत्यु से बहुत दुःख हुआ और सत्यवती के सामने तो अँधेरा ही अँधेरा था। उसने भीष्म को बुलाकर समझाया:—"तुम अपनी बात पर डटे रहे। लेकिन अब तो मेरे बेटे रहे नहीं। अब तुम्हारी प्रतिज्ञा

वेकार है। वंश को नष्ट होने से वचाने के लिए तुम विचित्रवीर्य को विधवा रानियों से विवाह कर लो।" पर भीष्म टस से मस न हुए। उन्होंने कहा :—"मैंने जो व्रत लिया है, उसे जिन्दगी भर पालूंगा।"

भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर सारे जीवन अटल रहे, जो ब्रह्मचारी का जीवन ऋषियों मुनियों के लिए भी कठिन है, उसे भीष्म ने पूरी दृढ़ता से विताया। गृहस्थी के सुखों की ओर कभी आंख तक न उठायी। इसलिए आज भी जव कोई वहुत कठोर प्रतिज्ञा करता है तो उसका वह काम भीष्म प्रतिज्ञा कहलाता है।

१२

कालिदास

संस्कृत किसी समय इस देश की और आसपास के कुछ और देशों की भाषा थी। आजकल भारत में संस्कृत बोलने और लिखनेवालों की संख्या अधिक नहीं है, पर कभी वह देश के काफ़ी बड़े-बड़े भागों की राजभाषा थी। इस भाषा में हमें बहुत अच्छा साहित्य मिलता है। कालिदास संस्कृत के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं, इसीलिए उन्हें "कवि-कुल गुरु" कहा जाता है। कालिदास की गिनती भारत के ही नहीं, संसार के महाकवियों में की जाती है।

अभी तक ऐसी चीजें बहुत कम मिली हैं, जिनसे कालिदास के निजी जीवन पर प्रकाश पड़ सके। इसलिए यह बताना कठिन है कि वह कहाँ और कब पैदा हुए, उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय कहाँ

विताया, और किस राजा के दरबार में रहे। उनके माता-पिता और दूसरे सगे-संबन्धियों के बारे में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अपने निजी विचारों और अनुभवों को दूसरी घटनाओं के साथ इस तरह घुला मिला दिया है, कि उनसे भी महाकवि के जीवन की रूप-रेखा नहीं बनाई जा सकती। अब तक जो चीजें मिली हैं उनके आधार पर कहा जाता है कि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजकवि थे और उन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग उज्जैन में विताया। उनके वर्णनों को पढ़कर यह भी पता चलता है कि वह काश्मीर और हिमालय के दूसरे स्थानों पर खूब घूमे थे और गंगा के आसपास के इलाक़े को भी पूरी तरह जानते थे। कहा जाता है कि कालिदास उनका असली नाम न था। वे काली के उपासक थे, इसलिए उन्हें कालिदास कहा जाता था।

कालिदास की प्रसिद्ध रचनाओं के नाम ये हैं :

रघुवंश, कुमार-सम्भव, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और अभिज्ञान-शाकुन्तल।

इनमें से 'रघुवंश' और 'कुमार-सम्भव' महाकाव्य हैं। 'रघुवंश' के १९ सर्गों (भागों) में रघुकुल के प्रतापी राजाओं का बखान है। श्री रामचन्द्र जी उसी वंश के थे। कालिदास ने इस काव्य में रघुवंश के राजाओं की महानता, वीरता, उदारता और सत्यप्रेम को खूब दर्शाया है।

'कुमार-सम्भव' में शिव पार्वती के विवाह और उनके पुत्र कुमार की वीरता की कहानी है। पार्वती ने शिव को पाने के लिए कठोर तपस्या की थी। अन्त में उन्हें सफलता मिली। 'कुमार-सम्भव' में पार्वती की

तपस्या का हाल बहुत ही विस्तार के साथ लिखा गया है।

'मेघदूत' में एक यक्ष (एक जाति का नाम) के मन के भावों का चित्र है। अपने घरबार और सगे-सम्बन्धियों से बिछुड़े हुए उस यक्ष को बरसात में बादल देखकर घर की याद आती है। वह बादल को अपना दुखड़ा बतलाता है और अपनी पत्नी के पास जो उसकी राह देख रही होगी, संदेशा ले जाने को कहता है।

'मा ल वि का ग्नि मि त्र', 'विक्रमोर्वशी' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटक हैं। पहले नाटक में महाराज अग्निमित्र और राजकुमारी मालविका और दूसरे नाटक में महाराज पुरुरवा और उर्वशी की कथा है।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' या 'शकुन्तला' कालिदास की सब से प्रसिद्ध रचना है। संसार की अधिकतर भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है। देश-विदेश के विद्वानों ने उसकी प्रशंसा की है। उस नाटक में

हस्तिनापुर के महाराज दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा है। शकुन्तला को महर्षि कण्व ने अपने आश्रम में पुत्री की तरह पाला था। दुष्यन्त और शकुन्तला पहली बार कण्व के आश्रम में मिलते हैं और अपनी इच्छा से विवाह के सूत्र में बँध जाते हैं। जल्दी ही शकुन्तला को बुला लेने का वादा करके दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट जाते हैं। उधर कण्व के आश्रम में महर्षि दुर्वासा आते हैं। पति की याद में सुध-बुध भूली शकुन्तला उनका उचित सत्कार नहीं करती। दुर्वासा उसे शाप देते है कि वह जिसके ध्यान में लीन है, वही उसे भूल जाएगा। परन्तु शकुन्तला की एक सहेली के प्रार्थना करने पर कहते हैं:—"दुष्यन्त ने जो अँगूठी दी है, उसे दिखाने से वह शकुन्तला को पहचान जाएगा।"

शकुन्तला दुष्यन्त की याद में घुलघुलकर काँटा हो रही है। पर राजा शकुन्तला की सुध नहीं लेता। तब कण्व मुनि बिना बुलाये ही शकुन्तला की विदा की तैयारी कराते हैं।

विदा करते समय कण्व मुनि की क्या दशा थी; इसका वर्णन कालिदास ने इन शब्दों में किया है :

"यह सोचते ही दिल बैठा जा रहा है कि आज शकुन्तला चली जाएगी। आंसुओं को रोकने से गला इतना रुँध गया है कि मुँह से शब्द नहीं निकलते। इसी चिन्ता में मेरी आंखें भी धुँधली पड़ गयी हैं। जब मुझ जैसे बनवासी को इतना दुःख हो रहा है, तो उन बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी जो अपनी कन्या को पहले पहल विदा करते होंगे।"

शकुन्तला ने आश्रम में बहुत से पौधे लगाए थे। वह पौधों को बड़े चाव से सींचती थी। उन पेड़, पौधों और लताओं को देखकर कण्व की ममता उमड़ पड़ती है। वे कहते हैं :

"तपोवन के वृक्षों और लताओं! जो शकुन्तला तुम्हें सींचने से पहले कभी पानी नहीं पीती थी, फूल पत्तियों के गहने पहनने की इच्छा होने पर भी जो स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नन्हीं कलियों को देख देखकर फूली न समाती थी, वही शकुन्तला आज तुमसे बिछुड़ रही है। तुम उसे प्रेम से विदा करो।"

इस अवसर पर पुत्री को नारी धर्म की शिक्षा देते हुए कण्व जो कुछ कहते हैं, उससे उनके समय के सामाजिक आदर्शों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वे कहते हैं :

"बेटी, पति के घर पहुँचकर घर के सब बड़े-बूढ़ों की सेवा करना। अपनी सौतों से सखियों जैसा प्रेम करना। पति निरादर भी करें, तो क्रोध करके उनसे झगड़ा न करना। अपने दास दासियों को बड़े प्यार से रखना और अपने सौभाग्य पर घमंड न करना। जो स्त्रियां इन बातों का पालन

शकुन्तला आश्रम के पेड़ों और फूलों से विदा हो रही है

मुकुल दे

करती हैं, वे ही सच्ची गृहिणी होती हैं और जो इसका उलटा करती हैं, वे खोटी स्त्रियाँ अपने कुल की नागिन होती हैं।"

शकुन्तला पति के घर जाती है। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त उसे पहचानते नहीं। दुष्यन्त ने कण्व के आश्रम से विदा होते समय शकुन्तला को एक अंगूठी दी थी। शकुन्तला उस समय वह अंगूठी दिखाकर दुष्यन्त को याद दिलाना चाहती है, पर वह अंगूठी पहले ही न जाने कहाँ गिर चुकी थी। पति उसे स्वीकार नहीं करता। उधर आश्रम भी छूट गया है। शकुन्तला को सूझ नहीं पड़ता कि वह क्या करे। अन्त में एक अप्सरा उसे ले जाती है और हेमकूट पर्वत में महर्षि कश्यप के आश्रम में रखती है।

शकुन्तला को दी हुई दुष्यन्त की अंगूठी एक धीवर को एक मछली के

पेट से मिलती है। वह उसे लेकर दुष्यन्त के पास जाता है। अंगूठ
दुष्यन्त को भूली बातें याद आ जाती हैं। वह बहुत दुःखी होत
शकुन्तला के विरह में बेचैन रहने लगता है। इसी बीच इन्द्र के
दुष्यन्त इन्द्र-लोक जाता है। वहाँ से लौटते समय हेमकूट पर्वत
कश्यप के आश्रम में एक बालक को शेर के साथ खेलते देखक
के हृदय में पुत्र स्नेह उमड़ आता है। बाद में उसे पता चलता
बालक उसी का पुत्र है। उसके बाद दुष्यन्त और शकुन्तला मिलते
तो उनकी खुशी की सीमा नहीं रहती। शकुन्तला के वीर बालव
देखते हुए कश्यप कहते हैं:—"इस समय अपने बल से सब जीव-
अपने आधीन करने के कारण इस बालक का नाम 'सर्वदमन' है।
कर सारे संसार की रक्षा करने के कारण यह 'भरत' कह
कहा जाता है कि शकुन्तला और दुष्यन्त के पुत्र 'भरत' के ना
हमारे देश का नाम 'भारत' या 'भारतवर्ष' पड़ा।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं।
कवि दो चीज़ों का मुकाबला या तुलना करता है और उनमें
मिसाल देकर दूसरे के गुणों पर प्रकाश डालता है। बखान न
बढ़ाने के लिए कवि कहीं उपमा देता है, तो कहीं अपनी बात
अनोखे ढंग से कहता है। वह चतुर कारीगर की तरह अपनी
भाँति भाँति के नगीने जड़ता है। कालिदास इस प्रकार बख
सबसे बड़े कवि माने गए हैं।

बखान की सुन्दरता के नमूने शकुन्तला नाटक में तो हैं इ
काव्यों—कुमार-सम्भव, रघुवंश और मेघदूत में भी उनकी

ाकुन्तला नाटक से एक नमूना देखिए :

तला आश्रम के बिरवे सींच रही है। कवि के शब्दों में ा कोमल शरीर के लिए यह उतना ही कठिन काम है जितना ंखुड़ी की धार से शमी का पेड़ काटना। शकुन्तला की कोमलता को कठोरता का कितना अच्छा चित्र है।

ार-सम्भव' का आरम्भ वे हिमालय के वर्णन से करते हैं। उत्तर में पच्छिम से पूर्व तक फैला हुआ यह पहाड़ अपनी र लम्बाई में बेजोड़ है। कवि उसकी लम्बाई को देखकर कहता पृथ्वी को नापनेवाला गज हो।

ार-सम्भव में ही पार्वती की सुन्दरता की चन्द्रमा से तुलना करते है :

र्वती जैसे जैसे बढ़ रही हैं, उनकी सुन्दरता भी बढ़ रही है, जैसे ा बढ़ने के साथ साथ उसका प्रकाश बढ़ता है।

ुकुल कितना बड़ा राजवंश था और उसका बखान करना कितना ाम था, इसे कालिदास 'रघुवंश' में इस प्रकार लिखते हैं—कहाँ ादा हुआ रघुकुल और कहाँ मेरी जैसी थोड़ी बुद्धिवाला आदमी। पर सागर पार करना चाहता हूँ। मैं कवि बनने चला हूँ। लोग ी प्रकार हँसी उड़ाएँगे जैसे अगर कोई बौना ऊँची डाल पर लगे तोड़ने के लिए हाथ उठाए, तो सब हँसते हैं।

ालिदास ने अपनी रचनाओं के लिए नई कथाएँ नहीं गढ़ीं। उन्होंने ौर लोकप्रिय कथा कहानियों को ही अपनी रचनाओं में जगह दी। ाथाओं के पुराने ढांचों में महाकवि कालिदास ने अपनी तरफ़ से तरह

तरह के रंग भरे, उन्हें सजाया, सँवारा और नया जीवन दिया

कालिदास ने अपने जीवन में बहुत कुछ देखा और सीखा था। उन्होंने यात्राएँ भी बहुत की थीं। अपने समाज की उन्हें पूरी जानकारी थी। नगर और तपोवन, प्रकृति और मनुष्य, सबका उन्हें पूरा ज्ञान था। उन्होंने इन सबका ऐसा चित्र अपनी रचनाओं में खींचा है कि पढ़नेवाला मुग्ध हो जाता है। वे मन के भावों को खूब समझते थे। प्रेम-वियोग, सुख-दुःख आदि का इस खूबी से बखान किया है कि ऐसा लगता है जैसे हमारे ही मन की बात कह दी हो। यही कारण है कि इतना समय बीत जाने पर भी उनकी रचनाएँ आज भी ताज़ी लगती हैं और हर देश के लोगों का मन मोह लेती हैं।
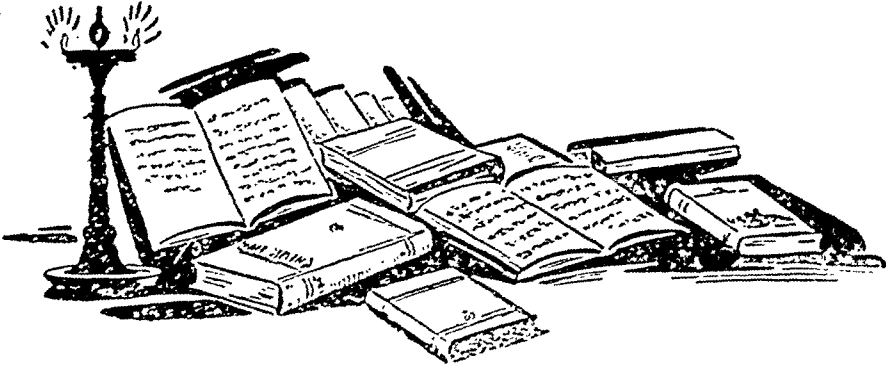
१३

हिन्दी साहित्य धारा

हिन्दी का जन्म आठवीं सदी ईस्वी के आसपास हुआ। पर दसवीं सदी तक हमें जिस भाषा का साहित्य मिलता है, उसमें हिन्दी भाषा का साफ़ रूप नहीं मिलता। इसीलिए हिन्दी साहित्य के बहुत से इतिहास लेखक हिन्दी-साहित्य का जन्म दसवीं सदी मानते हैं।

इन दस-ग्यारह सौ वर्षों में हिन्दी में बहुत अधिक और सुन्दर साहित्य रचा गया। समय-समय पर साहित्य की धाराएँ बदलती गईं और ऐसे कई ग्रन्थ लिखे गए जो अलग-अलग युग के प्रतिनिधि-ग्रन्थ माने जाते हैं।

हिन्दी साहित्य का पहला युग "वीर गाथा काल" कहलाता है। इस काल में कई 'वीर काव्य' लिखे गए जिनमें 'खुमान रासो,' 'वीसलदेव-

रासो,' 'हम्मीर रासो,' 'विजयपाल रासो,' और 'पृथ्वीराज रासो,' आदि काव्य मशहूर हैं। इन काव्यों में ज़्यादातर किसी बड़े राजा की वीरता या लड़ाई का बखान है।

'पृथ्वीराज-रासो' हिन्दी का पहला महाकाव्य माना जाता है। इसके रचनेवाले कवि चन्द बरदाई थे। कहते हैं कि चन्द कवि महाराज पृथ्वीराज के राजकवि और सेनापति थे। इस तरह यह महाकाव्य बारहवीं सदी का ठहरता है। उसकी भाषा पुरानी हिन्दी है।

उस समय भारत छोटे छोटे रजवाड़ों में बंटा हुआ था। राजा अक्सर आपस में लड़ा करते थे। लड़ाइयों के कई कारण होते थे। कभी अपना राज बढ़ाने के लिए एक राजा दूसरे राजा पर चढ़ाई करता था। कभी किसी राजा की कन्या से विवाह के लिए कोई राजा रार ठान लेता था। कभी बहादुरी दिखाने के लिए ही युद्ध छिड़ जाता था। एक तरफ़ देश में आपसी झगड़े हो रहे थे, दूसरी तरफ़ पच्छिम से विदेशी हमले होने लगे थे।

बारहवीं सदी में अजमेर में पृथ्वीराज चौहान राज्य करते थे। दिल्ली का राज्य उन्हें अपने नाना से मिला था। इसलिए उनका राज बहुत बढ़ गया था। कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता से उन्होंने विवाह किया था, पर वह विवाह जयचन्द की इच्छा के विरुद्ध हुआ था। पृथ्वीराज संयोगिता को हर लाए थे।

पृथ्वीराज चौहान के राज्यकाल में मुहम्मद ग़ौरी ने भारत पर कई हमले किए। उन हमलों का पृथ्वीराज ने डटकर सामना किया। अन्त में वह हार गए और चन्द बरदाई के अनुसार वह ग़ौरी द्वारा क़ैद कर लिए गए।

चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में महाराज पृथ्वीराज की कहानी लिखी है। संयोगिता से विवाह और ग़ोरी से लड़ाइयों आदि का सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में है। उस समय के अनेक राजाओं के जीवन की झांकी भी इसमें मिलती है।

पृथ्वीराज रासो पढ़ने से पता चलता है कि राजपूत बड़ी हिम्मतवाले, बहादुर और आन पर मर मिटने वाले थे। पर साथ ही उनमें आपस में लाग-डांट भी चलती रहती थी। इस आपस की फूट से देश को बहुत हानि पहुँची।

पद्मावत :

धीरे धीरे भारत में मुसलमान बादशाहों का राज जम गया और क़रीब क़रीब पूरा उत्तर भारत उनके हाथों में आ गया। दक्खिन भारत में भी कुछ जगह उन्होंने अपना अधिकार जमाया। इस तरह एक नयी सभ्यता से भारतवालों की पहचान हुई।

मुसलमानों में सूफ़ी सन्त बड़े उदार विचार के थे। वे भगवान को पाने का रास्ता प्रेम बतलाते थे। सूफ़ी संतों ने जनता में प्रचलित लोक-कथाओं को कविता में लिखा। वे लोग किसी प्रेमी प्रेमिका की कहानी के सहारे भगवान से प्रेम की बात कहते थे। साहित्य की यह शाख 'प्रेम काव्य' के नाम से पुकारी जाती है। इस परम्परा में काफ़ी साहित्य लिखा गया जिनमें 'मधुमालती,' 'मृगावती,' 'ढोला और मारू,' 'हीर और रांझा,' आदि की कहानियाँ आज तक बड़े चाव से सुनी जाती हैं।

प्रेम काव्य-धारा का सबसे बड़ा ग्रन्थ 'पद्मावत' है जिसे सूफ़ी कवि मलिक मोहम्मद जायसी ने लिखा था। सूफ़ी कवियों में क़ुतबन, मंझन और

उस्मान आदि के ग्रन्थ भी पाए जाते हैं किन्तु उन सबमें सोलहवीं सदी के

मलिक मोहम्मद जायसी का विशेष स्थान है। उनकी रचना 'पद्मावत' हिन्दी का टकसाली ग्रन्थ है। उसकी भाषा अवधी है, जो बस्ती से लखनऊ के बीच बोली जाती है। 'पद्मावत' में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी की कहानी कविता में लिखी गयी है। जायसी की कहानी इतिहास से पूरी पूरी नहीं मिलती। उनको तो इस कहानी के सहारे सूफ़ी मत का प्रेम समझाना था। उन्होंने अपनी कल्पना से कहानी को अपने ढंग पर लिखा। उसमें पद्मिनी के रूप का बखान, प्रेम की पीर, वियोग की तड़प आदि बातें बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखी गयी हैं। जायसी उस कहानी के सहारे बताते हैं कि जीव ईश्वर को पाने के लिए उसी तरह तड़पता है, जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को पाने के लिए।

जायसी के पहले अमीर खुसरो ने हिन्दी-भाषा को संवारने में काफ़ी काम किया। उनकी मुकरियाँ और पहेलियाँ आज भी मनोरजंन का साधन बनी हुई हैं। "खड़ी बोली" नामक हिन्दी भाषा का जो रूप आज हमें दिखाई पड़ता है उसकी सबसे पहली झलक हमें अमीर खुसरो की कविताओं में मिलती है।

जायसी और खुसरो की भांति कबीर भी हिन्दू मुसलमानों में भेदभाव

तुलसीदास और सूरदास ब्राह्मण थे। मगर नामदेव, रैदास, और दादू उन जातियों के थे जिन्हें छोटा समझा जाता था।

वैष्णव संत कवियों में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने भगवान के अवतार की बात नहीं कही। वे लोग निर्गुण ईश्वर को मानते थे। बाद के कवि भगवान के अवतारों का बखान करते हैं। राम और कृष्ण, दो अवतार मुख्य माने गए हैं। कुछ कवियों ने राम के गुण गाए और कुछ ने कृष्ण के।

रामचरित मानस :

राम के गुण गानेवालों में गोसाईं तुलसीदास जी सबसे बड़े कवि हुए हैं। गोसाईं जी की रचना, 'रामचरितमानस', जिसे रामायण भी कहते हैं, अवधी में लिखा हिन्दी का सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसकी गिनती संसार के गिने चुने बड़े-बड़े ग्रन्थों में है। हिन्दी जाननेवालों में रामायण के बराबर आदर और किसी ग्रन्थ का नहीं। ऐसा कोई हिन्दी जाननेवाला न होगा, जिसे रामायण की कुछ चौपाइयां याद न हों।

रामायण में रामचन्द्र जी के अवतार की कहानी बड़े ही रोचक ढंग से कही गई है। कहानी के साथ-साथ आदमी को धर्म का उपदेश भी दिया गया है। गृहस्थ धर्म का तो ऐसा उपदेश और कहीं मिलता ही नहीं। भाई-भाई का सम्बन्ध कैसा हो, पति-पत्नी में कैसा व्यवहार होना चाहिए,

पिता-पुत्र के क्या कर्तव्य हैं, यह सभी बातें बहुत ही सुन्दर ढंग से समझायी गयी हैं। उसमें जीवन की सब बातों का निचोड़ मिलता है। यही कारण है कि आज भी घर-घर में रामायण की आरती होती है और गांव-गांव में रामायण के बोल सुनाई पड़ते हैं। गोसाईं जी कैसे माने हुए चोटी के भक्त कवि थे, इस पर 'रहीम' का यह दोहा प्रकाश डालता है :

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय॥

सूरसागर :

तुलसीदास जी ने भगवान राम का चरित गाया है, तो सूरदास जी ने भगवान कृष्ण का। पर सूरदास जी ने श्री कृष्ण जी के पूरे जीवन की कहानी नहीं कही। वह तो भगवान के बाल-रूप के भक्त थे। उन्होंने श्री कृष्ण की बाल-लीला और गोपियों के प्रेम और विरह पर पद रचे हैं। उनके इन गीतों में इतना रस है कि इन बातों के बखान में गोसाईं जी भी सूर से आगे नहीं जा सके। मथुरा के आसपास बोली जानेवाली ब्रजभाषा में लिखा 'सूरसागर' भक्ति और प्रेम का मीठा क्षीर-सागर है, जिसे पीते हुए पढ़नेवाला कभी नहीं अघाता।

सूर के पद हृदय को कितना छूते हैं, इस पर एक दोहा प्रसिद्ध है :

किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर,
किधौं सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल सरीर।

इस भक्ति-काल में और भी ऐसे चोटी के कवि हुए हैं, जिन्हें आज तक हिन्दी संसार नहीं भूला और जो सदा अमर रहेंगे। मीराबाई, अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना 'रहीम' और रसखान ऐसे कवियों में हैं। हिन्दू मुसलमान सभी कवि इस भक्ति की गंगा में डुबकियाँ लगा रहे थे और अपनी वाणी से जनता के मन को तृप्त कर रहे थे।

बिहारी सतसई :

कृष्ण-भक्ति का हिन्दी के साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। आगे चलकर अठारहवीं सदी में राधा-कृष्ण के प्रेम का रूप बदल गया। कवि अब संसारी प्रेम की ओर झुके। उस समय की कविता में शृंगार-रस विशेष रूप से मिलता है। नायिका के रूप का बखान, नायक के विरह में नायिका का व्याकुल रहना, नायक-नायिका का मिलना—ये सब कविता के विषय बन गए। एक बात और हुई। अनोखे ढंग से बात कहने की ओर कवियों का झुकाव अधिक हो गया। उस समय क़रीब क़रीब सब साहित्य ब्रज-भाषा में लिखा गया। भाषा बहुत ही मंजी हुई और मीठी

रहती थी। उसे खूब संवारा जाता था। उस समय के कवियों बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर, आलम और घनानन्द खास हैं।

इन कवियों में से भूषण ने शृंगार रस की कविताएं नहीं लिखीं उन्होंने शिवाजी की वीरता का बखान किया है। उस काल के कवियों में बिहारी का खास स्थान है। वह थोड़े में बहुत और चुभता हुआ कहने के लिए प्रसिद्ध हैं। बिहारी ने सात सौ दोहे लिखे हैं जो 'बिहारी-सतसई' के नाम से छपे हैं। सतसई के बारे में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है।

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

वैसे तो बिहारी-सतसई में भक्ति, उपदेश, वैद्यक आदि कई विषयों पर लिखा गया है, लेकिन शृंगार रस के दोहे ही अधिक हैं। इन दोहों में बिहारी ने गागर में सागर भरा है। बाद में बहुत से बड़े बड़े कवियों ने बिहारी के एक एक दोहे के भाव पर छन्द रचे हैं।

प्रेस और छपाई का काम देश में शुरू हो जाने से अलग-अलग विषयों की किताबें निकलने लगीं। अब तक हिन्दी साहित्य ज्यादातर पद्य में ही लिखा जाता था किंतु अब लेखकों ने गद्य साहित्य की रचना शुरू की। गद्य साहित्य की शुरुआत ने हिन्दी के नए रूप, जिसे खड़ी बोली कहते हैं, को संवारना शुरू किया।

अंग्रेजी शासन में भारत और भारत की बिगड़ती हुई हालत देखकर लोगों में आजादी और देश-प्रेम की भावनाएं जागने लगीं। हिन्दी के कवियों और लेखकों पर भी उसका असर पड़ा। कवियों ने प्रेम और शृंगार गीत छोड़कर देश की दुर्दशा की ओर देशवासियों का ध्यान खींचा।

सम्पादक थे। उनके पहले कुछ लोगों का ख्याल था कि खड़ी बोली में जितना अच्छा गद्य लिखा जा सकता है, उतनी अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली को वह रूप प्रदान किया जिसमें कविता और गद्य दोनों ही लिखे जा सकें। मैथिलीशरण गुप्त और श्री जयशंकर प्रसाद आदि द्विवेदी युग की ही देन हैं जिन्होंने खड़ी बोली में ऐसे ग्रंथ और काव्य लिखे हैं जिन पर हिन्दी साहित्य को गर्व है।

भारत-भारती :

श्री मैथिलीशरण जी देशवासियों से कहते हैं :

हम कौन थे, क्या हो गये हैं,
और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें बैठ करके,
यह समस्याएं सभी।

और 'भारत भारती' में अपने देश के बीते युग, आज के समय और आगे आनेवाले समय की झाँकी देते हैं। पहले हम कैसे वीर थे, विद्या और ज्ञान में कैसे बढ़े थे---इसे पढ़ते पढ़ते सीना गर्व से फूल जाता है। फिर जब कवि आज की गिरावट का वर्णन करता है, तो लज्जा और क्षोभ से गर्दन झुक जाती है। तभी वह ललकारता है कि हमें क्या बनना चाहिए। १६११-१२ में रची अकेली 'भारत भारती' ने नौजवानों में देश प्रेम के भाव भरने में बहुत बड़ा काम किया है। भारतेन्दु के समय से ही खड़ी बोली में कुछ कुछ कविता होने लगी थी। गुप्त जी की 'भारत भारती'

प्रलय के बाद मनु ने कैसे फिर सृष्टि रची यह बहुत पुरानी कहानी है। वेदों और पुराणों में यह कहानी मिलती है। प्रसाद जी ने उसी को अपने काव्य 'कामायनी' का आधार बनाया और यह समझाया कि बुद्धि अकेली मन को सुख नहीं दे सकती। बुद्धि के साथ श्रद्धा भी होनी चाहिए। श्रद्धा ही मन को शांति देती है। कोरी बुद्धि आदमी के मन को चंचल बना देती है वह अशान्त होकर इधर उधर भटकता रहता है। इस काव्य ने जैसे नए और पुराने विचारों में मेल कराया। इस युग के दूसरे बड़े कवियों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा आदि का नाम प्रसिद्ध है। इनके अलावा हिन्दी में आज अनेक कवि अपनी ऊँची-ऊँची रचनाओं से साहित्य के खजाने को बराबर बढ़ाते जा रहे हैं।

गोदान :

गद्य के क्षेत्र में अब तक लेख, आलोचनाएँ, यात्रा की कहानियाँ आदि बहुत सी चीजें लिखी जाने लगी थीं। साहित्य की इस नयी दिशा में कहानी और उपन्यासों का खास स्थान है। इस युग के और उपन्यास लेखकों में 'प्रेमचन्द' नाम सब से पहले आता है। प्रेमचन्द की रचनाओं में साधारण जनता, विशेषकर
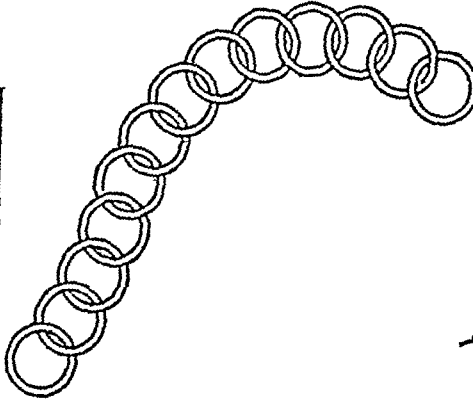
१४

अंग्रेज़ी साहित्य की धारा

किसी जाति की प्रतिभा को परखने के लिए उसके साहित्य को समझना जरूरी है। आज अंग्रेजी-भाषा संसार की सबसे महत्त्व की भाषाओं में से एक है। यदि हम अंग्रेजों की प्रतिभा को परखना चाहें, तो हमें उनके साहित्य और महाकाव्यों को देखना होगा।

चासर को अंग्रेजी काव्य का पिता कहते हैं। उसका जन्म सन् १३४० ई० में हुआ था और सन् १४०० के लगभग वह संसार से विदा हुआ। वह कई बातों के लिये प्रसिद्ध है। चासर पुराने नाइटों (कुलीन वीरों) में से था। उसने सैनिक और राजनीतिज्ञ के रूप में देश-विदेश में काम किया। उसके समय में इंगलैंड में बहुत उथल-पुथल थी। लोग पादरियों और जागीरदारों के असर के खिलाफ़ आवाज उठाने लगे थे।

देहातों की जनता का रूप बहुत सुन्दर उभरकर आता है।

वैसे तो प्रेमचन्द जी की सभी रचनाएँ बहुत अच्छी हैं, पर 'गोदान' उपन्यास उनमें सबसे ऊँचा ठहरता है। 'गोदान' में होरी नाम के एक सीधे-सादे, ग़रीब और नेक किसान की कहानी है। किसानों के दुःख दर्द, उनकी चाहों और कमियों, सबका बहुत ही सुन्दर चित्र इस उपन्यास में मिलता है। नेक होरी जिन्दगी भर मूंड़-माटी देकर मेहनत करता है, फिर भी ग़रीबी से छुटकारा नहीं पाता। उसके मरते समय उससे गोदान कराया जा सके, इतनी भी उसकी स्त्री की समाई नहीं। गोदान के बाद हिन्दी में अनेक अच्छे उपन्यास लिखे गए हैं जिनमें 'शेखर' और 'मैला आँचल' नाम के उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासों को एक नयी दिशा प्रदान की है। हिन्दी में जहाँ एक ओर मौलिक साहित्य की रचना हो रही थी, वहीं देश की दूसरी भाषाओं तथा अंग्रेजी के साहित्य का काफ़ी अनुवाद भी इस युग में हुआ। जिन दूसरी भाषाओं के साहित्य का हिन्दी साहित्य पर काफ़ी असर पड़ा उनमें से संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी ख़ास हैं।

हिन्दी साहित्य चन्द बरदाई से अब तक बराबर उन्नति करता आ रहा है। नए नए लेखक पुरखों की इस थाती को बढ़ाने में लगे हैं। साहित्य के सभी अंगों को पुष्ट करने का प्रयत्न हो रहा है।
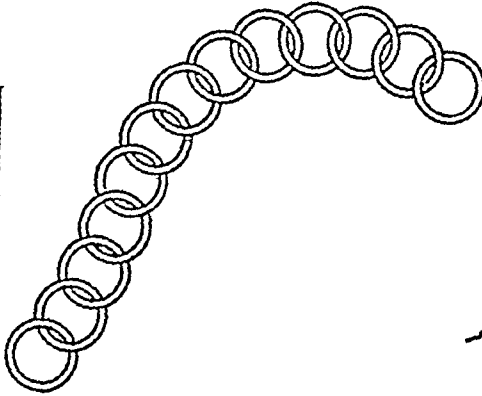
१४

अंग्रेज़ी साहित्य की धारा

किसी जाति की प्रतिभा को परखने के लिए उसके साहित्य को समझना जरूरी है। आज अंग्रेजी-भाषा संसार की सबसे महत्त्व की भाषाओं में से एक है। यदि हम अंग्रेजों की प्रतिभा को परखना चाहें, तो हमें उनके साहित्य और महाकाव्यों को देखना होगा।

चासर को अंग्रेजी काव्य का पिता कहते हैं। उसका जन्म सन् १३४० ई० में हुआ था और सन् १४०० के लगभग वह संसार से विदा हुआ। वह कई बातों के लिये प्रसिद्ध है। चासर पुराने नाइटों (कुलीन वीरों) में से था। उसने सैनिक और राजनीतिज्ञ के रूप में देश-विदेश में काम किया। उसके समय में इंगलैंड में बहुत उथल-पुथल थी। लोग पादरियों और जागीरदारों के असर के खिलाफ़ आवाज उठाने लगे थे।

उनके मन में अजीब बेचैनी थी। चासर की कविताओं में हमें राष्ट्रीयता और उदार विचारों की पहली झलक मिलती है।

अभी तक अंग्रेजी भाषा की पूछ न थी। कुलीन लोग और पादरी वगैरह फ्रांसीसी भाषा पढ़ने में ही अपना बड़प्पन समझते थे। अंग्रेजी भाषा को वे लोग भोंडी और भदेस समझते थे और उससे मुंह बिदकाते थे। चासर ने अंग्रेज़ी में कविताएं लिखीं और उसे नया बड़प्पन और मर्यादा दी। चासर से पहले के लेखक जो कुछ लिखते, उसमें नीति का उपदेश जरूर देते। परन्तु चासर कलाकार था। उसने उपदेश कभी नहीं दिया। उसने दुनिया जैसी देखी, उसकी वैसी ही तस्वीर अपनी कविताओं में खींच दी। स्वभाव से हंसोड़ और उदार होने के कारण वह विचारों और मतों के पचड़ों में नहीं पड़ा। उसने सदा आदमियों की बातें कीं।

उसकी सबसे प्रसिद्ध कविता 'कैंटरबरी की कहानियाँ' हैं। उसमें चासर ने अपने समय के समाज का सुन्दर चित्र खींचा है। लन्दन की सराय में जितनी तरह के आदमी देखने को मिलते थे, उन सब की तस्वीरें उस कविता में मिल जाएंगी। नाइट, मल्लाह, डाक्टर, पुरोहित, मजदूर, धनी, व्यापारी की पत्नी, सभी प्रकार के लोग बड़ी मस्ती से हंसते और अपनी

अपनी बातें कहते मिलते हैं। उस समय के लोगों की वीरता, प्रेम और जीवन का गाढ़ा रंग कैंटरबरी की कहानियों में मौजूद है।

चासर के बाद डेढ़ सौ साल तक कोई ऐसा बड़ा कवि या लेखक नहीं हुआ जिसका नाम उस महाकवि के साथ लिया जा सके। डेढ़ सौ साल बाद अंग्रेजी का सबसे बड़ा कवि और नाटक लेखक शेक्सपियर हमारे सामने आता है। शेक्सपियर का स्थान अंग्रेजी साहित्य ही में नहीं, बल्कि सारी दुनिया के साहित्य में बहुत ऊँचा है। यह वह समय था जब युरोप में मध्य-युग बीत चुका था और वर्तमान युग का जन्म हो रहा था। लोगों ने नए युग में आँखें खोली थीं। पूरे देश में जागरण की नयी लहर दौड़ रही थी। इंगलैंड की धाक जल और थल पर जम रही थी। उस समय के साहित्य में इसकी झलक मिलती है। कवि और नाटक लिखने वाले अंग्रेजी के भंडार को खूब भर रहे थे। जिसमें सबसे बड़ी देन शेक्सपियर की थी।

उस समय एलिजावेथ इंगलैंड की रानी थीं।

शेक्सपियर का जन्म १५६४ ई० में हुआ था और मृत्यु १६१२ ई० में। उसने साहित्य रचना कविता से शुरू की। मगर उसकी प्रतिभा का पूरा चमत्कार नाटकों में देखने को मिला। चार सदियां बीत जाने पर भी उसके नाटक पुराने नहीं हुए। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में आज भी उसके

नाटक खेले जाते हैं।

शेक्सपियर के नाटकों में उस समय के जीवन की सब बातें पूरी की पूरी हमारी आंखों के सामने आ जाती हैं। प्रेम और रोमांस, जीवन की गुत्थियां सुलझाने की चाह, दैवी शक्तियों पर श्रद्धा--सब कुछ उनमें मिलता हैं। शेक्सपियर के नाटकों में वह सब कुछ है जिससे नाटक की गठन सब तरह से पूर्ण बनती है। उसके नाटकों में मनुष्य के सुख-दुःख, उसकी आशा निराशा, और चाह के सच्चे भाव भरे पड़े हैं। उनमें लेखक की कल्पना की ऊँची उड़ान भी है और भाषा का जोर भी। भाषा को मौके के अनुसार प्रभावशाली बनाने के लिए उसने कहीं गद्य का प्रयोग किया है, कहीं पद्य का और कहीं गीत का।

उसके ऐतिहासिक नाटकों, 'चौथे हेनरी' और 'पाँचवें हेनरी', में हमें इंगलैंड के राजाओं के जीवन की झांकी मिलती है। 'ऐज़ यू लाइक इट', 'मिड समर नाइट्स ड्रीम', 'मर्चेन्ट आफ़ वेनिस' और 'टेम्पेस्ट' ऐसे सुखान्त नाटक हैं, जिन्हें लोग बहुत पसन्द करते हैं। दुःखान्त नाटकों के रूप में 'जूलियस सीज़र', 'हैमलेट', 'मैकबेथ', 'ओथेलो' और 'किंग लियर', ऐसे हैं, जो शेक्सपियर को नाटक-लेखकों का सिरमौर बना देते हैं।

शेक्सपियर बहुत बड़ा कलाकार था। साथ ही वह मनुष्य-मात्र को प्यार भी करता था। आदमी के स्वभाव और चरित्र की उसे ऐसी परख थी और वह ऐसी खूबी से इनको आंकता था कि आज तक इस काम में कोई उससे आगे नहीं जा सका। यही कारण है कि उसकी रचनाएं सारी दुनिया के लोगों के दिलों में घर किए हुए है।

शेक्सपियर की मृत्यु से कुछ साल पहले, सन् १६०८ ई० में, मिल्टन का

छाया रहा। वह बहुत बड़ा विद्वान था और उसपर बाइबिल का बड़ा प्रभाव था। वह हमारे महान कवि सूरदास की तरह ही अंधा था। उसके समय में राजतंत्र का अन्त हुआ और कट्टर सुधारक क्रामवेल का शासन चला। फल यह हुआ कि लोगों का मन राजनीति और दर्शन की ओर झुका। जीवन की रंगीनियाँ कुचली गयीं। मिल्टन इस नए युग का बड़ा समर्थक था। वह मसीहा की भाँति संसार के लोगों से चिल्ला-चिल्लाकर कहता था कि यदि उनका मन धर्म और ईश्वर में न लगा, तो प्रलय हो जायगा।

मिल्टन ने अंग्रेजी साहित्य को संगीत और कल्पना से भरपूर कविताएँ भेंट कीं। उसकी सबसे बड़ी रचना 'पैराडाइज़ लास्ट' नाम का महाकाव्य है। उसमें ईश्वर, शैतान, फ़रिश्तों और धरती पर मनुष्य के आने की कहानी है। उसमें बताया गया है कि हमारे पहले पुरखे आदम और हव्वा ईश्वर की आज्ञा न मानने के अपराध में किस तरह स्वर्ग के बाग़ से निकाल दिए गए और अन्त में किस प्रकार ईसा मसीह ने जन्म लेकर और सूली पर चढ़कर मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखाया। मिल्टन कला में महानता और पवित्रता का पुजारी था। यह गुण इंगलैंड के नए जागरण की देन था। दूसरी ओर उसमें विश्वास की सचाई और सुधारकों
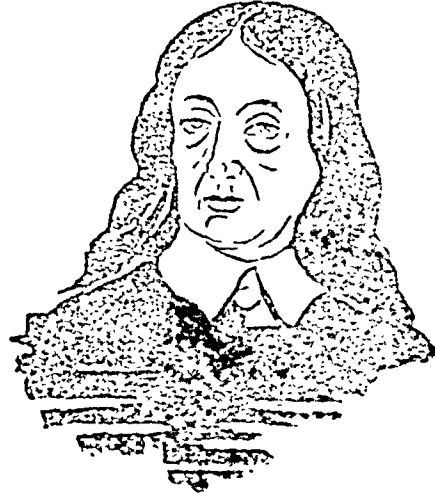
वाला जोश भी था।

सन् १६७४ ई० में उसकी मृत्यु के साथ साथ अंग्रेजी साहित्य का एक महान् युग समाप्त हो गया। इंगलैंड ने संसार को एक से एक ऐसे प्रतिभा वाले सपूत दिए, जिनपर किसी भी देश को गर्व होगा। उनकी रचनाओं ने अलग अलग दिशाओं में अंग्रेजी साहित्य की बढ़ती के लिए रास्ते बनाये।

मिल्टन के बाद पोप की महान् प्रतिभा सामने आई। पोप का जन्म सन् १६८८ ई० में हुआ और स्वर्गवास १७४४ में। साहित्य में तबतक जो परिवर्तन आए थे, वे पोप के युग के जीवन में गहराई तक पैठ चुके थे। एलिजाबेथ के समय के आदर्श और सुधारकों के युग की कट्टरता अब पुरानी पड़ चुकी थी। व्यंग्य और आलोचना उस नए युग की विशेषता थी। भावुकता का स्थान बुद्धि ने ले लिया था। चुटकुले, लेख और फड़कती हुई कविताएँ लिखने की परिपाटी चल पड़ी थी।

उसी समय समाचार पत्रों का निकलना भी शुरू हुआ और लेखकों और कवियों का मान बहुत बढ़ गया। उस समय लन्दन में ३,००० से अधिक 'काफ़ी हाउस' थे, जहाँ विद्वान, व्यापारी और कुलीन लोग जी खोलकर एक दूसरे से मिलते जुलते थे। प्रजातंत्र का प्रभात हो रहा था।

पोप रोमन कैथोलिक कुटुम्ब में पैदा हुआ था। यह मानो उस पर एक धब्बा था, क्योंकि लोग कैथोलिकों को अच्छी नजर से नहीं देखते थे।

पर पोप बहुत अच्छा व्यंग्य लिखनेवाला और आलोचक था। इसलिए वह जल्द ही सबकी आँखों पर चढ़ गया। उसकी कुछ कविताएँ बहुत ही लोकप्रिय हुईं, जो आज भी उसके नाम को अमर बनाए हैं। जैसे 'दि रेप आफ़ दि लाक', जिसमें पोप ने उस युग की कमजोरियाँ दिखायी हैं, 'दि डनसियल', जिसमें उस समय की राजनीतिक मूर्खताओं का उसने मजाक उड़ाया है, और 'दि एसे आन मैन', जिसमें उस समय के जीवन-दर्शन की गूंज है।

पोप के बाद काफ़ी समय बीतने पर फिर एक नई प्रतिभा चमकी। शेली १७६२ ई० में पैदा हुआ और अपनी सुनहली झलक दिखाकर कोई ३० साल की उम्र में १८२२ में विदा हो गया।

अठारहवीं सदी में तर्क का बोल बाला था। ग्रीक और लैटिन के पंडितों ने साहित्य के जो शास्त्रीय नियम बनाए थे, उनको पत्थर की लकीर मान कर उन्हीं के बन्धन के भीतर साहित्य रचना होती आ रही थी। परन्तु अब फिर परिवर्तन आया। युरोप और इंगलैंड में एक जोर का आन्दोलन चला। आदमी आदमी की बराबरी, स्त्री-पुरुष की बराबरी और प्रकृति की गोद में खुलकर विचरना—ये उस नए आन्दोलन की विशेषताएँ थीं। फ्रांस की क्रान्ति में आजादी, बराबरी और भाईचारे का नारा उठा था। चारों तरफ़ उसकी गूंज थी। नए

विचारों की मशाल ने सभी दिशाओं में प्रकाश फैला दिया था। नौजवान कवि शेली इस मशाल को लेकर पूरे उत्साह के साथ आगे बढ़ा। शेली में उन नए विचारों के लिए ऐसी तड़प थी जो दूसरों में नहीं मिलती। अपने छोटे से ही जीवन में शेली ने अंग्रेज़ी साहित्य की फुलवारी को अपनी कविता के गुलाबों की महक से भर दिया। उसकी रचनाओं की हर पंक्ति में सुन्दरता और बारीकी ऐसी रची हुई है, जैसे गुलाब की पंखुड़ी पंखुड़ी महक से गमकती रहती है।

शेली इंगलैंड का सबसे बड़ा गीत लिखने वाला कवि था। विचारों में वह क्रान्तिकारी और आदर्शवादी था। उसका विश्वास था कि अन्त में प्रेम और अच्छाई ही की विजय होती है। उसकी सबसे सुन्दर कविताएँ हैं: 'दि सेंसिटिव प्लांट', 'प्रोमिथियस अनबाउंड', 'दि स्काई लार्क', और 'ओड टु द वेस्ट विंड'।

शेली के समय में प्रेम और प्रकृति के गीत गानेवाले और भी कई कवि थे। उनमें से एक टेनिसन था, जिसके साथ अंग्रेज़ी साहित्य में विक्टोरिया-युग आरम्भ होता है। अभी प्रकृति प्रेम का प्रभाव अवश्य बाक़ी था, पर धीरे धीरे वह कम हो चला था। वह उद्योग-धन्धों का समय था। कल-कारख़ाने खूब धन दे रहे थे। साथ ही राज-सत्ता में भी कुलीनों की जगह मध्यवर्ग के नए धनियों का ज़ोर बढ़ रहा था। धन-बल और राज-बल पाकर वह बीच का वर्ग, यानी मध्यम श्रेणी, मज़े की ज़िन्दगी बिता रहा था। उसके सामने किसी तरह की चिन्ता न थी।

फल यह हुआ कि साहित्य में ऊपरी बनाव सिंगार, कोरी भावुकता और नियम क़ायदों पर ही ज़ोर दिया जाने लगा। टेनिसन में

ये सब बातें बिलकुल साफ़ दिखायी पड़ती हैं। वह बहुत ही सुथरा हुआ कलाकार था। शब्दों की परख उसे बहुत ही अधिक थी। वह अपनी कविताओं में शब्दों का ऐसा चुनाव करता था कि एक एक शब्द में संगीत भरा रहता था। वह अक्सर प्रेम की कविताएँ लिखता था। 'दि इडिल्स आफ़ दि किंग', 'माड, इन मेमोरियम' और 'लाक्सले हाल' उसकी सबसे अच्छी कविताएँ हैं। टेनिसन १८०९ में पैदा हुआ और १८९२ में उसका स्वर्गवास हुआ।
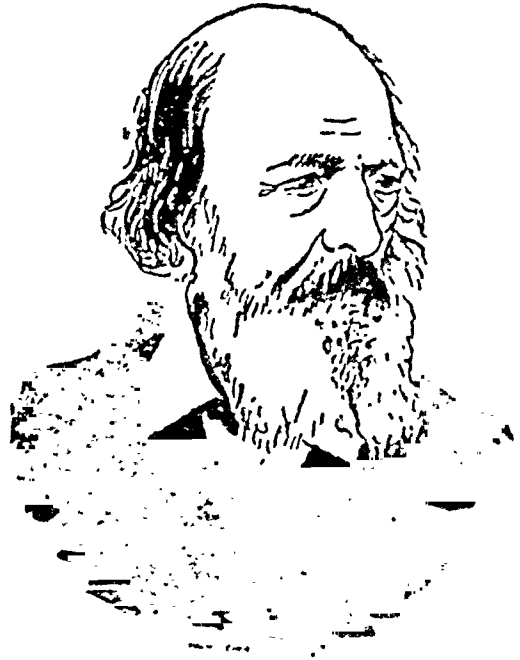
अब तक हमने कवियों की चर्चा की है। अब कुछ गद्य लेखकों का परिचय भी दे दें। गद्य में लिखना बहुत पहले से शुरू हो गया था। समाचार-पत्रों ने गद्य को साफ़ सुथरा बनाने और संवारने में बहुत हाथ बंटाया था। गद्य का चोटी का लेखक डिकेंस अब हमारे सामने आता

है। उस समय तक उपन्यासों का चलन हो चुका था। लोग उपन्यासों को बहुत पसन्द करते थे। डिकेंस ने भी इसी ओर क़दम बढ़ाया। अपनी रचनाओं में उसने विक्टोरिया युग के जीवन पर प्रकाश डाला। हमें उसकी कहानियों में सभी तरह के लोग मिलते हैं। परोपकारी, धनी, उचक्के, ग़रीब, भिखारी, चोर, बदमाश, कारख़ानों में काम करनेवाले, घिसेपिटे बच्चे, सनकी, वहमी, सिर फिरे...सभी अच्छे बुरे लोगों को हम देखते हैं। कभी हम उनकी ओर खिंच जाते हैं, तो कभी उन्हें देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

डिकेंस जीवन को जैसा देखता था, वैसा ही आंकता था। इसमें उसे कमाल हासिल था। कल्पना के बल पर वह शब्दों में जान डाल देता था। साथ ही उसे यह पक्का भरोसा था कि आदमी स्वभाव से अच्छा होता है, इसलिए वह आदमी के अच्छे गुण को सदा उभारता था। 'डेविड कॉपरफ़ील्ड', 'ओलिवर ट्विस्ट', 'दि ओल्ड क्यूरिआसिटी शॉप', 'ए टेल आफ़ टू सिटीज़' और 'पिकविक पेपर्स' आदि उसके ऐसे उपन्यास हैं, जिन्हें लोगों ने बहुत पसन्द किया। डिकेंस का जन्म १८१२ में हुआ और मृत्यु १८७० में।

जार्ज बर्नार्ड शॉ के साथ हम अपनी बीसवीं सदी में पैर रखते हैं। बर्नार्ड शॉ आयरलैंड के मामूली

हैसियत के परिवार में १८५६ में पैदा हुआ था। वह पहले विद्रोही और नास्तिक था और बाद में समाजवादी हो गया। उसने पहले पैम्फ़लेट्स यानी छोटी छोटी किताबें लिखीं। वह सभाओं में भाषण भी दिया करता था। बाद में नाटक लिखने लगा।

शॉ ने अपनी रचनाओं में रूढ़ियों पर करारी चोट की। उसके क़लम में कुछ ऐसा ज़ोर और बांकपन था कि वह अपने समय का सबसे बड़ा व्यंग्य-लेखक मान लिया गया। वह स्त्री-पुरुष को बराबर मानता था। प्रजातंत्र पर उसका अटूट विश्वास था। बच्चों पर माता-पिता का कड़ा शासन वह पसन्द नहीं करता था। अन्ध-विश्वासों का तो वह कट्टर दुश्मन था। वह समझ से काम लेने और विज्ञान के नियमों को मानने की वकालत करता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि बर्नार्ड शॉ कभी नाराज़ नहीं होता था। हँसी-मज़ाक और भलमनसाहत बराबर उसके साथ रही।

वह परम्परा को तोड़ने का हामी था और उसने खुद उन्हें तोड़ा। लेकिन वह तोड़-फोड़ नई परम्परा बनाने के लिए होती थी। नया समाजवादी समाज बनाने का स्वप्न उसकी आँखों में था। वह परम्परा का मज़ाक उड़ाता था––हमें हंसाने के लिए और हंसी हंसी में हमारी आंखें खोलने के लिये। वह पुराने माने हुए नियमों को ललकारता था, जिससे हम साफ़ साफ़ सोच सकें। 'एंड्रोक्लीज़ एंड दि लायन,' 'सेंट जोन', 'मिसेज़ वारेंस प्रोफ़ेशन', 'मैन एंड सुपर मैन', 'पिगमैलियन' और 'सीज़र एंड क्लियोपात्रा' उसके बहुत ही अच्छे नाटक हैं। शॉ अभी कुछ दिन पहले १९५० में हमारे बीच से उठ गया।

१५

भारत के लोक गीत

लोक गीत उन गीतों को कहते हैं जो किसी देश की जनता में आम तौर से गाए जाते हैं। वे देश के जीवन का सच्चा दर्पण होते हैं।

लोक गीतों का दायरा बहुत बड़ा होता है। घर और खेत, मौसम की सर्दी-गर्मी, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, मेले और उत्सव, यानी जन्म से लेकर मरने तक के सुख-दुःख की सब घटनाएँ लोक गीतों में मौजूद रहती हैं। लोक गीत कहीं सारंगी पर गाया जाता है, तो कहीं इकतारे पर; कहीं ढोलक पर, तो कहीं घड़े पर। कहीं चर्खे की घूं घूं उसमें स्वर भरती है, तो कहीं पायलों की झंकार उसे उभारती है।

लोक गीतों में आम तौर से किसी एक इन्सान की कहानी नहीं होती। उनका असली रूप वहीं उभरता है, जहाँ वे किसी पूरे गिरोह या क़ौम की आवाज़ होते हैं। कभी कभी गांव के गांव और शहर के शहर किसी लोक गीत की एक कड़ी में हमारे सामने तस्वीर की तरह आकर खिंच जाते हैं।

इन्सान जिस मिट्टी में खेला, कूदा और पला होता है और जिस मिट्टी से उसका जीवन-मरण का नाता है, उसके साथ उसकी एक ख़ास ममता होती है। इसीलिए लोक गीतों में अक्सर धरती माता का प्यार ठाठें मारा करता है। यदि धरती से सम्बन्ध रखनेवाले देश देश के लोक गीत जमा किए जाएं, तो मालूम होगा कि किस तरह हर देश में इन्सान की आवाज़ एक से दिलों से निकलती है और एक से स्वरों में सुनाई पड़ती है। आदमी की रगों में बहनेवाले लोहू की तरह धरती का प्यार अनगिनत पीढ़ियों से

लोगों के मन में हिलोरें मारता आया है। धरती से आदमी का सबसे बड़ा नाता यह है कि धरती से वह अन्न उपजाता है। इसलिए स्वभावतः अच्छी पैदावार की सूचना देनेवाली हरियाली से लदी धरती को देखकर आदमी का मन खुशी से नाच उठता है। नीचे बुन्देलखंड का एक लोक गीत है जिसमें धरती का बहुत ही सुन्दर चित्र मिलता है। यह गीत संसार के चुने हुए गीतों में जगह पा सकता है।

धरती माता तैंने काजर दये
सेंदरन भर लई माँग
पहर हरियला ठाढ़ी भई
तैंने मोह लयो जगत संसार।

(हे धरती माता! तुमने आँखों में काजल डाल लिया और सिंदूर से अपनी माँग भर ली। हरियाले वस्त्र पहनकर तुम खड़ी हो गई हो। तुमने सारे संसार को मोह लिया है।)

बुन्देलखंडी लोक गीतों में धरती माता को बार बार बुलाया गया है।

धरती माता तो में दो भये
एक आँधी एक मेघ
मेघ के बरसे साखा भई
जा में लिपट लगे संसार

(हे धरती माता! तुम से दो चीजें पैदा हुईं, एक आँधी, एक मेंह। मेंह बरसने से खेती उगती है जिसमें संसार लिपट जाता है।)

एक गुजराती गीत में भी इससे मिलता जुलता चित्र खींचा गया है। यह विवाह का गीत है और यों शुरू होता है:

संसार मां वल सरज्यां,
इक धरती वीजे आप,
वधावो रे आवियो ।

(संसार में दो वलवान चीज़ों की सृष्टि हुई, एक धरती, दूसरा आकाश, वधाई का दिन आ गया ।)

इसी गीत में आगे वताया गया है कि आकाश से जल वरसा और धरती ने उसका भार सहन किया, जिससे फ़सलें लहलहाने लगीं । इसीलिए उस दिन को वधाई का दिन कहा है ।

पंजावी गीतों में भी यही आवाज़ सुनने को मिलती है :

धरती जेडा, गरीव न कोई,
इन्दर जेडा न दाता,
लछमन जेडा जती न कोई,
सीता जेडी न माता,
दुनिया मींह मंगदी
रव्व सवनां दा दाता ।

(धरती के समान कोई ग़रीव नहीं, इन्द्र के समान कोई दाता नहीं, लछमन के समान कोई जती नहीं, सीता के समान कोई माता नहीं । दुनिया मेंह मांगती है, भगवान सवके दाता हैं ।)

पुराणों के अनुसार इन्द्र ही पानी वरसाते हैं । इसलिए व्रज के एक गीत में इन्द्र का वखान इस तरह किया गया है :

चौकी तो चन्दन, इन्दर राजा वैठनो जी,
एजी कोई दूध पखारूंगी पाय,

आज मेहर कर इन्दर राजा देश में जी ।

(हे इन्द्र राजा ! मैं तुम्हें चन्दन की चौकी पर बिठाऊँगी, दूध से तुम्हारे पैर धोऊँगी । हे इन्द्र राजा ! आप हमारे देश पर दया करो यानी मेंह बरसाओ ।)

ब्रज के एक दूसरे गीत में बादलों की घटा को रानी कहकर पुकारा गया है । उस रानी से प्रार्थना की गई है—"हे मेघरानी ! भाइयों ने बहिनें छोड़ दीं, बैलों ने जुआ छोड़ दिया, स्त्रियों ने पति छोड़ दिए, गौओं ने बछड़े छोड़ दिए, भैंसों का दूध सूख गया । अब तुम जल्दी आओ, हमें धीरज बंधाओ और मुसलाधार बारिश ले आओ ।"

जब पानी नहीं बरसता तो लोक गीतों में अकाल का चित्र सामने आता है । बार बार इन्द्र देवता से प्रार्थना की जाती है । एक मैथिली लोक गीत यों शुरू होता है :

हाली हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पड़छइ अकाले हो राम ।

(जल्दी बरसो, इन्द्र देवता ! पानी के बिना अकाल पड़ रहा है, हे राम !)

डलहौजी से ऊपर चम्बा पहाड़ी का एक गीत इसी चित्र को और उभारता है :

गड़क चमक भाइया मेघा हो,
बरह चमियालों दे देसां हो,
कीहाँ गड़काँ कीहां चमकां हो,
सुरग मरोरा तारे हो !

("गरजो और चमको, हे मेघ भैया, चम्बा के देस पर खूब बरसो ।"

स्वाधीनता-दिवस पर सौराष्ट्र का लोक नाच

"कैसे गरजूँ, कैसे चमकूँ ? आकाश तो तारों से भरा हुआ है ।")

सिंधी लोक गीतों में भी वार वार बादल से प्रार्थना की गयी है :

सारंग सार लहज अलहा लग उजन जी,
पाणी पवज पटन में अरजान अन्न करेज,
वतन बसाएज तए संधारण सुख थिए ।

(हे मेघ, अल्लाह के लिए प्यासों की खबर लो, खेतों में पानी बरसाओ, अन्न को सस्ता करो, वतन को बसाओ जिससे सुख ही सुख हो जाए ।)

लोक गीतों में बादल को एक मित्र की तरह बुलाया गया है। इसीलिए उसमें अपनापन छलकता है। हमारे देश में जनता का जीवन खेती पर निर्भर है। इसीलिए वर्षा-सम्बन्धी गीतों में जनता के दिलों की धड़कनें सुनाई देती हैं।

लोकगीतों में ग्राम-जीवन की खुशियाँ और उमंगें उछलती हैं, आशाएँ खिलती हैं और इन्सान की कल्पनाएँ नए रूप ढालती हैं। तिरहुत का यह चित्र इन्हीं खुशियों की ओर इशारा करता है :

कोकटी धोती पटुआ साग,
तिरहुत गीत बड़े अनुराग,
भाव सरल तन तरुणी रूप,
एतवे तिरहुत होइछ अनूप ।

(कोकटी की धोती, पटुआ का साग, अनुराग के गीत, रूपवती युवती की भाव भरी सुन्दरता, इन्हीं के कारण तिरहुत अनुपम है।)

राजस्थानी लोकगीतों में जहाँ एक तरफ़ उदयपुर की बरसात

की तारीफ़ की गयी है, वहां दूसरी तरफ़ उदयपुर के प्रसिद्ध पिछोला सरोवर पर पानी भरती पनिहारिनों की रूप-छटा को भी नहीं भुलाया गया। यह गीत एक नगर से सम्बन्ध रखते हुए भी समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधि है :

बालो लागे छे म्हारो देसड़ो ए लो,
केमकर जावूँ परदेस बाला जी !
ऊँचा ऊँचा राणे जी रा गोखड़ा ए लो,
नीचे म्हारे पीछोले री पाल, बाला जी !
बादल छाया देश में, हे लोय,
नदियां नीर हिलो हिल रे,
बादल चमके बिजली,
चमक चमक झड़ लाय,
सरवर पानी डे लें गई ए लो,
भीजे म्हारी सालूड़े री कोर बाला जी,
बालो लागे छे म्हारो देसड़ो ए लो,
केमकर जावूँ परदेस बाला जी !

(मुझे मेरा देश प्यारा लगता है। हे प्रीतम, मैं परदेश कैसे जाऊँ ?

ऊँचे ऊँचे राणा जी के झरोखे हैं। हे प्रीतम ! नीचे है मेरे पिछोला का किनारा। देश में बादल छा गए, नदियों में जल हिलोरें ले रहा है, बादलों में बिजली चमकती है, चमक चमक कर झड़ी लगा देती है। मैं सरोवर पर पानी लेने गयी। हे प्रीतम ! मेरे सालू की कोर भीग रही है। इन कारणों से मुझे मेरा देश प्यारा लगता है। हे प्रीतम, मैं परदेश कैसे जाऊँ ?)

लोक गीत की शक्ति उसकी सादगी में है। इसी सादगी के कारण लोक गीत कभी पुराना नहीं पड़ता। जहाँ इसमें पिछली पीढ़ियों की आवाज हम तक पहुँचती है, वहाँ उसमें इतनी लोच रहती है कि उसे आनेवाली पीढ़ियाँ भी झट से अपना लेती हैं।

गढ़वाली लोक गीत में मलेथ गाँव का चित्र कितना भी सीमित क्यों न हो, इसमें पूरे गढ़वाल का चित्र देखा जा सकता है :

कैसो न भंडारी तेरा मलेथ ?
देखो मालो ऐन सैवो मेरा मलेथ
ढलकदी गूल मेरा मलेथ
गाऊँ मूड़को घर मेरा मलेथ
पालंगा की बाड़ी मेरा मलेथ
लासण की क्यारी मेरा मलेथ
गाइयों को गोठ्यार मेरा मलेथ
भैंसों की खुरीक मेरा मलेथ
बाँदू का लड़ाका मेरा मलेथ
बैंखू का ढसाका मेरा मलेथ

(कैसा है ओ भंडारी, तेरा मलेथ ? देखने में भला लगता है, साहबो

मेरा मलेथ । ढलकती जलधारा मेरा मलेथ । गाँव की ढाल में है मेरा घर...मेरा मलेथ । पालक की बाड़ी...मेरा मलेथ । लहसन की क्यारी... मेरा मलेथ । गउओं की गोठ...मेरा मलेथ। भैंसों की भीड़...मेरा मलेथ। युवतियों का झुंड...मेरा मलेथ। जवानों का धक्कम धक्का...मेरा मलेथ ।)

लोक गीतों में जहाँ प्रकृति से सौ सौ प्रार्थनाएँ की गयी हैं, वहाँ मनुष्य का यह विश्वास भी उभरता है कि वह कठिनाइयों से घबरा कर हार नहीं मानता ।

लोक गीतों में पशु-पक्षियों के साथ भी गहरी सहानुभूति रहती है। बंगाल के एक लोक गीत में घायल हिरनी शिकारी को भाई कहकर पुकारती है ।

हरिणी घास खाय, शिकारी तामशा
चाय,
आचम्बिले मारिलो शेलेर घा, तखन
हरिणी बले रे,
की शेल मारिलो भाई तीरन्दाज रे ।

(हिरनी घास चर रही है, शिकारी निशाना बाँध रहा है । अचानक उसने उसे तीर से घायल कर दिया । हिरनी कहती है, 'क्या तीर से घायल किया है तुमने, ओ भाई तीरन्दाज !')

यह गीत बहुत लम्बा है । कभी हिरनी

सोचती है कि मेरा मांस इतना मजेदार है कि मनुष्य मेरा वैरी हो गया। कभी वह कहती है कि मुझे अपने मरने का तो शोक नहीं, लेकिन मुझे यह चिन्ता सता रही है कि मेरे दूध पीते बच्चे की किसी को परवाह न होगी। अंत में वह शिकारी के बजाय उस लुहार को श्राप देती है जिसने उसे घायल करने के लिये तीखा तीर बनाया।

हिरनी के दुःख में भी आदमी ने एक तरह से अपना ही दुःख गा सुनाया है।

लोक गीतों में तीखे ताने भी मिलेंगे और खुलकर मजाक भी। नीचे का उड़िया लोक गीत विवाह के अवसर पर जब गाया जाता है, तब खासा रंग जमता है :—

पिपड़ी बापुड़ा, बिभा छोई गला,
गगने उड़ुछि धूलि,
बिलर कंकड़ा मर्दल बाजाये,
बेंगो देले हुलुहुलि।

(बेचारी चींटी का विवाह हो गया। आकाश में धूल उड़ रही है। खेत के केकड़े ने ढोल बजाया और मेढक ने हुलुहुलि की आवाज निकाली।)

शुभ अवसरों पर स्त्रियों के मुंह से निकलने वाली जय ध्वनि को उड़ीसा में 'हुलुहुलि' कहते हैं। उड़िया लोक गीत में स्त्रियों की 'हुलुहुलि' की मेढक की आवाज से तुलना करते हुए अच्छा व्यंग किया गया है।

जहाँ लोक गीत हैं, समझो वहाँ जीवन से प्यार है। जाड़ों की रात में अलाव के गिर्द बैठे हुए बचपन के साथी किसी जाने पहचाने गीत में सोए हुए सपने जगाते हैं। चाँदनी रातों में बचपन की सखियां चूड़ियों की

१६

भारत की लोक कथाएं

भारत की कोई बोली ऐसी नहीं, जिसमें लोक कथाएँ यानी घरेलू कहानियाँ न हों। बचपन ही से बालक की शिक्षा में ये कहानियाँ हाथ बँटाती हैं। कोई घर ऐसा न होगा, जहाँ बालक दादी से कहानी सुनने को न मचलते हों।

गांव की चौपाल में या अलाव के पास कहानी सुनाने वाले के चारों ओर बूढ़े और जवान सब जमा हो जाते हैं। कहानी सुनाते समय यह ज़रूरी

समझा जाता है कि सुनने वालों में से एक हुँकारी भरता जाए। इसमें जरा सुस्ती हुई नहीं कि कहानी सुनाने वाला कहानी को बीच में रोक कर कह उठता है, 'क्यों, सो रहे हो ?' इससे हुंकारी भरने वाला फिर सावधान होकर अपना काम करने लगता है।

लोक कथाओं में लोगों के आचार विचार की झलक दिखाई दे जाती है। समाज का चित्र नजर आ जाता है। रीति रिवाज और धार्मिक विश्वासों पर प्रकाश पड़ता है। किसी युग की सभ्यता और संस्कृति की पहचान के लिए उस युग की लोक कथाओं से बड़ी सहायता मिलती है।

लोक कथाओं में तर्क या बहस का कुछ काम नहीं, और न किसी बात को असम्भव या अनहोनी कहा जा सकता है। उनमें किसी के नाम नहीं रहते, रहते भी हैं तो काम चलाऊ। जगहों के नाम तो और भी बेपता होते हैं। पशु पक्षी ही नहीं, पहाड़ और ईंट पत्थर भी बातें करते हैं। लोक कथाओं की इन बातों पर कभी संदेह नहीं किया जाता। लकड़ी का घोड़ा आकाश में दौड़ लगाता है। जादू के जोर से रातों रात महल तैयार हो जाते हैं। साधु की झोली या किसी अंगूठी की शक्ति से किसी को मनचाही चीज मिल जाती है। दीवार पर बने हुए चित्र भी हिलते डुलते हैं।

सीधे कहो तो बात का कुछ भी असर न हो। मगर लोक कथाओं के

सहारे उसमें चमत्कार नज़र आने लगता है। बीच बीच में दोहों या गीत के बोलों से भी सहायता ली जाती है।

नागाओं की एक लोक कथा है। एक सांभर हिरन और एक मछली में दोस्ती हो गई। सांभर ने मछली से कहा, 'जब शिकारी कुत्ते मेरा पीछा करेंगे, मैं नदी के किनारे किनारे भागूंगा। उस समय तुम पानी उछाल उछाल कर मेरे पैरों के निशान मिटाती रहना।' मछली ने भी अपने बचाव के लिए सांभर से प्रार्थना की, 'तुम मनुष्य को जंगल से वह जहरीला बेल तोड़ कर लाने से रोकना जिससे वह मुझे पकड़ता है।' उसी समय से सांभर जब देखो, अपने सींगों से उस जहरीली बेल को खोदता दिखाई देता है।

इस तरह की बहुत सी कहानियां आदिवासी जातियों में मिलती हैं। उनमें किसी न किसी पशु पक्षी के स्वभाव का कोई न कोई कारण खोज निकालने का यत्न किया गया है।
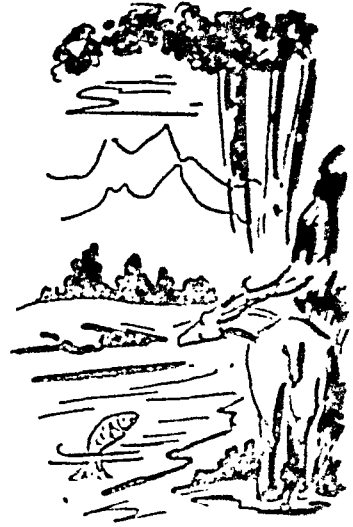
लोक कथाओं का जन्म मनोरंजन की इच्छा से हुआ होगा। समय बिताने के लिए कहानी की मांग स्वाभाविक है। पर गहरी समझ की बातें भी इन कहानियों में काफ़ी होती हैं। व्रतों और पूजा पाठ के साथ अनेक कहानियां जुड़ी हैं। बंगाल की लोक कथाओं का बहुत बड़ा भाग व्रत-कथाओं के रूप में ही फूला फला है। हमारे देश के दूसरे भागों में भी व्रत-कथाएं किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती हैं। उनमें बहुत सी कहानियां ऐसी हैं, जो न पौराणिक हैं और न धार्मिक। वे बस घरेलू

कहानियां हैं ।

लोक कथाओं का नायक कभी कभी कोई ऐतिहासिक पुरुष भी हो सकता है । पंजाब में राजा रसालू की कहानियां मशहूर हैं । इन कहानियों की सब घटनाएं कल्पना की उड़ान मालूम होती हैं । इसी तरह की कहानियां देश देश में वीर पुरुषों के साथ जुड़ कर वीर-गाथाओं के रूप में मिलती हैं । चरित्र का बखान ही इन कहानियों की विशेषता है ।

शब्दों के नए नए प्रयोग भी लोक कथाओं में कम नहीं मिलते । बुन्देलखंडी लोक कथाओं में वीर रस की गाथा के लिए 'कड़खा' शब्द बहुत चालू है । 'कड़खा' गाने वाले को 'कड़खेत' कहते हैं । सूरज की धूप से बचने के लिए जो छत्र लगाया जाता है उसे 'सूरजमुखी' कहा गया है । एक साथ जलने वाली दो बत्तियों की मशाल के लिए बुन्देलखंडी लोक कथा में 'दुशाखा' शब्द मिलता है । 'परिधान' का बदला हुआ रूप है 'परदनी', जो धोती के लिए बरता जाता हैं । रुपए रखने की थैली 'बसनी' है ।

इस तरह लोक कथाएं भाषा के विकास में भी सहायक होती हैं । नित नए शब्द हमारे परिचित मित्रों की तरह सामने आते हैं और उनके साथ हम घुल मिल जाते हैं ।

भारत कहानियों का देश है । 'वृहत कथा', 'कथा सरित्सागर', 'पंच-तंत्र', और 'जातक' जैसे कथा-संग्रह हमारे यहाँ बहुत हैं । हमारे इन पुराने संग्रहों की बहुत सी कहानियां थोड़े बहुत हेर फेर के साथ बाहर भी चली गई हैं । घूमते फिरते खानाबदोश लोगों ने एक देश की कहानियां दूसरे देश में पहुंचाई । समुद्र के रास्ते व्यापार करने वाले व्यापारी भी कहानियों को फ़ैलाते रहे । इसी तरह जब एक देश की सेना दूसरे देश पर धावा करती

थी, तो लड़ने वाले सिपाही कहानियों के लेन देन में बिचवानी का काम करते थे।

इसीलिए दुनिया की लोक-कथाओं में बड़ी समानता पाई जाती है। एक ही कहानी थोड़े बहुत हेर फेर के साथ बहुत से देशों में सुनने में आती है। कभी कभी तो अन्तर इतना कम नजर आता है कि सुनने वाला चकित रह जाता है कि एक ही कहानी किस तरह जगह जगह घूमती रही।

यह बात कहानी के हर रसिया को अचरज में डाल देती है। लेकिन इसका अनुभव बहुत कम लोगों को हो पाता है। बहुत से लोग तो यही समझते हैं कि जो कहानी उनके सामने सुनाई जा रही है, वह उन्हीं के गांव की चीज़ है और दूसरे किसी गांव या देश तक उस कहानी की पहुंच नहीं।

भारत की लोक-कथाओं के अधिकतर संग्रह पहले अंग्रेजी में छपे। इस बारे में अनेक युरोपीय विद्वानों के काम भुलाए नहीं जा सकते। हाल ही में डाक्टर वेरियर एलविन ने महाकोशल की लोक कथाओं का एक संग्रह बड़ी मेहनत से तैयार किया है। डाक्टर एलविन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में बताया है कि अब तक भारत, लंका, तिब्बत, वर्मा और मलाया में कुल मिला कर कोई तीन हजार घरेलू कहानियां छप चुकी हैं।

लोक-कथाओं के जमा करने का काम सन् १८६६ ई० में प्रारम्भ हुआ और उस साल मध्य भारत की आदिम जातियों में प्रचलित लोक-कथाओं को उनके अंग्रेजी अनुवाद के साथ छपवाया गया। उसके बाद

दक्खिन भारत, बंगाल और पंजाब की लोक-कथाएँ प्रकाशित हुईं। कुछ साल बाद संथाली-कथाएँ और काश्मीरी कहानियाँ निकलीं। बीसवीं सदी के आरम्भ में शिमला की ग्रामीण कहानियाँ और पंजाब की प्रेम कहानियाँ छपीं। पहले महायुद्ध से पहले जो लोक कथाएँ प्रकाशित हुईं, उनमें 'बंगाल की घरेलू कहानियां' और शोभना देवी का 'पूरब के मोती' खास हैं। उसके बाद शरत्चन्द्र राय ने छोटा नागपुर की मुंडा, उरांव, खेड़िया आदि आदिम जातियों की कहानियाँ निकालीं।

हिन्दी में लोक-कथाओं का सब से पहला संग्रह है 'बुन्देलखंड की ग्राम कहानियां', जिसके लेखक हैं शिव सहाय चतुर्वेदी। इसमें सत्ताइस कहानियाँ हैं। यह संग्रह सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था। उसी साल सत्येन्द्र का संग्रह 'ब्रज की लोक कहानियाँ' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में इकतालीस कहानियाँ ब्रज भाषा में ही दी गई हैं। शिव सहाय चतुर्वेदी का बुन्देलखंडी लोक कहानियों का दूसरा संग्रह 'पाषाण नगरी' सन् १९५० में प्रकाशित हुआ। इधर हिन्दी में अलग अलग प्रान्तों की लोक-कथाओं के कई संग्रह निकले हैं।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 'एक था राजा' नाम देकर कहानियाँ लिखीं और इस तरह लोक कथाओं की परम्परा को आगे बढ़ाया। बहुत सी कहानियाँ 'एक था राजा' से शुरू होती हैं। कहानी सुनने वाले यह नहीं पूछते कि राजा का क्या नाम था, उसका राज कहाँ था, और वह कब राज करता था। बच्चा भी दादी से कहानी सुनते समय राजा के नाम, धाम और समय के बारे में कभी कुछ नहीं पूछता। उसे तो कहानी ही से मतलब रहता है।

सकते हैं। जनता की कला और कारीगरी की तरह जनता के गीतों और जनता की कहानियों का मोल हर देश में आज बहुत ऊँचा आंका जा रहा है और इन चीज़ों का आदर बढ़ता जा रहा है। कारण यह है कि उनसे जनता के असली जीवन, उसके विचारों और उसके आदर्शों का ठीक ठीक पता चलता है।

एक लोक कथा

चम्पा का फूल

कहानी सी झूठी नहीं। बात सी मीठी नहीं। न कहने वाले का दोष, न सुनने वाले का दोष। दोष जोड़ने वाले का।

एक था राजा। उसकी थीं सात रानियाँ, पर आल औलाद किसी से न थी। रानियों में छोटी रानी सब से सुन्दर और गम्भीर थी। राजा उसी को सब से अधिक चाहता था। दूसरी रानियाँ छोटी रानी को देख देख कर जलती थीं। राजा को हर समय चिन्ता रहती कि इतना बड़ा राज मेरे बाद कौन भोगेगा। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए।

भगवान् की कृपा, छोटी रानी आधान से हुई। अब राजा फूले न समाते थे। उन्होंने मंत्री को बुलाकर कहा—सारे राज में डौंडी पिटवा दो कि राजा ने राज-भंडार खोल दिया है। जिसका जी चाहे, आए और रुपया-पैसा, कपड़ा-लत्ता, मेवा-मिठाई जो चाहे, झोली भर-भर ले जाए।

महल में हर तरफ खुशियाँ मनाई जाने लगीं। औरतें सोहर और बधावे गातीं, पुरोहित पूजा-पाठ करते। लड़कियाँ बालियाँ कोने कोने घी के दिये जलातीं। सारी राजधानी हँसी-खुशी और धूमधाम में इन्द्रपुरी बनी हुई थी। बड़ी रानियों ने जब यह देखा, तो जलभुन कर कोयला हो गईं। मन ही मन सोचने लगीं, अब क्या किया जाय?

राजा ने छोटी रानी के पास नगाड़ा रखवा दिया और कहा—जब लड़का हो तो इस पर एक चोब मार देना। मैं सब काम छोड़ आ जाऊँगा।

इधर राजा यह कह दरबार में गए, उधर और सब रानियाँ छोटी रानी के रनवास में पहुँचीं और अनजान बनकर उससे पूछने लगीं कि राजा ने यह नगाड़ा क्यों रखवाया है? रानी ने अपने भोलेपन में सब बात बता दी। बड़ी रानियों ने राजा के इस प्रेम पर उसे बधाई दी और कहा—कहो तो जरा आजमा लें?

छोटी ने कहा—हाँ, जरूर।

बड़ी रानियाँ बोलीं—पर राजा से न कहना कि नगाड़ा हमने बजाया था और उन्होंने नगाड़े को जोर जोर से पीटना शुरू किया।

राजा दौड़े-दौड़े महल में आए, तो छोटी रानी ने हँस कर कहा--यों ही देख रही थी, कैसा बजता है।

राजा बोले--ख़ैर, कोई बात नहीं। पर अब यों ही न बजाना।

राजा रनवास से बाहर गए, तो रानियों ने छोटी रानी को तानों से छेद कर रख दिया। "बस मालूम हो गया राजा के प्रेम का हाल। ऐसे समय भी तिनक गए।"

छोटी ने झेंप कर कहा—नहीं, वह मुझ से नाराज़ कभी नहीं हो सकते।

बड़ी बोलीं--अच्छा देखते हैं। यह कह कर वे फिर नगाड़ा बजाने लगीं।

अब तो राजा ने समझा कि सचमुच कुछ हुआ है। पर इस बार

भी वह लज्जित और खिसियाए दरबार वापस आए। लौटते समय वह रानी से कह आए थे, अब तुम नगाड़ा पीट पीट के फाड़ भी दोगी, तो मैं न आऊँगा।

दरबार में बड़ी रानियों के कुछ पक्षपाती भी थे। उन्होंने राजा का क्रोध और बढ़ा दिया और जब तीसरी बार नगाड़ा बजा, तो राजा रनवास की ओर मुंह फेर कर भी न देखा।

छोटी रानी के एक कुमार और एक राजकुमारी हुई। दोनों बच्चे ऐसे सुन्दर जैसे चाँद के टुकड़े।

छोटी रानी ने कहा—तनिक बच्चे मुझे भी दिखाओ।

बड़ी रानियां मटक कर बोलीं—ले, देख ले, तेरे यह मरे हुए चूहे हुए हैं। इन्हें अपनी छाती से लगा ले।

छोटी रानी यह सुनते ही बेहोश हो गई।

अब बड़ी रानियों ने बच्चों को दो हांडियों में बन्द कर दूर कहीं घूरे पर फेंकवा दिया और राजा को सँदेशा भेजा—छोटी रानी की भूल को क्षमा कर दीजिए और अपने बच्चों को आकर देख जाइए।

जब राजा रनवास में आए तो मक्कार रानियों ने राजा के सामने मरे हुए चूहे लाकर रख दिए और कहा—महाराज, यह बात महल के बाहर जाने की नहीं है। छोटी रानी के पेट से ये दो चूहे पैदा हुए हैं।

यह सुनना था कि राजा आग बबूला हो गये। कड़क कर बोले—छोटी रानी को अभी महल से निकलवा दिया जाय।

बड़ी रानियों ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—ऐसा न कीजिए, बात फैल जायगी। और फिर उस बेचारी का दोष भी क्या है? उसे महल में

ही रहने दीजिए। हम उसे कौवा हँकनी बनाएँगी।

राजा ने आज्ञा दी और छोटी रानी को टाट के कपड़े पहना कर

एक फटा बांस हाथ में दे दिया गया। अब वह महल के कौवे हांकती। उसे जौ की एक रोटी खाने को और कुज्जा भर पानी पीने को मिलता।

होनी बलवान। इधर बड़ी रानियों ने हांडियां घूरे पर फेंकवाईं, उधर एक साधु अलख जगाता घूरे के पास से निकला। साधु की नज़र हांडियों पर पड़ी। उसने देखा, फूल जैसे दो बच्चे हांडियों में लेटे पाँव के अँगूठे चूस रहे हैं। साधू ने बच्चों को उठा लिया और उन्हें अपनी कुटिया में ले गया। वहाँ उनकी खूब देख रेख की। बच्चे बड़े हुए और उनकी सुन्दरता और चतुराई की बात रानियों के कान तक पहुँची। वे सोचने लगीं, ऐसा न हो कि भेद खुल जाय। उनको मरवा देना अच्छा है।

तब रानियों ने सलाह करके खोये के पेड़े बनवाए और दो पेड़ों में जहर मिला दिया। चौमक जला कर थाल में रखी और अपनी एक

बूढ़ी कहारिन को देकर कहा—जाओ, ये दो पेड़े साधु के लड़की-लड़के को खिला देना और बाकी का प्रसाद बाँट देना।

साधु ने बच्चों से कह रखा था, कभी किसी की दी हुई चीज बिना मुझे बताए न खाना। पर नादान बच्चे साधु की सीख भूल गए।

बाबा रोज की तरह अलख जगाने निकले, और बच्चे कुटी के सामने आकर खेलने लगे। बूढ़ी कहारिन ने मौक़ा पाकर ज़हर मिले पेड़े दोनों को खिला दिए और बच्चे तड़प तड़प कर मर गए।

बाबा शाम को लौटे, तो देखा कि कोई वैरी चाल चल गया है और फूल से मुखड़े धूल मिट्टी से अटे पड़े हैं। साधु ने यह देखकर सिर पीट लिया। पर अब करता ही क्या? लाचार रो धो कर जब शान्त हुआ तो कुटी के सामने एक गढ़ा खोदा और दोनों को दबा दिया।

जिस जगह कुमार और राजकुमारी दबाए गए थे, वहाँ वर्षा ऋतु में एक आम का पौधा निकला और एक चम्पा का। पल-पल दोनों पौधे बढ़ने लगे। आम के पौधे में ऐसे आम आए कि कभी किसी ने न देखे थे, न सुने थे, और चम्पा के फूलों की सुगन्ध से दूर दूर तक जहान महक उठा।

एक दिन की बात। राजा अपनी रानियों को लिए बाग़ में टहल रहे थे। छोटी रानी टाट के कपड़े पहने, फटा बांस हाथ में लिए दूर खड़ी राजा और रानियों को देख रही थीं। इतने में एक कौवा चम्पा का फूल चोंच में दबाए आया और फूल राजा के ऊपर फेंक दिया। रानियों ने फूल जमीन से उठाया और कहा, "इतना सुन्दर और इतना बड़ा फूल तो आज तक देखने में नहीं आया। इसकी सुगन्ध भी कैसी अच्छी है!"

राजा बोला—हाँ, कैसा मन मोहक फूल है। मैं अभी और मँगवाने

अम्बा की जड़ से आवाज आई--ना बहन चम्पा, ना बहन चम्पा, दस हाथ ऊपर उठ जाओ।

देखते देखते चम्पा का पेड़ इतना ऊँचा हो गया कि सीढ़ी लगाने पर भी मंत्री की पहुँच से दस हाथ ऊपर रहा। मंत्री ने लाख जतन किए, पर एक फूल हाथ न आया। बेचारा थका हारा, अपना सा मुंह लेकर राजा के पास पहुँचा और सब हाल कह सुनाया।

राजा ने कहा--जाओ, जाकर मेरा हाथी लाओ। मैं अभी जाकर फूल लाता हूँ। तुम सब बड़े निकम्मे हो।

राजा हाथी पर बैठ रानियों, सिपाहियों और मंत्री समेत साधू की कुटिया पर पहुँचे। देखा कि चम्पा की डालें फूलों से लदी धरती छू रही हैं और आम के पेड़ पर ऐसे आम लगे हैं मानो पन्ने पुखराज जड़े हों।
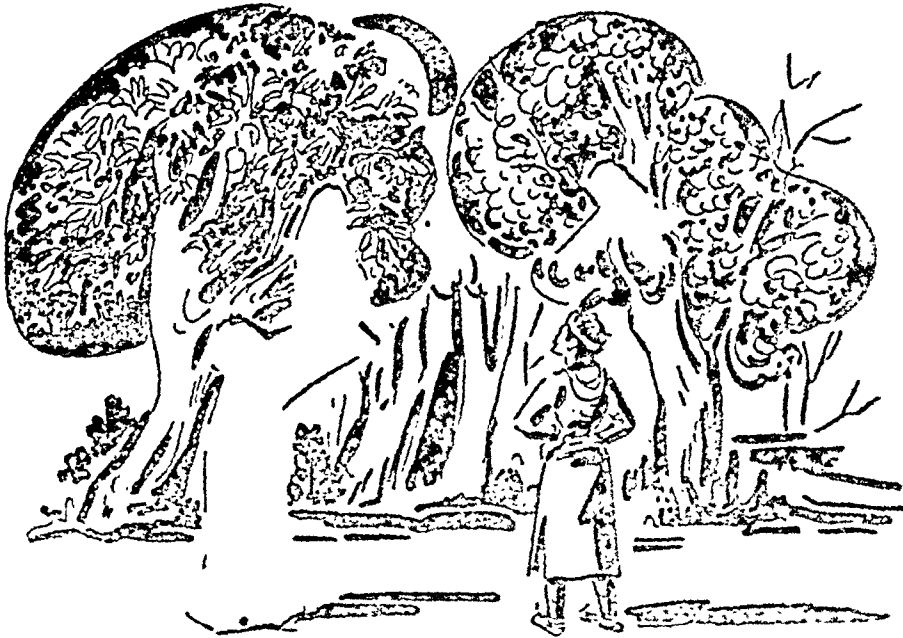
इस बार फिर चम्पा की जड़ से बड़ी प्रेम भरी आवाज़ आई—बीरन भैया, बीरन भैया, ज़रा देखो तो। अब की पिता जी खुद फूल लेने आए हैं। दो हाथ नीचे आ जाऊँ, कि दो हाथ ऊपर उठ जाऊँ ?

अम्बा की जड़ से आवाज़ आई—ना बहन चम्पा, ना बहन चम्पा, दस हाथ ऊपर उठ जाओ।

देखते देखते चम्पा का पेड़ इतना ऊँचा हो गया कि राजा ने लाख जतन किए, पर एक फूल हाथ न आया।

अब चम्पा ने कहा—अपने पिताजी को खाली हाथ लौटाना ठीक नहीं।

भैया ने कहा—अच्छा, तो पिता जी से कहो, उस अभागिन को बुलाएँ जिसे कौवा हँकनी बना रखा है। फिर जितने फूल चाहें तोड़ लें।

राजा यह सब देख दंग रह गए और रानियों का माथा ठनका कि कुछ दाल में काला है।

कौवा हँकनी टाट के कपड़े पहने, हाथ में फटा बाँस लिए एक टूटी सी डोली में बैठ कर आई। माता की डोली देख चम्पा बिलख बिलख कर रोने लगी—बीरन भैया, बीरन भैया, अब तो अपनी माँ का डोला आया है। तुरंत बताओ, दो हाथ नीचे हो जाऊँ ?

अम्बा की जड़ से आवाज़ आई—हाँ बहन चम्पा, हाँ बहन चम्पा, अब देर क्यों ? माँ की गोद में झूल जाओ।

फिर क्या था, चम्पा की डालें छोटी रानी के डोले से लिपट गईं और उसकी गोद में झूलने लगीं। माँ की छाती से दूध की धारें बह निकलीं। अम्बा ने रो रो कर पूरी कहानी माँ को कह सुनाई और

बोला—हमें जल्दी जमीन से निकलवाइए।

राजा ने सिपाहियों से कहा--अभी जमीन खोदो और कुमार और राजकुमारी को बाहर निकालो। सिपाहियों ने ऐसा ही किया और चांद सूरज से जगमगाते कुमार और राजकुमारी दौड़ कर माता पिता से लिपट गए।

राजा ने हुक्म दिया कि बड़ी रानियों को हाथी के पांव से बांध कर सारे नगर में घुमाया जाय और छोटी रानी रनवास में फिर उसी तरह सुख चैन से रहें, जैसे पहले रहती थीं।

भगवान ने जैसे रानी के दिन फेरे, वैसे ही सब के दिन फेरें।

१७

कीड़े-मकोड़े

चींटी

चींटियाँ अपनी बस्तियाँ बना कर रहती हैं। तितली या भुनगे की तरह अकेला रहना उन्हें नहीं भाता। चींटियाँ अपनी बस्ती के सब काम आपस में बांट लेती हैं और मिल जुल कर सब काम पूरा करती हैं।

चींटियाँ बहुत तरह की होती हैं। संसार में उनकी लगभग ३,००० जातियों का पता लग चुका है। उनमें से हर जाति की चींटी के काम अलग अलग होते हैं।

उदाहरण के लिये एक तरह की चींटी किसान चींटी कहलाती है। वह अपनी बस्ती में खेती करके अनाज पैदा करती है और बस्ती के रहनेवालों को खिलाती है।

'दरजी' चींटी पेड़ के पत्ते जोड़ कर उन्हें गेंद की तरह गोल करके उनमें घर बनाती है। 'रानी चींटी' गुलाम और लौंडियाँ पालती है और उनसे तरह तरह के काम लेती है। वह पास की किसी बस्ती से चींटी के बच्चे और अंडे ले आती है। बड़े हो जाने पर वे बस्ती के अलग अलग कामों में लगा दिए जाते हैं।
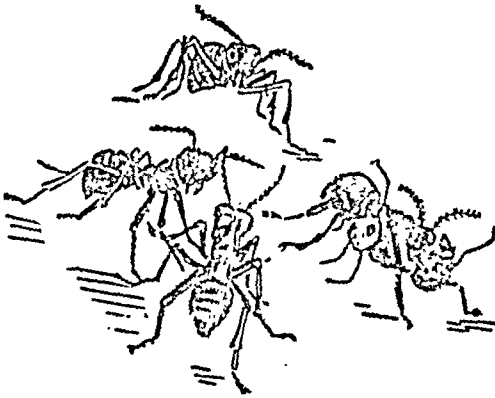
'सिपाही चींटी' को लड़ने के अलावा और कोई काम अच्छा नहीं लगता। वह चींटियों की दूसरी बस्तियों पर हमला करके उन्हें लूटती है और अपनी बस्ती को खाने-पीने की चीजों से भर लेती है।

चींटी की एक जाति का नाम 'कुप्पा चींटी' है। वह अपने पेट में शहद इकट्ठा करती है और
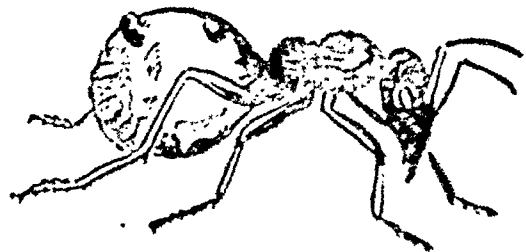
इतना शहद भर लेती है कि फूल कर कुप्पा हो जाती है। इस तरह चींटी की हर जाति की कोई न कोई विशेषता होती है।

चींटी की हर बस्ती में नर, मादा और कमेरी, तीन तरह की चींटियाँ होती हैं। कमेरी नर या मादा नहीं होती। वह जन्म से मौत तक बस्ती की सेवा करती रहती है और बस्ती के लिए अपने प्राण निछावर कर देती है। कमेरी के पंख नहीं होते। नर और मादा चींटियों के पंख होते हैं, जिन्हें वे अपने जीवन में केवल एक बार शादी के अवसर पर काम में लाती हैं।
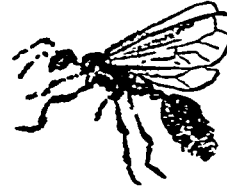
बस्ती की मादा चींटियाँ यों तो जवान होते ही बिना नर के संयोग के अंडे देने लगती हैं, पर शादी से पहले उनके अंडों में से कमेरी या मादा चींटियाँ नहीं पैदा होतीं। उन अंडों में से केवल नर चींटियाँ पैदा होती हैं। कमेरी और मादा चींटी रानी के अंडों में से ही निकलती हैं। नर चींटियाँ बस्ती के किसी काम को हाथ नहीं लगातीं। वे केवल विवाह के दिन के लिए पाल पोस कर बड़ी की जाती हैं।

जब बस्ती में नर और मादा चींटियों की संख्या काफ़ी हो जाती है तो सुहावने मौसम में कोई अच्छा सा दिन ठीक करके चींटियों का विवाह होता है।

विवाह के दिन ये चींटियां पहली और अन्तिम बार उड़ती हैं और हजारों की गिनती में आकाश में फैल जाती हैं। मादा चींटियाँ आगे आगे

जाती हैं, नर उनका पीछा करते हुए दूर दूर तक निकल जाते हैं। जो नर तेजी से उड़ कर किसी मादा को पकड़ लेता है, वही उसका पति बन जाता है।

आकाश में ही उनका जोड़ा मिलता है और उसके बाद तुरन्त ही दोनों नीचे उतर आते हैं। बेचारे नर तो वहीं गिर कर मर जाते है और मादा चींटी जो अब रानी बन जाती है, उतरते ही या तो किसी बसी बसाई बस्ती में चली जाती है या अपनी बस्ती अपने आप बसाती है।

दोनों हालतों में वह अपने पंख नोच डालती है और बस्ती के किसी कमरे में या किसी छोटे से बिल में जाकर कई सप्ताह तक चुपचाप लेटी रहती है। अंडे अन्दर ही अन्दर बढ़ने लगते हैं। उन दिनों चींटी कुछ खाती पीती नहीं है। उसके शरीर की चरबी घुल घुल कर उसका भोजन बनती रहती है।

कई सप्ताह तक चुपचाप पड़ी रहने के बाद रानी अंडे देती है। अंडे देते समय यदि रानी के पास कोई कमेरी या दासी नहीं होती, तो वह सामान

उठाने वाली, खाना खिलाने वाली और अंडे-बच्चों की देख भाल करने वाली चींटी का काम भी अपने आप ही करती है।

रानी अंडा देते ही उसे चाटने लगती है। इस तरह अंडा साफ़ भी हो जाता है और रानी के मुँह की गर्मी भी उसके अन्दर पहुँच जाती है। रानी थोड़ी

थोड़ी देर बाद अंडे को उलटती पलटती रहती है, ताकि वह एक ही करवट पड़ा रहने के कारण ख़राब न हो जाए। कुछ दिन सिकाई, चटाई और लोट पोट के बाद अंडे में से एक नन्ही सी सुंडी निकलती है। रानी उसकी देख भाल करती है और अपने मुंह से उसे भोजन पहुँचाती है।
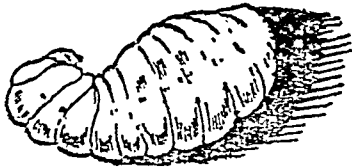
सुंडी बड़ी होकर अपने ऊपर रेशम का ग़िलाफ़ सा चढ़ा लेती है। ग़िलाफ़ चढ़ा कर वह आराम से उसके अन्दर सो जाती है और अंदर ही अंदर बढ़ कर चींटी का रूप धारण कर लेती है। ग़िलाफ़ से बाहर निकलते समय नई चींटी बिलकुल काले रंग की नहीं होती। वह कच्ची कच्ची सी और कुछ भूरे रंग की होती है। उस समय उसकी बनावट भी बहुत साफ़ नहीं होती।

कुछ समय के बाद चींटी के ऊपर से एक बहुत बारीक झिल्ली

उतरती है। रानी बहुत सावधानी से खींच कर उस झिल्ली को उतारती है और अंदर से साफ़ सुथरी काले रंग की चींटी निकल आती है। इस तरह बस्ती में काम करने वाली चींटियों या कमेरियों की गिनती बढ़ जाती है।

अब रानी को बस्ती का कुछ भी काम नहीं करना पड़ता। कमेरियाँ सब काम अपने कंधों पर उठा लेती हैं। वे ही रानी को खाना खिलाती हैं और अंडे-बच्चों की देख भाल करती हैं। चींटियों की बस्ती को पूरी तरह बसने में कई वर्ष लग जाते हैं।

१८

कुछ पेड़

१-आम

आम भारत का ऐसा फल है जिसे सभी पसंद करते हैं। यह देश के हर भाग में मिलता है। उसे गर्म जलवायु पसंद है, इसलिए वह अधिक ऊँचे और ठंडे इलाक़ों में नहीं फलता। जो स्थान बारह महीने नम बने रहते हैं, वहाँ भी फ़सल अच्छी नहीं होती। अच्छी फ़सल के लिए जरूरी है कि बौर के समय वर्षा न हो या पाला न गिरे। अधिक वर्षा से बौर में लसी लग जाती है। लसी एक लेसदार पदार्थ है, जिससे बौर में कीड़े पड़ जाते हैं। ये कीड़े आम के बाग़ों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। ऐसी दशा में

डी० डी० टी० छिड़कना ठीक रहता है। आम के बाग़ लगाने के लिए दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। ज़मीन में पानी अधिक रुकने न पाए, इसका भी प्रबन्ध होना चाहिए।

हमारे देश में कई तरह के आम पाए जाते हैं। उनमें बम्बई, कवमिट्ठा और स्टाकार्ट जातियों के आम बैसाख में आने लगते हैं। दसहरी, लँगड़ा, सफ़ेदा और गोपाल भोग जेठ के अंत में आते हैं। फ़जरी, चौसा, लकीरवाला और हाथीझूल सावन भादों में मिलते हैं। उत्तर भारत में आम बैसाख-जेठ में पकते हैं। दक्खिन भारत में अरकाट, सेलम और बम्बई के आम अच्छे होते हैं। वहाँ के प्रसिद्ध आमों के नाम हैं, दिल पसंद तोतापरी, काला पहाड़, नवाब पसंदी, शकरपारा, पायरी और अलफ़ंजो जिसे हापुस भी कहते हैं। उत्तर भारत में सफ़ेदा, दसहरी, लँगड़ा, चौसा, फ़जरी, सरौली और बम्बई अधिक प्रसिद्ध है।

आम के पेड़ गुठली से भी लगाए जाते हैं और क़लम से भी। गुठली से लगे पौधे बीजू और क़लम से लगे पौधे क़लमी कहलाते हैं। क़लमी की पौध प्रायः बरसात में तैयार की जाती है। बरसात की क़लमें अच्छी रहती हैं। पके हुए फल की गुठली निकाल कर उसे जल्दी ही तीन इंच की गहराई पर गाड़ना चाहिए। आमतौर से तीन सप्ताह के भीतर अंखुवा फूट आता है। बीजू पौधे रोपने या क़लम लगाने के लिए उन्हें क्यारियों में तैयार किया जाता है।

क़लमी पौधे ४० फ़ुट और बीजू ६० फ़ुट की दूरी पर लगाने चाहिए। सूखी या बीमार टहनियों की काट छाँट समय समय पर करते रहना चाहिए। क़लम पौधे में बाँधने के बाद नीचे से टहनी फूट आए, तो उसे

तोड़ देना बहुत ज़रूरी है।

दस बारह बरस के होने पर बीजू और पाँच छः बरस के होने पर क़लमी पौधे फल देने लगते हैं। क़लमी आम पचास साठ साल तक और बीजू आम सौ बरस तक फल देते रहते हैं। कुछ पेड़ हर साल फल देते हैं। अधिकतर पेड़ों से हर तीसरे साल फल मिलते हैं। हर तीसरे साल फल देने वाले पौधों को अगर खाद दी जाए, फल आने के बाद उसी समय सिंचाई की जाए और हर साल एक बार आस पास खुदाई-जुताई कराई जाए, तो हो सकता है कि उनसे हर साल फल मिलने लगें।

आम के पेड़ से फल तो मिलता ही है, आम की गुठली के अंदर की बिजली में चिकनाई (फ़ैट) और माँड (स्टार्च) काफी होता है। इसलिए उसे पीस कर आटे की तरह काम में लाया जाता है। साबुन और काग़ज़ बनाने में भी उसका उपयोग हो सकता है। आम की गुठली दवा के काम में भी आती है। दस्त रोकने के लिए बेल और अदरक के साथ आम की गुठली दी जाती है। खूनी बवासीर में भी वह लाभदायक है।

इधर कुछ साल से आम दूसरे देशों में भी भेजा जाने लगा है। परन्तु जल्द ख़राब हो जाने के कारण अभी हवाई जहाज़ से ही जाता है।

२-बबूल या कीकर

बबूल काँटेदार और सदा हरा रहने वाला पेड़ है। वह पंजाब, उत्तर प्रदेश और बरार में अधिक पाया जाता है। उसकी तीन जातियाँ हैं : गोदी, कौरिया और रामकान्ता। उनकी ऊँचाई अलग अलग होती है। बबूल के फूल पीले और मीठी महक वाले होते हैं। उनकी फलियाँ ३ से ६ इंच तक

लम्बी होती हैं, जिनमें एक एक में ८ से १२ तक बीज होते हैं।

यह पेड़ सूखे जलवायु में ठीक रहता है, पर सिंचाई जरूरी है। बोने के लिए फलियों में से निकले बीज उतने अच्छे नहीं रहते, जितने जानवरों के गोबर में से निकाले हुए बीज। ऐसे बीजों पर पशुओं के पेट के पाचक रसों का अच्छा असर होता है। इससे बीज का छिलका जल्दी गल जाता है और बीज जल्दी उग आता है। छोटे पौधे को काफ़ी रोशनी, तरी और साफ़ भुरभुरी ज़मीन चाहिए। पौधा साल दो साल ही में पाँच छः फ़ुट ऊँचा हो जाता है।

बबूल का लगभग हर हिस्सा हमारे काम आता है। उसकी छाल में टेनीन नामक एक चीज़ होती है, जो चमड़ा पकाने के काम आती है। बबूल की छाल से कमाया हुआ चमड़ा मज़बूत होता है। भारी चमड़े को पकाने के लिए भी बबूल अच्छा रहता है।

हरी फलियाँ चारे के काम में आती हैं। उनमें १६ फ़ीसदी प्रोटीन होता है, जिससे जानवरों के रग पुट्ठे बनते हैं।

गोंद निकालने के लिए लोग अधिकतर चैत-वैसाख के महीनों में पेड़ों पर निशान लगाते हैं। नए पेड़ों से एक बरस में एक सेर से भी अधिक गोंद मिल जाता है। पर जैसे जैसे पेड़ की आयु बढ़ती जाती है, गोंद कम होता जाता है। गोंद रंगाई, छपाई, काग़ज़ बनाने और दवाओं में काम आता है।

बबूल की लकड़ी बहुत मजबूत होती है और उसमें घुन नहीं लगता। वह खेती के औजारों में लगाई जाती है। कोल्हू, चरखा, तम्बू की खूँटियाँ, नाव के डाँड आदि बनाने में भी बबूल की लकड़ी काम आती है। कहीं

कहीं बबूल के पेड़ पर लाख का कीड़ा भी पाला जाता है। उसके काँटे मछली पकड़ने के काम आते हैं। उत्तरी भारत में बबूल की हरी पतली टहनियाँ दातून की तरह बरती जाती हैं। बबूल की लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है।

भारत में आजकल दो तरह के बबूल अधिक लगाए जाते हैं। एक देसी बबूल, जो देर में होता है और दूसरा मासकीट नामक बबूल। बबूल लगा लगा कर पानी के कटाव को रोका जा सकता है। जब रेगिस्तान अच्छी भूमि की ओर फैलने लगता है तब बबूल के जंगल लगा कर रेगिस्तान के इस आक्रमण को रोका जा सकता है। देहातों, पहाड़ियों और खुले मैदानों में बबूल लगाकर उस स्थान को सुन्दर भी बनाते हैं।

३-कुडजू

कुडजू एक फलीदार बेल है, जिसकी सूखी और हरी पत्तियाँ जानवर बहुत चाव से खाते हैं। उससे पशुओं के लिए गर्मी और बरसात के दिनों में हरा चारा मिलता है। जाड़े के लिए चारा काट कर रखा जा सकता है। हमारे देश में चारे की कमी है। कुडजू की बेल लगा कर हम यह कमी बहुत कुछ पूरी कर सकते हैं। उसका चारा दूसरे चारों से अच्छा होता है, और वह पैदा भी बहुत होता है। उसके लगाने से मिट्टी का कटना भी रुकता है, और धरती अधिक उपजाऊ हो जाती है।

कुडजू के पत्ते पान के बराबर चौड़े होते हैं। उसकी हर गाँठ से आमतौर पर बरसात में जड़ें निकलती हैं। इसलिए एक वर्ष में हर गाँठ एक नया पौधा बन जाती है। यह बेल चारों तरफ को फैलती है। कभी
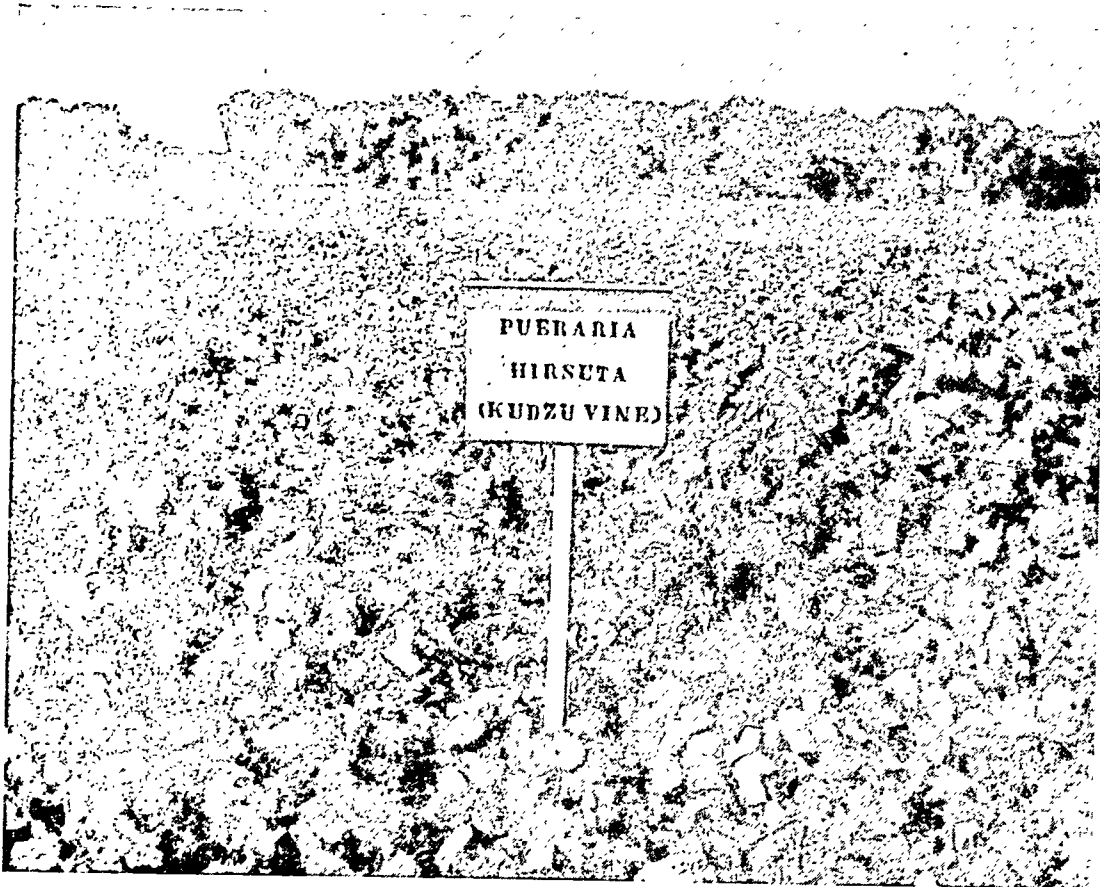
कुडजू का खेत

कभी तो ५० फ़ुट से भी अधिक लम्बी हो जाती है। इसकी जड़ें भी लम्बी और गूदेदार होती हैं। इसलिए गर्मियों में सिंचाई करने की जरूरत नहीं रहती। कुडज़ू पर पाले का कुछ असर होता है, इसलिए जाड़ों में उसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। पर जैसे जैसे गर्मी बढ़ने लगती है, उसमें भी पत्तियाँ निकलने लगती हैं। वसंत ऋतु से नई पत्तियाँ आने लगती हैं।

यह बेल गाँठों से भी लगाई जाती है और बीज से भी। गाँठों से बेल लगाना बहुत आसान है। बोने के लिए गाँठें दिसम्बर के अंत और जनवरी के आरम्भ में खोदी जाती हैं। गाँठें खोद कर उन्हें उसी समय लगाया जा सकता है। अगर उसी समय न लगाया जा सके, तो उन्हें भीगे हुए टाट में लपेट कर रख देते हैं। इस तरह रखने से गाँठें चार पाँच दिन बाद भी बोई जा सकती हैं, और उन्हें लगाने के लिए दूर के स्थानों तक भी भेजा जा सकता है। लगाने के लिए वे ही गाँठें अच्छी रहती हैं, जिनमें दो तीन जड़ें और कुछ अच्छी आँखें हों।

गाँठें जड़ों की नाप के गड्ढे बना कर लगाई जाती हैं। उन्हें दोमट (रेतीली और चिकनी मिली) ज़मीन में एक या आध इंच मोटी मिट्टी की तह से ढँक देते हैं। पर मटियार ज़मीन पर गाँठों को ऊपरी तह में ही लगाते हैं और उनके चारों तरफ़ मिट्टी खूब दाब देते हैं। गाँठें लगाने के बाद तीन चार दिन तक उतना ही पानी देते रहना चाहिए, जिससे ज़मीन ज़रा नम रहे। गाँठें लगाने का सबसे अच्छा समय जनवरी का महीना होता है। लगाने के लगभग एक महीना बाद आँख निकल आती है।

इस बेल के लिए पहले वर्ष सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए इसे ऐसी जगह लगाना चाहिए, जहाँ पानी पहुँच सके। अगर पानी मिलने में कठिनाई हो, तो पहले गमलों या क्यारियों में लगा देना चाहिए। फिर बरसात के शुरू में लगभग २० फ़ुट की दूरी पर लगाया जा सकता है। बोने के बाद पहले दो तीन साल तक उसे न तो काटना चाहिए और न उस पर जानवर चराना चाहिए। बाद में भी तीन बार से अधिक उसे न काटना चाहिए। पहले साल निराई और गुड़ाई करके कतवार निकाल देना चाहिए। दो तीन बरस में वह खूब घनी हो जाती है। एक बार लगाने पर फिर इसे सिंचाई की ज़रूरत नहीं होती। लगाते समय सावधानी रखनी पड़ती है, पर लग जाने पर फिर दो तीन साल तक कोई विशेष मेहनत नहीं पड़ती। पौधे उगते समय उनमें सुपर फ़ास्फ़ेट का खाद देने से लाभ होता है।
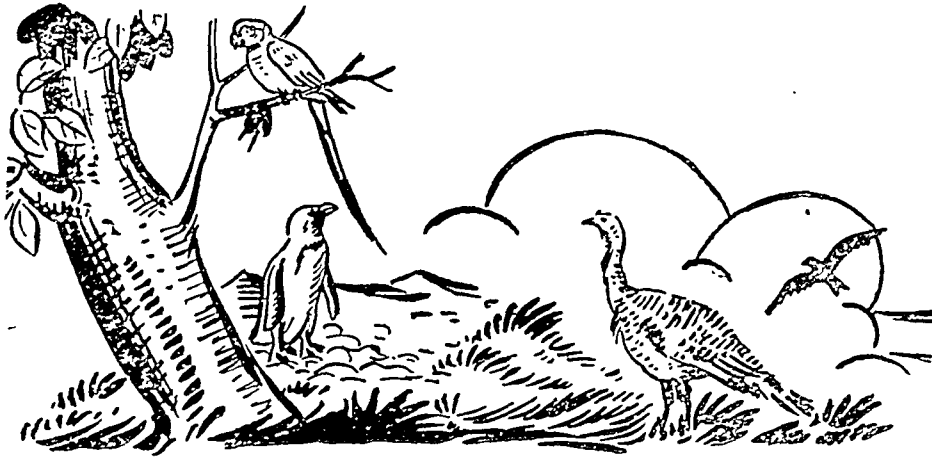
१६

कुछ पक्षी

अभी हम सोकर भी नहीं उठते, कि पक्षियों का चहचहाना, उनके ाठे मीठे बोल और उनके मधुर गीत सवेरा होने की सूचना देते हैं। ाँति भाँति के रंग रूप और स्वभाव वाले इन पक्षियों की हज़ारों जातियाँ । कुछ पक्षी घरों में रहना पसंद करते हैं, और कुछ को खेतों और मैदानों आज़ादी के साथ उड़ना अच्छा लगता है। कुछ पक्षी जंगलों में चाव से हते हैं, और कुछ पहाड़ों की चोटियों पर बसेरा करते हैं।

पक्षियों की अलग अलग जातियों की कुछ बातें आपस में मिलती भी । परन्तु बहुत सी बातें एक दूसरे से अलग होती हैं। इसके अनेक कारण । जैसे—मौसम, जलवायु और उस स्थान की बनावट आदि, जहाँ वे पाए

जाते हैं। पक्षियों का स्वभाव और उनका रहन-सहन भी अधिकतर मौसम और जलवायु के अनुसार ही होता है।

यहाँ हम कुछ पक्षियों की मुख्य मुख्य बातें बता रहे हैं। इनमें से कुछ तो हमारे जाने पहचाने हैं, और कुछ हममें से बहुतों के लिए नए होंगे।

१—कोयल

कोयल रंग-रूप में तो कौवे से मिलती है, पर बोली और स्वभाव में कौवे से बिलकुल अलग है। कौवे की बोली किसी को अच्छी नहीं लगती। कोयल की बोली सब को प्यारी लगती है। इसीलिए हिंदी के एक कवि ने कहा है—

कागा का सों लेत है, कोयल काको देत,
इक बानी के कारने, जग अपना कर लेत।

अर्थात् कौवा किसी से क्या लेता है और कोयल किसी को क्या देती है? पर कोयल अपनी मीठी बोली से सारे संसार को अपना बना लेती है।

कोयल उत्तर भारत में गर्मियों के दिनों में मिलती है। वह उत्तर भारत की सर्दी न सह सकने के कारण, सर्दियों में देश के दक्खिनी भाग में चली जाती है। पर बंगाल में वह सर्दियों में भी रह जाती है, क्योंकि वहाँ सर्दी कम पड़ती है।

गाने में कोयल सब पक्षियों से बढ़ कर है। उसकी कूक किसने नहीं सुनी? गर्मियों में पौ फटने से पहले वह बड़े उत्साह से गाती है। उसकी कूक अमराई में अनोखी मस्ती भर देती है।

कोयल अपने अंडे खुद नहीं सेती। वह कौवों से यह बेगार लेती है।

वह लड़ाई में तो कौवों से जीत नहीं पाती, इसलिए कौवों को धोखा देकर उनके घोंसलों में अपने अंडे रख आती है। कोयल का अंडा, रंग-रूप और वज़न में कौवे के अंडे जैसा नहीं होता। फिर भी कौवा अपने और कोयल के अंडों का अन्तर नहीं पहचान पाता और उन्हें अपने अंडे समझ कर सेता रहता है। कोयल कौवे के घोंसले में जितने अंडे रखती है, कौवे के उतने ही अंडे नष्ट कर देती है।

क़द में कोयल कबूतर से कुछ छोटी होती है। पर पूँछ को मिला कर उसकी लम्बाई सवा फ़ुट से डेढ़ फ़ुट तक होती है। नर बहुत काला होता है, मादा कुछ भूरे रंग की होती है। नर और मादा, दोनों की आँखें लाल होती हैं। सिर सीसे के रंग का होता है। आम कोयल का प्रिय भोजन है।

२—मोर

पक्षियों में सुंदरता के विचार से जो स्थान मोर का है, वह किसी दूसरे पक्षी का नहीं। मोर की सुराहीदार गर्दन, सिर का शाही ताज, भड़कीली पोशाक यानी रंग बिरंगी दुम, और बाँकी चाल दिल में घर कर जाती है। पर उसके पैर भद्दे और खुरदरे होते हैं। उसके पंख भी बस दिखावे के ही होते हैं। उनसे उसे उड़ने में सहायता नहीं मिलती। शरीर

भारी होता है इसलिए अधिक से अधिक वह जमीन से उड़ कर पेड़ पर जा बैठता है। हाँ, भागता बहुत तेज़ है।

मोरनी मोर जैसी सुन्दर नहीं होती। मोर नाचते समय चारों ओर चक्कर लगाता है। उसकी दुम के पंखों में नीले नीले चाँद जैसे गोल निशान होते हैं और नाचते समय उसकी दुम गोल पंखे की तरह फैल जाती है। उस समय मोर बिलकुल मस्त हो जाता है और अपने आसपास के वातावरण को बिलकुल भूल जाता है। अक्सर जब बादल घिर कर गरजने लगते हैं, तो मोर मस्त होकर नाचने लगता है।

सफ़ेद मोर—पच्छिमी भारत में कहीं-कहीं मिलता है

कुछ मोर बिलकुल सफ़ेद रंग के भी होते हैं। नाचते समय वे भी बहुत सुन्दर लगते हैं।

मोर कीड़े-मकोड़े खाता है। घास में पाए जाने वाले कीड़े इसे बहुत

भाते हैं। छोटा मोटा साँप नजर आ जाए तो उसे भी वह चोंच में पकड़ लेता है, और जमीन पर पटक पटक कर मार डालता है। कभी कभी साँप को निगल भी जाता है।

मोर आदमी से बहुत कम डरता है और पालने से हिल भी जाता है। मोरनी साल में एक ही बार अंडे देती है, जो गिनती में दस बारह और कभी कभी बीस पच्चीस तक पहुँच जाते हैं। मुर्गी के नीचे रख कर मोर के अंडों से बच्चे निकाले जा सकते हैं। बच्चे जब तक छोटे होते हैं, तब तक नर और मादा की पहचान करना कठिन होता है। पर एक वर्ष बाद नर की दुम बढ़ने लगती है और फिर थोड़े ही समय के बाद वह एक सुन्दर मोर बन जाता है।

३-पेंगुइन

पेंगुइन एक ऐसा पक्षी है जो हमारे देश में नहीं होता। वह संसार के अनोखे पक्षियों में गिना जाता है। वह पानी के अन्दर ही अन्दर दूर तक तैरता चला जाता है। यह पक्षी अधिकतर बर्फ़ीले देशों के टापुओं में होता है। कुछ टापुओं में तो बहुत अधिक पाया जाता है।

पेंगुइन का रंग काला और सफ़ेद होता है। क़द ढाई तीन फ़ीट तक होता है। नर और मादा के मिलाप का ढंग अनोखा है। नर मादा के सामने छोटे छोटे गोल पत्थर ला कर डालता है।

ज़िसका मतलब यह होता है कि आओ हम दोनों घोंसला बनाएँ। मादा यह निमंत्रण स्वीकार कर लेती है, तो वे दोनों मिलकर घोंसला बनाते हैं। मादा उसमें अंडे देती है, जिसे दोनों मिलकर बारी बारी से पचास दिन तक सेते हैं। पेंगुइन मुर्गी की तरह अंडों पर बैठ कर उन्हें नहीं सेते, बल्कि राज पेंगुइन (पेंगुइन की एक जाति) के पास एक जेब सी होती है जिसमें बारी बारी से अंडा रखते हैं। सर्दी अधिक होने के कारण, पेंगुइन के अधिकतर बच्चे ठिठुर कर मर जाते हैं।

मछली, नदियों की घास, और कीड़े मकोड़े पेंगुइन का भोजन है।

४—तोता

तोते उन पक्षियों में से हैं जो आम तौर से घरों में पाले जाते हैं।

वे कई रंग के होते हैं। कोई लाल रँग का होता है, कोई हरे, कोई सफ़ेद। देखने में सब बहुत सुन्दर लगते हैं। ये पक्षी अधिकतर भारत, अफ्रीका, दक्खिनी अमरीका आदि देशों में पाए जाते हैं।

तोता हरे भरे और फल पत्तों वाले स्थान अधिक पसंद करता है। वह झुंड बना कर रहता है। उसका झुंड पेड़ों के बीच हरी हरी पत्तियों में इस तरह छिप कर बैठ जाता है कि उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

तोते की चोंच आगे से मुड़ी हुई, तेज़ और नुकीली होती है। उसकी टांगें भूरी और पूंछ लम्बी होती है। चोंच का ऊपरी भाग नीचे वाले भाग से बड़ा होता है। आंखें गोल और छोटी होती हैं। क़द कबूतर के बराबर होता है।

तोता रट बहुत जल्दी लेता है। वह मनुष्य और पशुओं की बोली की नक़ल बहुत ही अच्छी तरह करता है। उसकी ज़बान नर्म और चौड़ी होती है। तोते को नहाना बहुत पसंद है। झीलों और तालाबों की तलाश में वह दूर दूर निकल जाता है और उनमें घंटों नहाया करता है।

तोता पाल कर चाहे उसे सोने का निवाला खिलाओ, मगर उसे पिंजरे से निकलने का थोड़ा सा अवसर भी मिले और उसके पंखों में उड़ने की ताक़त हो, तो वह उसी समय बंदी का जीवन छोड़ कर स्वतंत्रता की हवा में उड़ जाता है।

५–पीरू

पीरू असल में अफ्रीका का वासी है। वह झुंड बनाकर रहना पसंद करता है। खतरे के समय उसमें अधिक दूर तक उड़ने की शक्ति नहीं होती। पर वह भागता बहुत तेजी से है।

पीरू बहुत लजीला होता है और एकांत पसंद करता है। उसे बाग़ों और खेतों में घूमना फिरना भी बहुत अच्छा लगता है। पीरू शोर बहुत मचाता है।

क्रोध की दशा में नर दूसरे पक्षियों, जैसे मुर्ग़ियों, बत्तखों आदि, को बहुत हानि पहुँचाते हैं और अपनी कड़ी चोंच से उन्हें खूब ठोंगे मारते हैं।
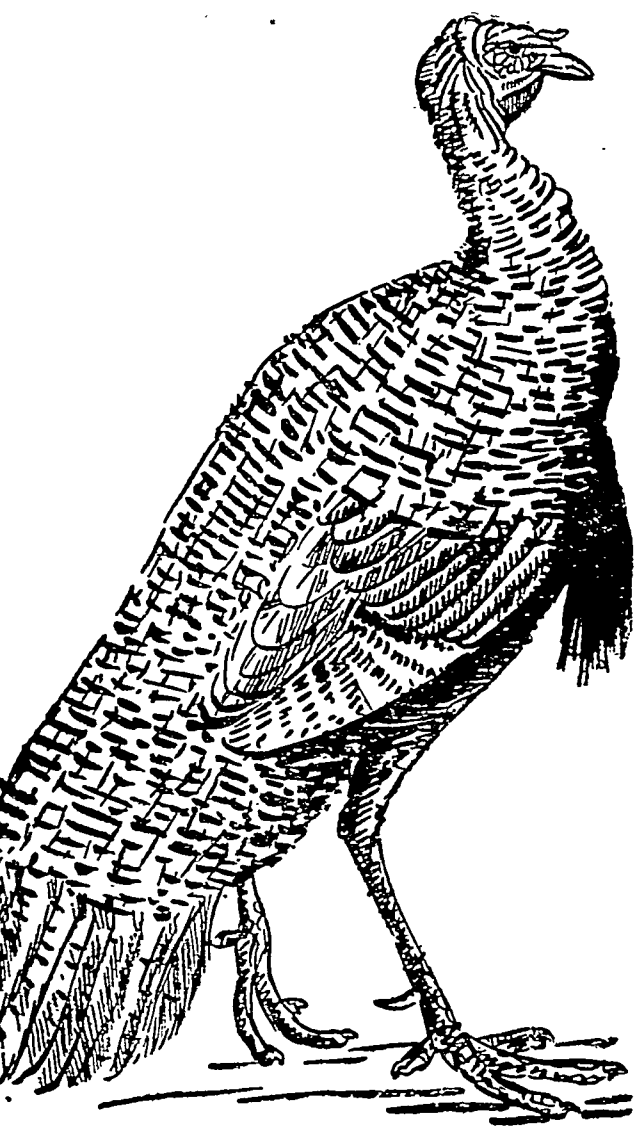
पीरू इतना बड़ा नहीं होता जितना देखने में मालूम होता है। इसका कारण यह है कि उसके पंख बहुत खुले हुए और ढीले होते हैं। नर और मादा में बहुत समानता होती है, इसलिए उन्हें पहचानना भी कठिन होता है। नर की क़लग़ी मादा की क़लग़ी से ऊँची होती है और उसकी गर्दन के नीचे का मांस नीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है। मादा की गर्दन के नीचे का मांस बिलकुल लाल और नर के मुक़ाबले में कम लम्बा होता है।

पीरू का रंग अधिकतर भूरा होता है। उसके पूरे शरीर पर सफ़ेद सफ़ेद धब्बे होते हैं। पीरू की जाति बिलकुल सफ़ेद रंग की भी होती है। वे देखने में अधिक सुन्दर होते हैं। इसके अलावा काले और चितकबरे रंग के पीरू भी होते हैं।

पीरू के अंडों को मुर्ग़ियों के नीचे रख कर बच्चे निकलवाए जा सकते हैं। किसानों के लिए पीरू पालना बहुत लाभदायक है। वह फ़सल को हानि पहुंचाने वाले सब कीड़े खा जाता है।

पीरू के एक नर के साथ दो मादा मिलानी चाहिए। मादा साल में

७० से १०० तक अंडे देती है। अंडों से २६ दिन में बच्चे निकलते हैं।

यह पक्षी बहुत सहनशील होता है। उस पर गर्मी और सर्दी का कोई असर नहीं पड़ता। दूसरी ओर पीरू के चूजे बहुत कोमल स्वभाव के होते हैं। इसलिए उनके लालन पालन में बहुत सावधानी से काम लेना पड़ता है।
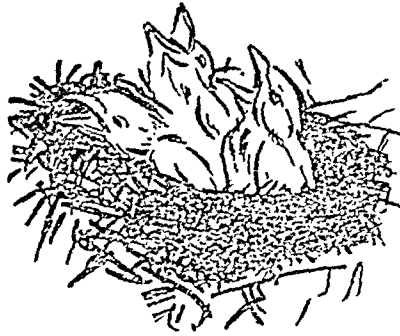
1010
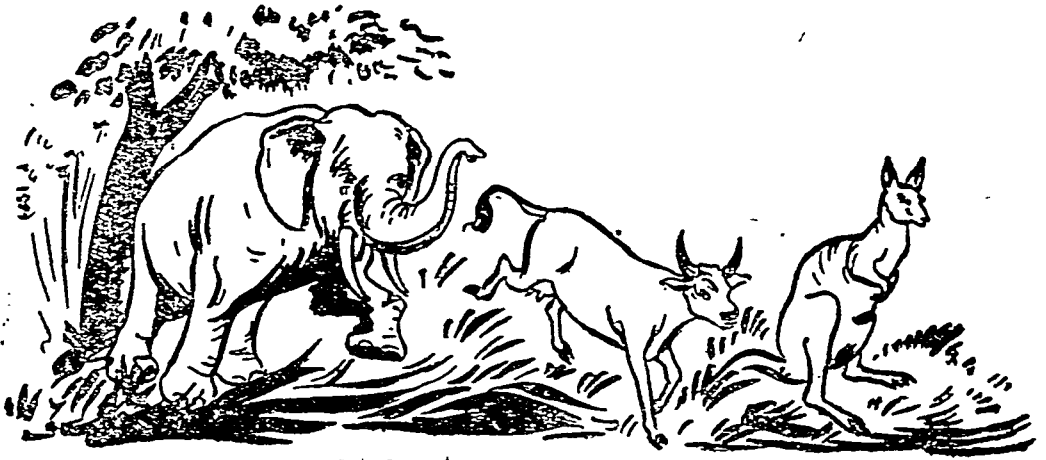
२०

कुछ पशु

मनुष्य और पशुओं का सम्बन्ध हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है। आरम्भ में मनुष्य जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरता था। धीरे धीरे वह पशुओं को साधने और पालने लगा। इस तरह उसे इन पशुओं से नित नए लाभ होने लगे। मनुष्य का धन बनने का गौरव पहले पहल पशुओं को ही मिला। इतना ही नहीं, पशु बड़े काम के भी होते हैं। यही कारण है कि उनमें से कुछ देवता तक मान लिए गए।

मनुष्य ने जैसे जैसे सभ्यता की सीढ़ियाँ पार कीं, वैसे वैसे प्रकृति पर उसका अधिकार भी बढ़ता गया। धीरे धीरे उसने पशुओं की सहायता से अपना जीवन सुंदर और सुखी बनाया और अपने लिए तरह तरह की

सुविधाएँ जुटाईं। दूध, घी, जूते, ऊनी कपड़े, ये सब पशुओं की ही देन हैं। हमारी खेती में भी पशुओं का बड़ा हाथ है। बैल और घोड़े खेत जोतने के काम आते हैं।

पशुओं को हम इससे भी अधिक लाभदायक बना सकते हैं। इसके लिए हमें पशुओं की अधिक से अधिक जानकारी होनी चाहिए और उनकी उचित देख भाल करनी चाहिए।

१—ज़ेब्रा

जेब्रा वैसे तो घोड़े की जाति का पशु है, पर उसका रूप और स्वभाव घोड़े से बिलकुल भिन्न है। जेब्रा बहुत ही सुंदर पशु है। अब तक मनुष्य उसे पूरी तरह वश में नहीं कर सका, इसीलिए उसे पाल कर वह उससे लाभ भी नहीं उठा सका।
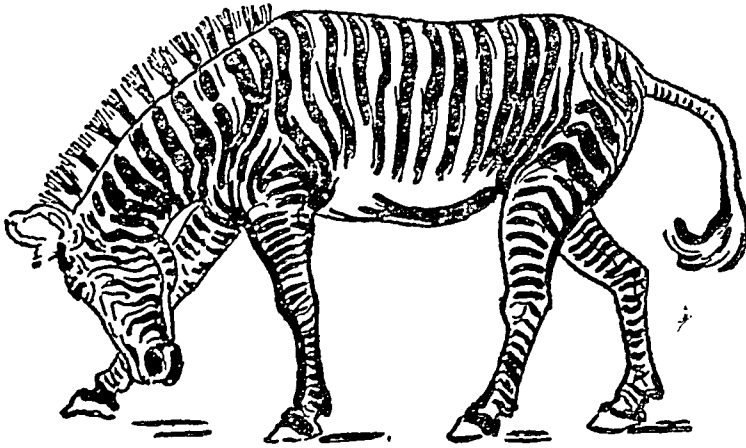
जेब्रा अफ्रीका में पाया जाता है। उसकी तीन जातियाँ हैं।

१. पहाड़ी जेब्रा : उसके सफ़ेद शरीर पर काले रंग की धारियाँ होतीं

हैं। इस जाति का ज़ेब्रा सब से सुंदर होता है। उसका क़द लगभग चार फ़ीट होता है। वह पहाड़ों पर रहता और बहुत तेज़ दौड़ता है।

२. बरचल का ज़ेब्रा : इस जाति के ज़ेब्रे सफ़ेद, भूरे और हल्के पीले रंग के होते हैं। वे पहाड़ी ज़ेब्रे से कुछ बड़े और मोटे होते हैं।

३. ग्रेवी का ज़ेब्रा : इस जाति के ज़ेब्रे घने जंगलों में रहते हैं और मैदान में निकलना बहुत कम पसंद करते हैं। वे शरीर की बनावट में पहाड़ी ज़ेब्रे जैसे ही होते हैं, पर उनके शरीर की धारियाँ पतली और गिनती में इतनी अधिक होती हैं कि लगभग टापों तक साफ़ दिखाई देती हैं।

तीनों जातियों के ज़ेब्रे छोटे छोटे झुंड बना कर रहते हैं। वे बहुत दूर तक की चीज़ देख सकते हैं, इसीलिए मनुष्य के पास पहुँचने से पहले ही भाग जाते हैं और उन्हें पकड़ना बहुत कठिन होता है। ज़ेब्रों के झुंड दिन भर धूप में फिरते रहते हैं। इससे उन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता। पेड़ों की छाया में तो वे बहुत ही कम बैठते हैं।

झुंड में अधिकतर एक ही नर होता है और बाकी सब मादा होती हैं। अगर किसी समय कोई दूसरा पशु झुंड की मादा को मार डालता है, तो झुंड का नर किसी दूसरे झुंड की मादा अपने झुंड में ज़बरदस्ती मिलाना चाहता है। इस पर नरों में बड़ी भयानक लड़ाइयाँ होती हैं।

पशुओं के शिकार में ज़ेब्रे बहुत रुकावट डालते हैं। मनुष्य को देखते ही वे शोर मचाने लगते हैं, जिससे सारे पशु सावधान हो जाते हैं।

ज़ेब्रे के स्वभाव में कोई ऐसी बात नहीं कि उसे पाला न जा सके। पर उसे सिखाने-सधाने में बहुत कठिनाइयाँ सामने आती हैं, क्योंकि वह बहुत कटखना होता है।

९—कँगारू

कँगारू अधिकतर आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। उसकी पिछली टाँगें लम्वी और मजवूत होती हैं, पर अगली कमजोर और छोटी होती हैं। देखने में उसकी टाँगें अनमेल सी लगती हैं।

कँगारू के शरीर की पूरी ताक़त उसके पिछले भाग में होती है। शरीर का अगला भाग वहुत कमज़ोर होता है। उसकी दुम लम्बी और मोटी होती है। बैठते समय वह पिछली टाँगों को मोड़ कर दुम का सहारा लेता है और तिपाई सी बना कर बैठ जाता है। कँगारू का सिर छोटा और चेहरा लम्बोतरा होता है। उसे किसी तरह का डर नहीं होता। वह प्रायः अपनी पिछली दो टाँगों से चलता है, पर कभी कभी चारों से भी चलता है; किन्तु इस तरह चलने में उसे आराम नहीं मिलता और उसकी यह चाल देखने में भद्दी जान पड़ती है। कँगारू दौड़ता नहीं। अपनी अगली और पिछली टाँगों की सहायता से वह तेजी से छलाँगें लगाता है। एक छलाँग में वह वीस पच्चीस फ़ीट की दूरी पार कर लेता है। छलांग मार कर नौ दस फ़ीट ऊँची झाड़ी पार कर जाना उसके लिए साधारण सी वात है।

मादा कँगारू के पेट में एक थैली सी होती है। अपने छोटे बच्चों को

वह इसी थैली में रखती है। यदि शत्रु उसका पीछा करता है, तो वह अपने बच्चों को इस थैली में छिपा लेती है और उसी तेज़ी से छलाँगें लगाती रहती है।

कँगारू सब्ज़ियाँ अधिक खाते हैं। वे छोटे छोटे झुंड बनाकर किसी पुराने और अनुभवी नर की सरदारी में रहते हैं। सरदारी के लिए कभी कभी नरों में लड़ाइयाँ भी होती हैं।

अब तक कँगारू की तीस जातियाँ मालूम हो चुकी हैं। इनमें से कुछ तो बड़ी जाति की भेड़ के बराबर होते हैं और कुछ छोटे छोटे चूहों के बराबर।

३—हाथी

प्रकृति ने हाथी को छोड़कर और किसी पशु को सूँड नहीं दी। हाथी की केवल दो जातियाँ हैं। एक तो एशिया का हाथी और दूसरा अफ्रीका का।

अफ्रीका का हाथी क़द में बड़ा और अधिक बलवान होता है। उसकी पीठ बराबर और चौरस होती है। भारत के हाथी की पीठ गोल और बीच में कुछ ऊँची होती है।

सूँड हाथी के शरीर का बहुत ही आवश्यक अंग है। सूँड की लम्बाई छः से आठ फ़ीट तक होती है। हाथी अपनी सूँड को जहाँ से चाहे मोड़ सकता है। सूँड में चालीस हजार के लगभग पुट्ठे होते हैं। हाथी अपनी सूँड पर किसी तरह का घाव सहन नहीं कर सकता। शत्रु का सामना करते समय उसको सबसे अधिक अपनी सूँड ही की रक्षा की चिन्ता रहती है।

शरीर के दूसरे भागों की तुलना में हाथी की आँखें बहुत छोटी होती

है और साथ ही उसकी देखने की शक्ति भी बहुत कम होती है। हाँ, हाथी में सूंघने और याद रखने की शक्ति बहुत होती है। स्वादिष्ट चीजों के सिवा वह साधारण और घटिया चीजों पर ध्यान नहीं देता। गन्ना, केला नारियल और मीठी चीजें वह बड़े चाव से खाता है।

पालतू हाथियों की आयु सौ बरस होती है, पर जंगली हाथी डेढ़ सौ बरस तक जीते हैं। हाथी का बच्चा इक्कीस महीने के बाद पैदा होता है और चालीस बरस की आयु में जवान होता है।

यह कहावत तो सबने सुनी है कि "हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और।" ये दिखाने के दाँत वे हैं जो हाथी की सूँड के दोनों ओर बाहर को निकले होते हैं। हाथी उनसे अपने बचाव का काम लेता है और वे उसकी शोभा बढ़ाते हैं। हाथीदाँत बहुत कीमती होता है। लोग इसकी खोज में लगे रहते हैं। इसीलिए तो कहते हैं कि "हाथी मरने पर भी सवा लाख का।" अफ्रीका के हाथी के दाँत बहुत बड़े, भारी और सुंदर होते हैं। वे ११ फ़ीट तक लम्बे और दो मन तक भारी पाए गए हैं।

लड़ाई और सवारी के लिए मनुष्य बहुत पुराने समय से हाथी को काम में लाता रहा है।

उससे सामान को एक जगह से दूसरी जगह लाने और ले जाने में भी बहुत सहायता मिलती है। लकड़ी के बड़े लट्ठे और पेड़ों के तने जंगलों से काट

कर हाथी द्वारा लाए जाते हैं। पिछली बड़ी लड़ाई में भी हाथियों से बड़े बड़े काम लिए गए। शेर के शिकार में भी प्रायः हाथी को काम में लाया जाता है। पुराने समय में हाथियों की लड़ाइयाँ भी कराई जाती थीं।

हाथीदाँत से भाँति भाँति के गहने, खिलौने और चाकुओं व छुरियों के बेंट या दस्ते बनाए जाते हैं। भारत के कुछ इलाक़ों में हाथी का शिकार करना बंद कर दिया गया है। मैसूर और मद्रास की सीमा पर बंडीपुर और ट्रावनकोर में पेरिआर झील के आसपास सरकार की ओर से हाथियों के लिए सुरक्षित स्थान बनाया गया है, ताकि उनका वंश बढ़ता रहे।

४—भेड़

अब से बहुत पहले जब रुई और कपास का नाम भी न था, तब बकरे, ऊँट और भेड़ ही की खाल से तन ढकने का काम लिया जाता था
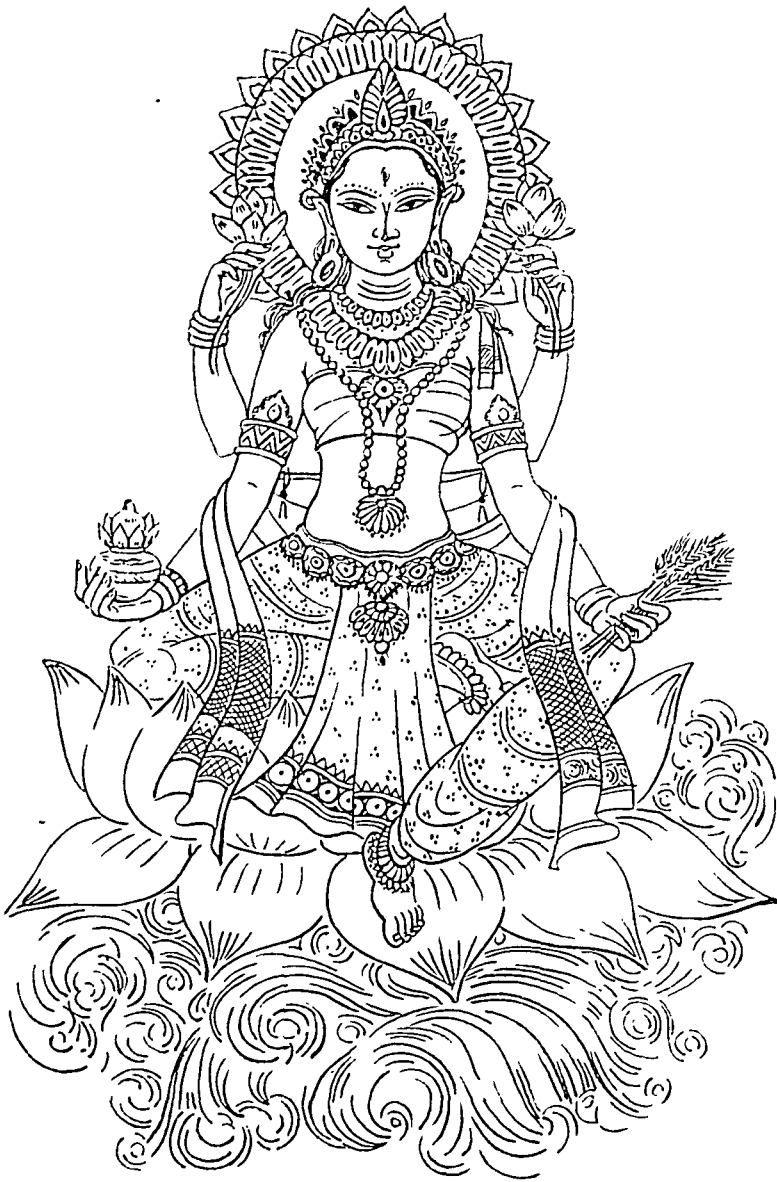
श्रौर उनके वालों श्रौर ऊन से कम्बल बनाए जाते थे। श्राज भी सब पशुश्रों में भेड़ के बाल बहुत उपयोगी हैं। उनकी ऊन से गर्म चादरें श्रौर भाँति भाँति के गर्म कपड़े बनाए जाते हैं।

भारत में भेड़ें बहुत पाली जाती हैं। श्रलग श्रलग जलवायु में श्रलग श्रलग जाति की भेड़ें मिलती है। पहाड़ी भेड़ें मैदानी भेड़ों से बड़ी होती हैं, श्रौर उनकी ऊन भी मुलायम होती है। पहाड़ी इलाक़े भेड़ पालने के लिए बहुत श्रच्छे रहते हैं। पहाड़ी भेड़ की ऊन मैदानी भेड़ की ऊन से ज्यादा गर्म श्रौर श्रच्छी होती है। इसी तरह सींग वाली भेड़ों से बिना सींग वाली भेड़ें श्रच्छी मानी जाती हैं।

स्पेन की मेरीनो भेड़ दुनिया में सबसे श्रच्छी होती है। यह भेड़
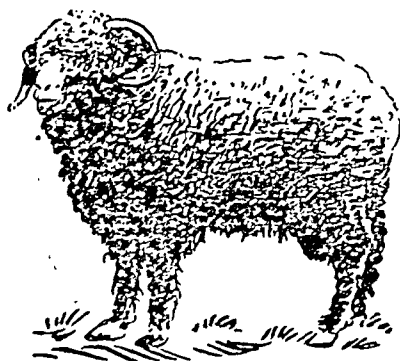
मेरीनो नर
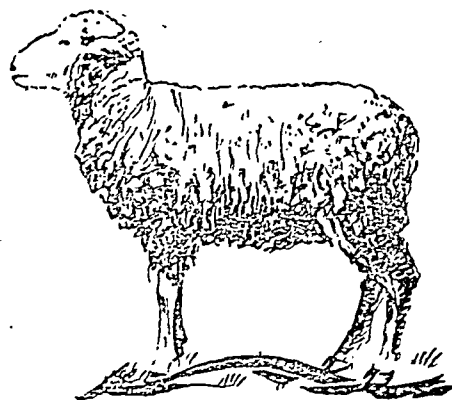
दोगली मेरीनो नस्ल

मामूली भेड़ों से बड़ी श्रौर मोटी ताजी होती है। उसके बदन पर एक इंच लम्बी श्रौर एक इंच चौड़ी जगह पर ४० हज़ार से ४८ हज़ार तक बाल होते हैं।
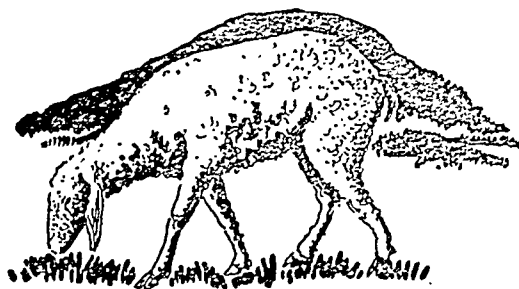
देशी भेड़

उसकी ऊन सब भेड़ों की ऊन से मुलायम होती है।

भेड़ की आयु आठ से नौ बरस तक है। भेड़ें अधिकतर या तो ऊन के लिए पाली जाती हैं या मांस के लिए। इस सम्बन्ध में याद रखना चाहिए कि जो भेड़ ऊन अच्छा देगी, उसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट न होगा। इसलिए ऊन और मांस वाली भेड़ों की जातियाँ अलग अलग होती हैं।

भेड़ गाभिन होने के पाँच महीने बाद एक या दो बच्चे देती है। मादा बच्चे दो तीन दिन पहले पैदा हो जाते हैं और नर बच्चे दो तीन दिन अधिक ले लेते हैं।

भेड़ संसार की हर चीज़ खा लेती है, पर वह सब्जियाँ अधिक चाव से खाती है। इसके अलावा गेहूँ, जौ, ज्वार आदि की बारीक भूसी में खली मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है। ओस के दिनों में भेड़ों को धूप निकलने से पहले बाहर न जाने देना चाहिए। ओस भेड़ों को हानि पहुँचाती है।

भेड़ का दूध गाय के दूध से अधिक गाढ़ा होता है। उसके दूध का पनीर बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। भेड़ के दूध में दूसरे पशुओं के दूध के मुक़ाबले चर्बी का अंश भी अधिक होता है।
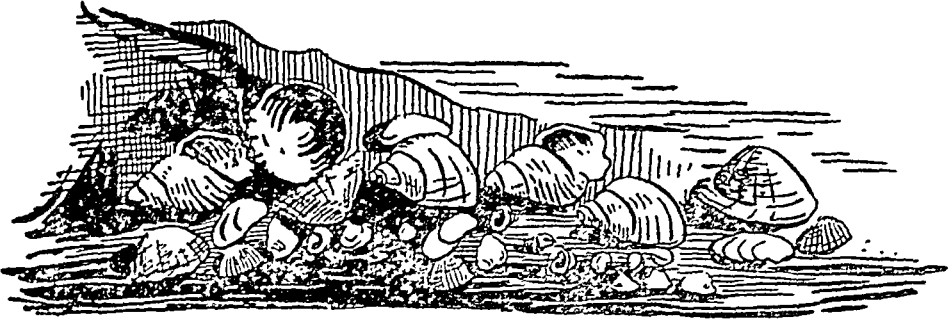
२१

समुद्र का अजायबघर

मोती

हमारी धरती का लगभग दो तिहाई भाग पानी से ढका हुआ है, जिसमें पाँच बड़े बड़े महासागर हिलोरें मारते हैं। इन महासागरों की गहराई का क्या कहना! कहीं कहीं तो ये छः सात मील तक गहरे हैं। इस गहराई का अनुमान कुछ इस प्रकार लगाया जा सकता है कि यदि संसार का सबसे ऊँचा पहाड़ एवरेस्ट समुद्र में डाल दिया जाए, तो वह डूब कर लापता हो जाएगा।

जिस प्रकार धरती पर पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य रहते हैं, उसी प्रकार समुद्रों की दुनिया भी आबाद है। पर समुद्रों में बसने वाले प्राणी और पौधे धरती पर रहने वाले जीवधारियों और पौधों से कहीं

अनोखे होते हैं। उनमें से कुछ का रंग रूप तो ऐसा है कि जीवधारियों को देखकर पौधे होने का और पौधों को देखकर प्राणी होने का संदेह होता है। एनीमोन और मूंगा इसी प्रकार के जीव हैं। ये देखने में बिलकुल फूल जैसे लगते हैं।
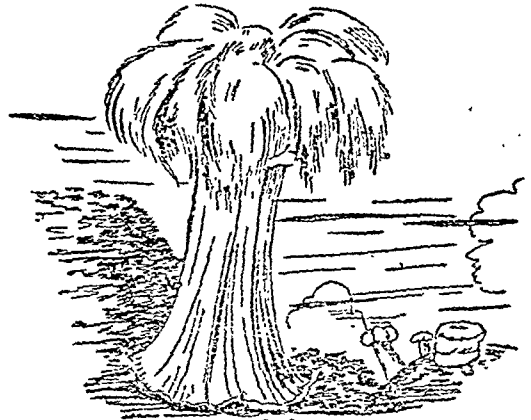
एनीमोन

समुद्र में रहने वाले कुछ जीव मनुष्य के बड़े काम के हैं। सीप और मोती पैदा करने वाले घोंघे की गिनती ऐसे ही जीवों में है। परन्तु मोती वहीं के घोंघों में पाया जाता है, जहाँ घोंघे बहुत अधिक होते हैं। अधिक होने के कारण घोंघों को अपने भोजन के लिए इधर उधर घूमना पड़ता है और इस प्रकार हिलने डुलने से रेत के छोटे छोटे कण उनके शरीर में पहुँच जाते हैं और कष्ट देते हैं। उस कष्ट से बचने के लिए घोंघा उन रेत के कणों के चारों ओर एक लसदार पदार्थ लपेट लेता है जो बाद में कड़ा होकर मोती बन जाता है।
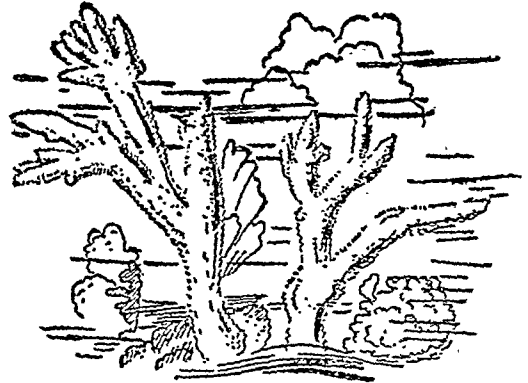
मूंगा
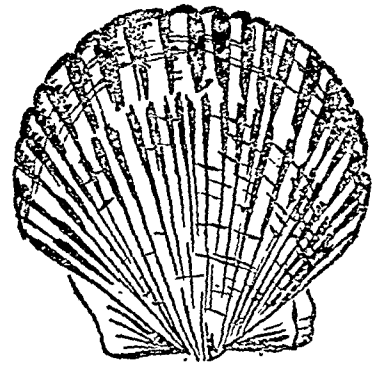
घोंघा

समुद्र से मोती निकालने का काम डुबकी लगाने में चतुर गोताखोर करते हैं।
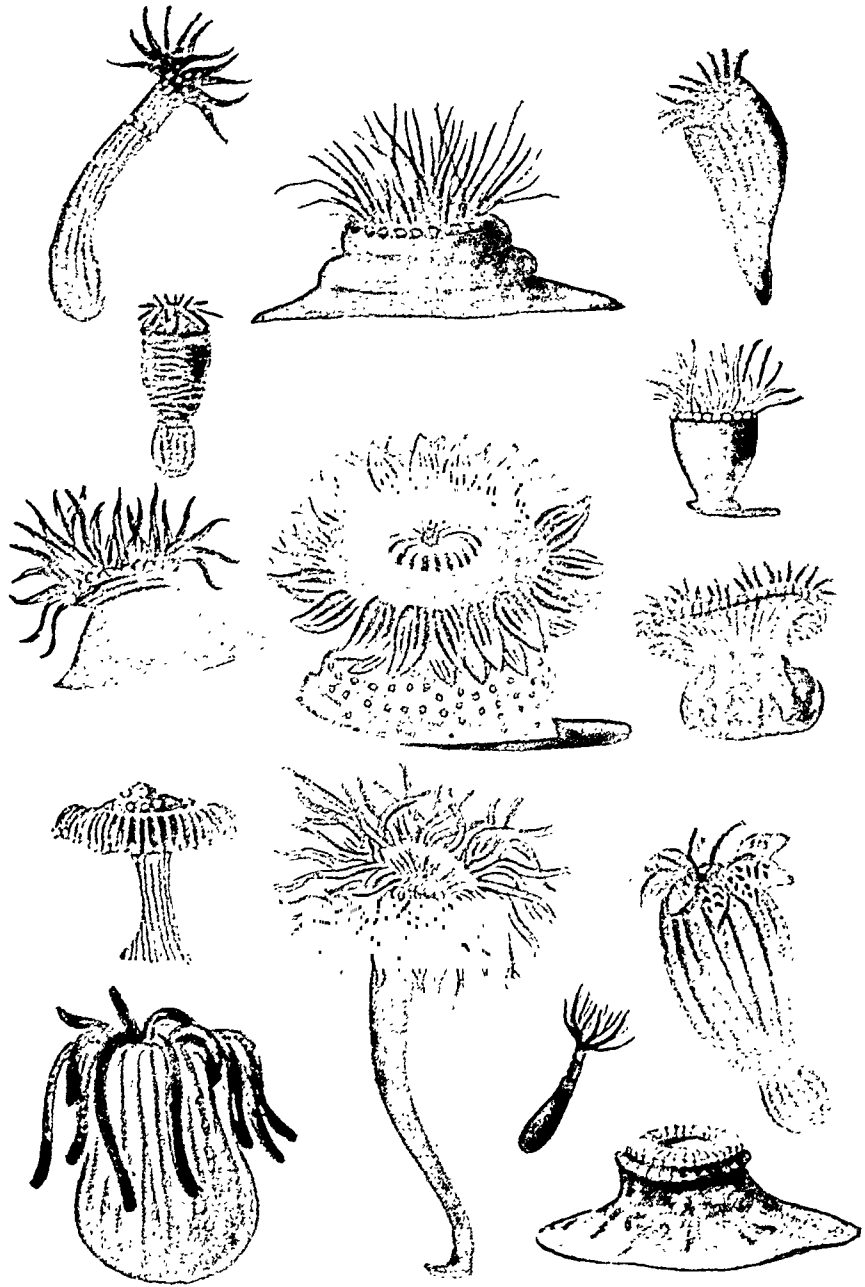
यह कोई फूल या पौधे नहीं समुद्र के जानवर हैं।
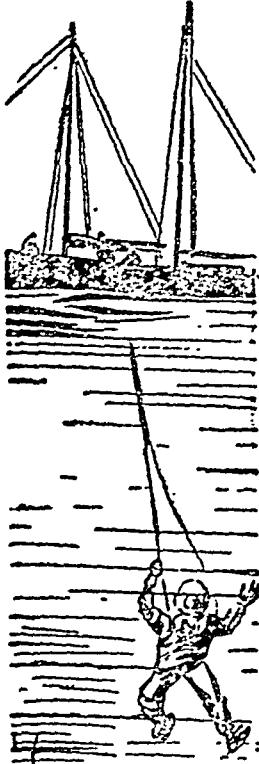
पहले यह काम बहुत खतरनाक था। समुद्र में रहने वाली बड़ी बड़ी मछलियाँ और जानवर किसी भी समय हमला कर सकते थे। पर अब यह काम उतना कठिन नहीं रहा। गोताखोरों के लिए एक विशेष प्रकार का पहनावा निकल चुका है, जो उनकी रक्षा करता है। साथ ही साँस लेने के लिए एक नल के द्वारा ताज़ी हवा भी उस लिबास के भीतर पहुँचती रहती है, इसलिए गोताखोर अब अधिक देर तक समुद्र में रह सकते हैं।

समुद्र का एक नाम रत्नाकर है, जिसका अर्थ हुआ रत्नों का भंडार। मोती उस भंडार का एक रत्न है। ऐसी ऐसी बहुत सी अनोखी और क़ीमती चीज़ें समुद्रों में भरी पड़ी हैं और मिलती रहती हैं।

२२

खेतीबारी का साधारण परिचय

आरम्भ में मनुष्य लगभग दूसरे जानवरों ही की तरह जंगलों में रहता था। वह शिकार करके या जंगल के फल-फूल इकट्ठे करके अपना पेट भरता था। संसार के पुराने इतिहास की खोज करने वालों का कहना है कि मनुष्य शिकारी जीवन के बाद चरवाहा बना और फिर धीरे धीरे आगे बढ़कर उसने खेतीबारी शुरू की। बहुत से लोगों का विचार है कि पेट की आग ने आदमी को खेती करने के लिए मजबूर किया।

एक लेखक का कहना है कि खेतीबारी के विकास का सेहरा जंगली सुअरों के सिर है। मनुष्य ने देखा कि जंगली सुअर जिस ज़मीन को खोद कर चले जाते हैं, उसमें पौधे अधिक निकलते हैं। मनुष्य ने भी पहले पहल

बीज या पौधे बोने के लिए ज़मीन को अच्छी तरह खोदा और जोता। पर यूनानियों का पुराना सिद्धान्त यह था कि मनुष्य ने पहले पहल जंगली झाड़-झंखाड़ की भरमार देखकर ज़मीन को ठीक रूप देने के लिए खोदा और फिर नए अँखुए फूटते देख कर उसे धीरे धीरे बोने और जोतने की सूझी।

जुताई के पुराने तरीक़े

हल की ईजाद का दावा बहुत सी जातियाँ कर सकती हैं। पर सभी जातियों में हल अनेक मंज़िलें तय करके आया है। सिन्धु नदी के किनारे की सभ्यता (ईसा से ३२५० वर्ष पहले से लेकर २७५० वर्ष पहले तक)

में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि खेतीबारी ने उस समय काफ़ी उन्नति

कर ली थी। वैदिक युग (ईसा से २५०० वर्ष पहले से लेकर ५०० वर्ष पहले तक) में इस दिशा में बहुत उन्नति हुई थी। मिस्र के पिरामिडों पर बनी पत्थर की मूर्तियों में भी, जो चार हजार से लेकर सात हजार वर्ष तक पुरानी हैं, लकड़ी के ऐसे हल दिखाए गए हैं, जिन्हें जानवर खींच रहे हैं।

मतलब यह है कि जमीन की जुताई के भाँति भाँति के यंत्र एक ऐसे नोकदार डंडे के ही बदलते हुए रूप हैं, जिसका काम मिट्टी खोदना था। शुरू में इस तरह काम आने वाले यंत्रों को मनुष्य अपने आप चलाता था। धीरे धीरे उसने ऐसे यंत्रों की खोज कर ली जिन्हें बैल या घोड़े

घसीट सकें। मशीन से भी यह काम लिया जा सकता है, यह बात मनुष्य को उन्नीसवीं सदी के बीच में आकर सूझी। तब भाप के इंजनों से भी जमीन की जुताई होने लगी।

हमारे पुरखे अपने हाथ से हल चलाते थे। अब ऐसे बड़े बड़े इंजन बन चुके हैं जिनसे जमीन काटने का काम भी
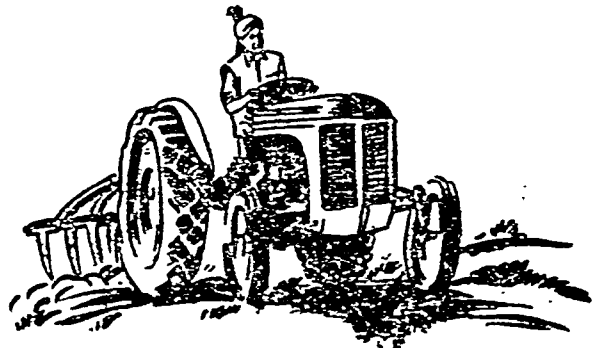
लिया जा सकता है और जुताई, बुवाई, फ़सल काटने और नाज निकालने का भी। पुराने हल से लेकर नए इंजन तक खेतीबारी का पूरा विकास देखा जा सकता है।

सिंचाई

अच्छी उपज के लिए पूरा पूरा पानी ज़रूरी है। कोई पौधा पानी के बिना नहीं जी सकता। पानी के बिना पौधे की क्या दशा होती है, इसका अनुमान गमलों के उन पौधों को देखकर लगाया जा सकता है जिनकी देख भाल नहीं की जाती। सभी युगों में किसान के सामने यह समस्या रही कि वह पानी के मामले में प्रकृति की मनमानी पर किस तरह क़ाबू पाए। कभी बाढ़ और कभी सूखे का सामना करने के लिए वह क्या करे?

भारत में भी खेतीबारी की उन्नति में सबसे बड़ी रुकावट प्रकृति की मनमानी ही है। देश के किसी भाग में वर्षा अधिक होती है और

किसी भाग में कम। और फिर बरसात के मौसम का भी कुछ ठीक नहीं है। कभी वर्षा बिलकुल नहीं होती और कभी बहुत कम होती है। इस देश में हिमालय के कुछ पहाड़ी इलाक़ों, असम तथा पूर्वी और पच्छिमी घाटों के इलाक़ों को छोड़ कर और सब जगह फ़सल का होना न होना इस बात पर निर्भर है कि सिंचाई किसी न किसी प्रकार होती रहे।

न जाने कब से भारत के किसान कुंओं, तालाबों और बांधों के द्वारा वर्षा का पानी इकट्ठा करते रहे हैं। भारत में सिंचाई के साधन दूसरे सब देशों से अधिक हैं। पाँच करोड़ एकड़ से भी अधिक ज़मीन पर सिंचाई के इन साधनों से खेती की जाती है। अमरीका और पाकिस्तान में सिंचाई से उपज देने वाली ज़मीन से यह ढाई गुना अधिक है।

खेतीबारी के सुधार की नई नई योजनाएँ, जैसे भाखरा-नंगल, हीराकुड, दामोदर घाटी आदि चल रही हैं। पर अभी इस देश में उपजाऊ धरती का आधे से कुछ कम भाग कुँओं और तालाबों से ही सींचा जाता है। इसलिए हमारे देहातों के आर्थिक ढाँचे में कुंओं और तालाबों का महत्व भुलाया नहीं जा सकता।

सिंचाई के साधन

सिंचाई के मुख्य साधन हैं कुँए, तालाब, पोखर, नाले और नहरें।

१. कुँए : भारत की कुल सींची जाने वाली ज़मीन का तीस प्रतिशत भाग (लगभग डेढ़ करोड़ एकड़) कुंओं से सींचा जाता है। कुंओं का पानी बहुत ही होशियारी से बरता जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पानी एक बूंद भी बेकार न जाए, क्योंकि कुंए से पानी निकालने का सारा खर्च किसान को उठाना पड़ता है।

२. तालाब और पोखर : सिंचाई का यह तरीक़ा हमारे देश में सब से पुराना है।

३. नाले : सिंचाई में नालों का महत्त्व इतना अधिक नहीं है, पर अपने आसपास की ज़मीन के लिए वे काफ़ी उपयोगी होते हैं।

४. नहरें : सिंचाई का यह तरीक़ा भी पुराना है। दूसरे तरीक़ों से यह सस्ता भी है। हमारे देश में लगभग दो करोड़ एकड़ ज़मीन की सिंचाई नहरों से होती है।

नहरें प्रायः खेतों की सतह से ऊँची सतह पर बनाई जाती हैं ताकि उनका पानी आसानी से खेतों में पहुँच जाए। पर कुंओं का पानी नीचे से खींच कर ऊपर लाना पड़ता है।

कहीं कहीं नहरें भी नीची सतह पर होती हैं और उनका पानी ऊपर खींचना पड़ता है। पर इस तरह की सिंचाई बहुत महँगी पड़ती है, इसलिए ऐसी सिंचाई वहीं करनी चाहिए जहाँ की भूमि बहुत ही उपजाऊ हो। सिंचाई का पूरा लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि किसान अपनी उपज की क़ीमत और सिंचाई की लागत दोनों को ठीक ठीक समझे।

नीची सतह से पानी को ऊपर उठाने के लिए भाँति भाँति के साधन काम में लाए जाते हैं--जैसे मोट, रहट, चेन पम्प, ढेंकली, पम्प आदि। इनमें से पहले दो अधिक चालू हैं।

खाद :

सिंचाई का ठीक प्रबन्ध हो जाने के बाद खेतीबारी में अगली बात सोचने की यह होती है कि ज़मीन की उपजाऊ शक्ति किस तरह क़ायम रखी जाए। भारत के अधिकतर भागों में ज़मीन की उपजाऊ शक्ति

काफ़ी कम है, और इस बात का डर है कि बीजों की बढ़िया क़िस्में बोने से ज़मीन की यह शक्ति और घट जायगी, क्योंकि अच्छे बीज ज़मीन से अपनी ख़ूराक़ अधिक खींचते हैं। इसलिए अच्छी फ़सल के लिए खाद बहुत जरूरी है। पौधों के लिए नाइट्रोजन एक बड़ी आवश्यक ख़ूराक है और भारत की ज़मीन में इसकी अक्सर कमी रहती है। यह कमी खाद से पूरी की जाती है। इसलिए खाद की समस्या दूसरे शब्दों में नाइट्रोजन की कमी को पूरी करने की समस्या है।

इस देश में, जहाँ खेतीबारी इतने पुराने समय से हो रही है, ज़मीन की उपजाऊ शक्ति अभी तक एक समस्या ही क्यों बनी है? इसका एक विशेष कारण है। इस देश की जलवायु पूरे साल इतनी गर्म रहती है कि उस गर्मी में हमारी धरती के जीवनदायी तत्व लगातार जलते रहते हैं। नाइट्रोजन उन तत्वों में से मुख्य है। इसलिए उसे किसी न किसी तरीक़े से ज़मीन में क़ायम रखना चाहिए। नहीं तो ज़मीन की उपजाऊ शक्ति दिन दिन कम होती जाएगी।

अब हमें यह देखना है कि वे खादें कौन सी हैं, जिनमें नाइट्रोजन और दूसरे जीवनदायी तत्व मौजूद हैं और जो सस्ती, सुलभ और लाभदायक भी हैं? वे क्रम से ये हैं:

१. गोबर और मल।

२. मिला कर बनाई हुई या कम्पोस्ट खाद।

३. खली।

४. हरी खाद।

५. व्यापारिक खाद।

१. गोवर और मल : गोवर और मल खाद के लिए सब से अधिक काम की और सब से अधिक लाभदायक चीजें हैं। मगर हिसाव लगाया गया है कि हमारे देश में लगभग दो तिहाई गोवर उपले और पाथियाँ बना कर जला दिया जाता है। तीसरा हिस्सा भी इस लापरवाही से रखा जाता है कि खाद के रूप में काम में आने से पहले वह वहुत से तत्व खो बैठता है।

मल की खाद की दशा तो और भी बुरी है। हमारे पड़ोसी देश चीन में तो मल और कम्पोस्ट खाद बहुत अधिक काम में लाई जाती हैं। पर हमारे देश का किसान उसे छूना भी पसन्द नहीं करता।

इस तरह गोवर के जलाए जाने और मल का उपयोग इतना कम होने के कारण हमारे देश में खाद की समस्या ने भयंकर रूप ले लिया है। यहाँ तो एक एकड़ जमीन के पीछे एक टन खाद भी मुश्किल से मिलती है। यह फ़सल की आजकल की जरूरत से बहुत ही कम है। इसलिए खाद के रूप में गोवर और मल का पूरा पूरा उपयोग होना आवश्यक है।

२. कम्पोस्ट खाद : पहले कहा जा चुका है कि गोबर जलाने से खाद की कमी हो जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए अब से कुछ समय पहले कूड़ा करकट और पत्तों को मिलाकर उनसे खाद बनाने का तरीक़ा निकाला गया था। पर अभी इस काम में उतनी सफलता नहीं मिल सकी है जितनी आशा की जाती थी। कम्पोस्ट खाद बढ़िया तो जरूर होती है, पर जरूरी सामान, मजदूर और पानी की कमी के कारण उसका अधिक प्रचार नहीं हो सका है। उसका प्रचार वढ़ाना चाहिए।

३. खली : खली में भी नाइट्रोजन और खाद के दूसरे तत्व मौजूद

होते हैं। पर आजकल उसका प्रयोग केवल उन्हीं फ़सलों के लिए होता है जो कटाई के बाद एकदम बिक सकें। खली महँगी भी होती है और आसानी से मिलती भी नहीं। इसलिए देहातों में उसका प्रचार कम है। जब तक खली बड़े पैमाने पर सस्ती नहीं बनाई जाती, तब तक किसान उसे नहीं अपना सकता।

४. हरी खाद : पुराने समय में मटर आदि बोने के बाद उन्हें उसी जमीन में काटकर हल चला दिया जाता था। पर खाद देने का यह उपाय अब काम में नहीं लाया जाता। पुराने तरीक़ों में तो आसपास के पेड़ों की शाखें, पत्ते और झाड़-झंखाड़ आदि सब काटकर खाद की तरह इस्तेमाल कर लिए जाते थे। दाने वाले बहुत से पौधों को खाद की तरह इस्तेमाल करके देखा गया है। उनमें से सनई, ढेंचा, नीलीपसेरा और ग्वार अधिक चलते हैं। सनई तो लगभग हर जगह हरी खाद की तरह बरती जाती है।

हरी खाद से उपज खासी बढ़ जाती है, यह बात अनुभव और खोज दोनों से साबित हो चुकी है। चावल, गन्ना और गेहूँ की फ़सलों पर इसका प्रयोग किया जा चुका है। इस बात के काफ़ी प्रमाण मिल गए हैं कि हरी खाद सब से अच्छी और सस्ती रहती है, और इसे हर किसान आसानी से अपना सकता है।

५. व्यापारिक खादें : बाजार में ऐसी व्यापारिक खादें भी मिलती हैं, जो सरलता से काम में लाई जा सकती हैं। उनमें से कुछ हैं अमोनियम सल्फ़ेट, सोडियम नाइट्रेट, कैल्शियम नाइट्रेट, हड्डी का चूरा, एम्पोफ़ास आदि। सुपर फ़ास्फ़ेट तथा पोटाशियम सल्फ़ेट आदि कुछ खादें ऐसी भी हैं जो ज़मीन को फ़ास्फ़ोरस और पोटाश काफ़ी मात्रा में दे सकती हैं।

अलग अलग फ़सलों को इनमें से अलग अलग तत्वों की ज़रूरत होती है। इसलिए इन खादों का उपयोग करने से पहले किसी जानने वाले से या उस जगह के सरकारी अधिकारी से ज़रूर सलाह कर लेनी चाहिए। ये खादें महँगी होती हैं, और इनका इस्तेमाल प्रायः क़ीमती फ़सलों में ही किया जा सकता है।
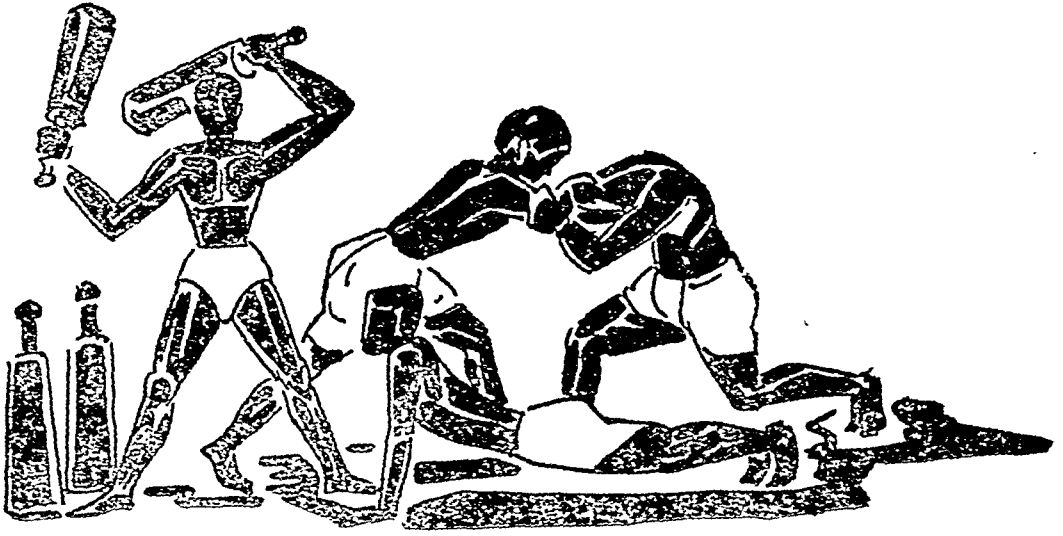
२३

स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्त

प्रकृति ने मनुष्य के लिए हजारों अच्छी अच्छी चीजें पैदा की हैं। पर मनुष्य उनका आनन्द तभी ले सकता है, जब वह पूरी तरह स्वस्थ हो।

सब बातों को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य के लिए भोजन एक बहुत जरूरी चीज है। हम रोज कितना और कैसा भोजन करें, इसका फ़ैसला करने के लिए पहले यह जानना चाहिए कि हमें भोजन की जरूरत क्यों है और शरीर में पहुँच कर भोजन क्या काम करता है?

जब हम कुछ काम करते हैं, तो हमारे अंगों के हिलने से हमारे पुट्ठों के कोष्ठ अर्थात् भीतरी भाग टूट फूट जाते हैं। हम जितनी तेजी से

काम करते हैं, कोष्ठों की टूट फूट भी उतनी ही अधिक होती है। यदि हम शरीर से कोई मेहनत का काम न करें और चारपाई पर लेटे रहें, तब भी शरीर के भीतरी अंग काम करते रहेंगे और उनके पुट्ठों के कोष्ठ टूटते फूटते रहेंगे। दिमाग़ी काम करने से भी मस्तिष्क के पुट्ठों के कोष्ठ टूटते फूटते हैं। कोष्ठों की यह टूट फूट हमारे शरीर में जीवन भर जारी रहती है। इसलिए ज़िंदा रहने और स्वस्थ रहने के लिए उन कोष्ठों की मरम्मत भी सदा जारी रहनी चाहिए। इसके सिवा नई उम्र में हमारा शरीर बढ़ता भी है। उसके लिए हमें नए पुट्ठों की ज़रूरत पड़ती है।

ज़िंदा रहने के लिए और पुट्ठों को चलाने के लिए हमारे शरीर में गर्मी की भी ज़रूरत पड़ती है। यदि शरीर में गर्मी कम हो जाए, तो पुट्ठों की हिलने डुलने की शक्ति भी कम हो जाएगी। पर गर्मी यदि बढ़ जाए, तो पुट्ठों के कोष्ठों की टूट फूट भी अधिक होने लगेगी। इन सब के लिए ही मनुष्य को भोजन की ज़रूरत पड़ती है।

भोजन के संबंध में जो दूसरी बात जाननी ज़रूरी है, वह यह है कि भोजन हमारे शरीर की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। हमारे शरीर में अधिक भाग मांस, हड्डी और खून का है। इसलिए हमारा भोजन ऐसा होना चाहिए जो मांस, हड्डी और खून बना सके।

डाक्टरों का कहना है कि मिला जुला भोजन अच्छा होता है। उसमें आटे और चावल के साथ साथ हरी तरकारियाँ, दाल, दूध और दूध से बनी चीज़ें, या दाल और दूध की जगह मांस, मछली, चिकनाई (घी, तेल आदि), ताज़े पके फल, चीनी, नमक आदि सब चीज़ें उचित मात्रा में ज़रूर रहनी चाहिए। तरकारियों में पत्ते वाली सब्ज़ियाँ ज़रूर हों।

दाल, दूध और मांस-मछली में प्रोटीन रहता है। प्रोटीन शरीर बढ़ाने में काम आता है। दूध में जो प्रोटीन रहता है, वह दाल के प्रोटीन से अच्छा होता है। मनुष्य का शरीर उसे आसानी से हज़म कर लेता है, जिससे शरीर जल्दी बढ़ता है। इसलिए गर्भवती स्त्रियों, बच्चों और कमज़ोरों के भोजन में दूध या उसकी जगह मांस-मछली अधिक होनी चाहिए।

दूध में कैलशियम यानी चूना भी बहुत होता है, जो हड्डियाँ बनाता है। हरी और पत्ते वाली तरकारियों में लोहा और दूसरी धातुएँ होती हैं, जो खून को ताक़तवर बनाती हैं और क़ब्ज़ को भी रोकती हैं।

अनाज में निशास्ता (स्टार्च) रहता है, जो चिकनाई यानी घी-तेल से मिलकर शरीर में गर्मी पैदा करता है। जो आदमी अधिक शारीरिक मेहनत करता है, उसे अधिक गर्मी की ज़रूरत होती है। इसलिए ऐसे लोगों को अनाज अधिक खाना चाहिए और उसके साथ थोड़ी चिकनाई भी। चीनी भी इसी काम में आती है। अगर ये चीज़ें अधिक खाई जाएँ और शारीरिक मेहनत कम की जाए, तो शरीर में चर्बी बढ़ जाती है और

मोटापन आ जाता है। अगर मोटापा कम करना हो, तो ये चीजें कम खानी चाहिए।

चावल और गेहूँ में भी कुछ धातुएँ होती हैं और वे उनके छिलकों के ठीक नीचे रहती हैं। गेहूँ को कभी बारीक पीसना और छानना न चाहिए। यदि गेहूँ में धूल, मिट्टी, कंकर मिली हों, तो उसे पीसने से पहले साफ़ कर लेना चाहिए। अगर गेहूँ को धोकर और सुखाकर पीसा जाय, तो अधिक अच्छा होगा। चावल बिना पालिश किया हुआ खाना चाहिए और पकाते समय उसका माँड़ नहीं निकालना चाहिए। मिल के पालिश किए हुए चावलों से बेरी बेरी जैसी कई तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं।

फलों में विटामिन और ग्लूकोज़ बहुत होता है। विटामिन शरीर के लिए बहुत जरूरी हैं। वे शरीर की रचना करते हैं। अगर प्रोटीन को शरीर बनाने का मसाला कहा जाय, तो विटामिन वे राज मेमार हैं जो उस मसाले से शरीर को बनाते हैं। विटामिन कई तरह के होते हैं और सब के सब स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं। कई तरह के फल जैसे केले, संतरे नीबू, आम आदि खाने से सभी विटामिन ठीक ठीक मिल जाते हैं।

फल मौसम के अनुसार और पके होने चाहिए। तरकारियों और अनाज को पचने लायक बनाने के लिए पकाने की जरूरत पड़ती है। परंतु ज्यादा पकाने से उनके पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं और विटामिन भी

जल जाते हैं। इसलिए बहुत करारी या खर रोटी खाने की ग्रादत ग्रच्छी नहीं। पकाते समय ज्यादा मिर्च-मसाले डालने से भी भोजन की ताक़त नष्ट हो जाती है।

स्वास्थ्य के लिए पानी भी बहुत जरूरी है। हमारे शरीर में तीन चौथाई भाग पानी है। वह ग्रौसत बना रहना चाहिए। खाना हज़म होने के बाद उसका लाभकारी भाग पानी में घुल कर ही खून में मिलता है। पानी शरीर की गंदगी को भी बाहर निकालता है। पानी कम पिया जाए तो क़ब्ज हो जाता है ग्रौर पेशाब भी कम ग्राता है। शरीर में खुश्की बढ़ जाती है। पेशाब गाढ़ा होने से गुर्दे ग्रौर मसाने में पथरी पड़ जाने का डर रहता है। खून भी गाढ़ा पड़ जाता है ग्रौर स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। पसीना कम ग्राता है, इसलिए शरीर की गंदगी बाहर नहीं निकल पाती। पाचन शक्ति भी कम हो जाती है। सिर में दर्द रहने लगता है ग्रौर घबराहट सी मालूम होती है। इसलिए हमें काफ़ी पानी पीने की ग्रादत डालनी चाहिए। पर बहुत ग्रधिक पानी पीने या ज्यादा बर्फ़ मिला पानी पीने से भी पाचन शक्ति कम हो जाती है ग्रौर भूख भी कम लगती है। भोजन करने के दो तीन घंटे के बाद काफ़ी पानी पी सकते हैं।

गर्मियों में ग्रधिक पानी की ज़रूरत होती है, क्योंकि पसीने से काफ़ी पानी निकल जाता है। गर्मियों में ग्रधिक पानी पीने से धूप ग्रौर लू से भी बचाव रहता है।

पीने का पानी साफ़, बिना बू का ग्रौर ताजा होना चाहिए। जहाँ नल न हो, वहाँ जिस कुँए से पीने का पानी लिया जाता हो, उसे साफ़

रखना जरूरी है। उस पर नहाने, कपड़े धोने, जानवरों को पानी पिलाने या नहलाने से रोकना चाहिए। गंदे और मैले बर्तन में कुंए से पानी न निकाला जाए। कुंए को कभी कभी साफ़ भी करते रहना चाहिए। अगर इलाक़े में कोई छूत की बीमारी फैली हो, तो कुंए की सफ़ाई का और अधिक ध्यान रखना चाहिए। बरसात का या नाली का पानी कुंए में न जाने पाए। यदि कुंआ बहुत दिनों से बंद हो, तो उसका पानी तब तक न पीना चाहिए जब तक उसकी एक बार सफ़ाई न हो जाए।
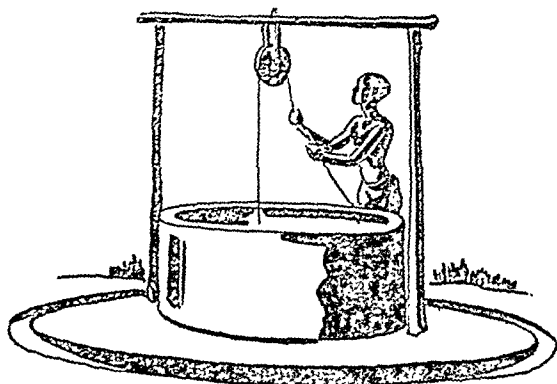
पानी शरीर को साफ़ करने के भी काम आता है। भारत गर्म देश है। यहाँ शरीर से पसीना अधिक निकलता है। अगर शरीर को रोज़ अच्छी तरह साफ़ न किया जाए, तो शरीर पर मैल जम जाता है। उससे रोओं के मुँह बंद हो जाते हैं और शरीर की गंदगी बाहर नहीं निकल पाती। शरीर में खुजली भी होने लगती है। रोज़ कम से कम एक बार जरूर नहाना चाहिए। गर्मियों में दो बार नहाना भी अच्छा होता है। जाड़ों में अगर पानी बहुत ठंडा हो, तो उसे थोड़ा गर्म कर लिया जाए। पर अधिक गर्म पानी से नहाना हानि पहुँचाता है। नहाते समय शरीर को हथेलियों से खब रगड़ना चाहिए जिससे मैल छूट जाए। साबुन अधिक न लगाना चाहिए। उससे शरीर में रूखापन आ जाता है। जाड़ों में शरीर पर कभी कभी तेल मलना

लाभदायक होता है। दाँत, नाक, गला, बाल, बग़लें और जाँघें ख़ास तौर से साफ़ रखनी चाहिए। नहाने के बाद शरीर को तौलिये से खूब रगड़ रगड़ कर पोंछना चाहिए। रगड़ कर पोंछने से खून की चाल तेज हो जाती है और थोड़ी गर्मी जान पड़ने लगती है, जो अच्छी लगती है। कपड़े साफ़ और धुले हुए पहनने चाहिए। नहाकर मैले और गंदे कपड़े पहनने से नहाना और न नहाना बराबर हो जाता है। जो कपड़े शरीर से लगे रहते हैं, जैसे बनियान या जाँघिया, सफ़ेद रंग के होने चाहिए। धोते समय उनमें नील नहीं देना चाहिए, क्योंकि रंग पसीने में मिलकर शरीर की चमड़ी को ख़राब कर देता है।

साँस लेने के लिए ताजी और खुले स्थान की हवा अच्छी होती है। गंदी और बंद हवा में साँस लेने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। हम जो भोजन करते हैं, वह पेट में पचता है। पचते समय एक गैस जिसे 'कार्बन डाई आक्साइड' कहते हैं, पैदा होती रहती है। वह खून में मिल कर खून को गंदा कर देती है। वह गैस जहरीली और जिंदगी के लिए ख़तरनाक होती है और उसे निकालते रहने का काम हमारे फेफड़े करते हैं। कार्बन डाई आक्साइड से मिला हुआ खून जब फेफड़ों में से जाता है, तो वह खून बाहर निकलने वाली साँस की हवा को कार्बन डाई आक्साइड दे देता है और बाहर की अच्छी और ताजी गैस आक्सीजन अंदर ले लेता है। इसलिए साँस से जो हवा हम बाहर निकालते हैं, उसमें कार्बन डाई

आक्साइड अधिक होती है। अगर रहने के कमरे में ताजी हवा हर समय न आती हो, तो उसमें बराबर सांस लेने से आक्सीजन कम हो जाती है और कार्बन डाई आक्साइड बढ़ जाती है। वह हवा साँस लेने के लिए हानिकारक होती है। इसलिए रहने के कमरे में दरवाजे और खिड़कियां जहां तक हो सके, खुली रखनी चाहिए, जिससे ताजी हवा आती रहे।

साँस हमेशा नाक से लेनी चाहिए। नाक से साँस लेने से नाक के बाल हवा की धूल को रोक लेते हैं। इस तरह हवा छन कर भीतर पहुँचती है। इसके सिवा उसे लम्बे और पेचदार रास्ते से होकर जाना पड़ता है, इसलिए कुछ देर लगती है और उसकी गर्मी शरीर की गर्मी के अनुकूल हो जाती है। यदि सांस मुँह से ली जाए, तो ये सब बातें नहीं होतीं। यही कारण है कि मुँह से साँस लेने वाले को गले और छाती की बीमारियाँ अधिक होती हैं, जैसे नजला, जुकाम, खाँसी और गला खराब होना।

हर रोज सैर करना और कसरत करना बहुत जरूरी है। काम करने से पुट्ठों में जो टूट फूट होती है और फोक पैदा हो जाता है, उसका अधिक भाग टट्टी, पेशाब, पसीना और साँस के द्वारा बाहर निकल जाता है। परन्तु थोड़ा भाग पुट्ठों में रह जाता है। उसको निकालने के लिए कसरत करना आवश्यक है।

कसरत करने से तंदुरुस्ती ठीक रहती है और शरीर मजबूत होता है। कसरत करते समय जब हम अपने अंगों को हिलाते हैं और पुट्ठों को पूरी ताक़त से सिकोड़ते हैं, तब गंदा खून और फोक उनसे बाहर निकल जाता है। फिर जब हम उन्हें ढीला करते हैं, तब ताजा खून भीतर आ जाता है। कई बार इसी तरह करने से गंदा खून और फोक जमा नहीं

होने पाता। ताज़ा खून मिलने से पुट्ठे मजबूत होते हैं और नए पुट्ठे बनते हैं। कसरत खुली जगह और ताजी हवा में करना चाहिए। कसरत करने से भूख भी बढ़ती है और क़ब्ज़ भी दूर होता है। स्त्रियों और बच्चों को भी कसरत करनी चाहिए। जो लोग किसी कारण से कसरत न कर सकते हों, उन्हें खुली हवा में सैर करना चाहिए। सैर करते समय जरा तेज़ चलना चाहिए। टहलते समय बीच बीच में गहरी साँस लेनी चाहिए। इससे फेफड़ों की कसरत हो जाती है और वे साफ़ हो जाते हैं।

काम करने से थकान आती है। इस थकान को दूर करने के लिए हमें आराम और नींद की जरूरत होती है। यदि हम आराम नहीं करते तो थकान बढ़ती जाती है और अंत में इतनी अधिक हो जाती है कि पुट्ठे जवाब दे देते हैं। सोने और आराम करने से पुट्ठों की मरम्मत होती है और नए पुट्ठे बनते हैं।

जब हम काम करते हैं तब हमारे खून का अधिक भाग हमारे हाथ पैरों में रहता है और पेट में कम जाता है। लेकिन जब हम आराम करते हैं, तब इसका उलटा होता है। पेट और आँतों में खून की मात्रा बढ़ जाती है। इससे भोजन के हज़म होने और खून में मिल जाने में बहुत मदद मिलती है। खाना खाने के बाद थोड़ी देर आराम करना बहुत लाभदायक होता है। यदि हमें कभी जल्दी हो, तो अच्छा यह होगा कि हम पेट भर भोजन न करें।

आराम करने का अर्थ केवल हाथ पैर ढीले करके लेट जाना नहीं है। हमें अपने दिमाग़ को भी आराम देना चाहिए। यदि हम लेटे लेटे परेशानी

में डालने वाली बातें सोचते रहें, तो इस तरह लेटने से आराम नहीं मिलता, बल्कि थकान बढ़ जाती है। आराम करने और सोने का स्थान अलग और शांतिमय हो। बिस्तर मौसम के अनुकूल और कमरा हवादार होना चाहिए।

कपड़े केवल बाहरी बनाव सिंगार की चीज नहीं होते। वे सर्दी गर्मी से हमारे शरीर को बचाते हैं। मनुष्य के शरीर की खाल दूसरे जानवरों की खालों से पतली होती है। उस पर रोंएँ भी कम और छोटे होते हैं। इसलिए उस पर गर्मी-सर्दी का प्रभाव अधिक पड़ता है। उनसे बचने के लिए हमें कपड़ों की जरूरत होती है।

गर्मियों में ठंढे, धुले और हलके कपड़े होने चाहिए जिससे शरीर पर ताजी हवा लगती रहे। धूप में चलते समय सिर को ढांकना बहुत जरूरी है। तेज धूप से आँखों को भी बचाना चाहिए।

जाड़ों में कपड़े गर्म होने चाहिए। जरूरत से ज्यादा कपड़े पहनना हानिकारक है। अक्सर लोग जाड़े से बचने के वहम में बहुत अधिक कपड़े पहन लेते हैं। एक तो उन कपड़ों का बोझ इतना हो जाता है कि चलने फिरने और काम करने में रुकावट होती है, दूसरे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है।

बच्चों को कपड़े पहनाने में लोग अक्सर भूल करते हैं। जाड़े से बचाने के लिए उनकी छाती पर तो बहुत अधिक कपड़े लाद दिए जाते हैं, पर कमर से नीचे टांगें नंगी रहती हैं। ऐसा करना हानिकारक है। सर्दी अधिकतर पैरों से चढ़ती है। जब पैर ठंडे होते हैं, तो बेचैनी मालूम होती है। यहाँ तक कि सो भी नहीं पाते। इसलिए बहुत जाड़ा हो, तो टांगों

को भी ढक कर रखना चाहिए ।

कपड़ों का हमारे स्वभाव पर भी प्रभाव पड़ता है। साफ़ कपड़े पहनने से सफ़ाई की आदत पड़ती है और बराबर सफ़ाई का ध्यान रहता है। मैले कुचैले कपड़े पहनने से गंदा रहने की आदत पड़ जाती है।

चलते समय शरीर का पूरा बोझ पैरों पर पड़ता है, इसलिए पैरों का मजबूत होना जरूरी है। हम प्रायः पैरों की ओर ध्यान ही नहीं देते। पैरों में तेल की मालिश करना चाहिए, उनको साफ़ रखना चाहिए और जूते पहनने चाहिए। अधिक गर्म या अधिक ठंडे फ़र्श पर नंगे पैर फिरना हानि पहुँचाता है। जूते खुले हुए और आराम देने वाले हों। तंग जूते पहनने से पैरों की बनावट बिगड़ जाती है और उंगलियों में घट्ठे पड़ जाते हैं जो चलने में कष्ट देते हैं।

खाने, पीने, सोने, काम करने और सब बातों में बीच की राह पर चलना अच्छा होता है। काम उत्साह के साथ करना चाहिए और उसमें आनंद लेना चाहिए। किसी काम से जी बहुत थक या ऊब न जाए, इसलिए बीच बीच में काम को बंद करके या बदल कर मनोरंजन के लिए समय देना और सदा प्रसन्न चित्त रहना स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है। बड़े बड़े विद्वानों और डाक्टरों की राय है कि हँसने से बढ़कर और कोई ताक़त की दवा नहीं।

२४

बड़े बड़े आविष्कार

विज्ञान ने हमारे जीवन का ढाँचा बदल दिया है। अँधेरे में उजाला करने के लिए बिजली, एक कोने से दूसरे कोने तक खबर भेजने के लिए तार और बेतार के तार विज्ञान ही की देन हैं। मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से नदियों को बाँधकर नहरें निकालीं, ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को काटकर सुरंग बनाई और अब तो बनावटी बादलों से पानी भी बरसा लेता है। सिनेमा, रेडियो और ग्रामोफ़ोन, टेलीफ़ोन, डाक, तार, मोटर, रेल और जहाज़—सबने मिलकर समय और दूरी की कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं।

१—रेलगाड़ी

विज्ञान की उन्नति के साथ साथ मनुष्य ने सीखा कि भाप, पेट्रोल और बिजली में बहुत बड़ी शक्ति छिपी है। भाप में छिपी शक्ति का अनुभव सबसे पहले जेम्स वाट ने किया। जेम्स वाट अंग्रेज़ थे। एक दिन वे अपने रसोईघर में बैठे थे। चाय के लिए पानी उबाला जा रहा था। पानी की भाप से केटली का ढक्कन बार बार उठ रहा था। भाप की इसी शक्ति से काम लेकर वाट ने कई पम्प और इंजन बनाए।

भाप से लोहे की पटरियों पर रेलगाड़ी चलाने का काम युरोप में सबसे पहले जार्ज स्टीफ़ेन्सन ने किया। स्टीफ़ेन्सन कोयले की खानों में काम करते थे। उन्होंने देखा कि कोयला ढोने वाली गाड़ी लोहे की पटरियों पर
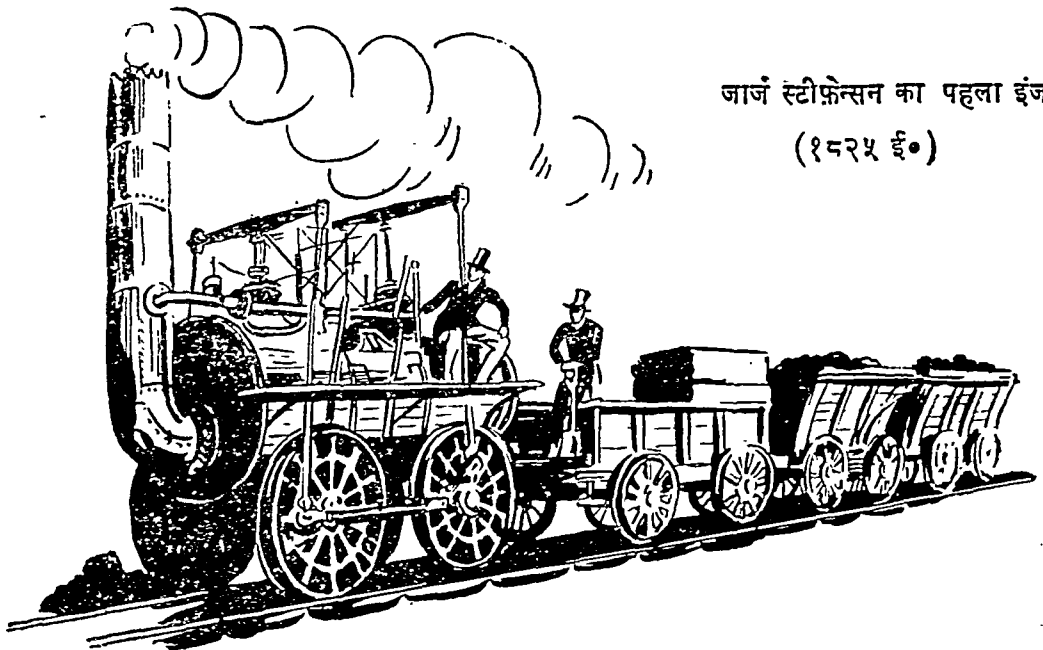
जार्ज स्टीफ़ेन्सन का पहला इंजन
(१८२५ ई०)

अधिक तेज़ी से चलती है। इसी सूझ पर उन्होंने एक रेलगाड़ी बनाई। वह गाड़ी घंटे में बारह मील की चाल से चलती थी। उस समय के लोग

इस धीमी चाल से चलने वाली गाड़ी में भी बैठते हुए डरते थे।

१८४१ का इंजन

१८६० का अमरीकन इंजन जिसमें लकड़ी जलती थी।
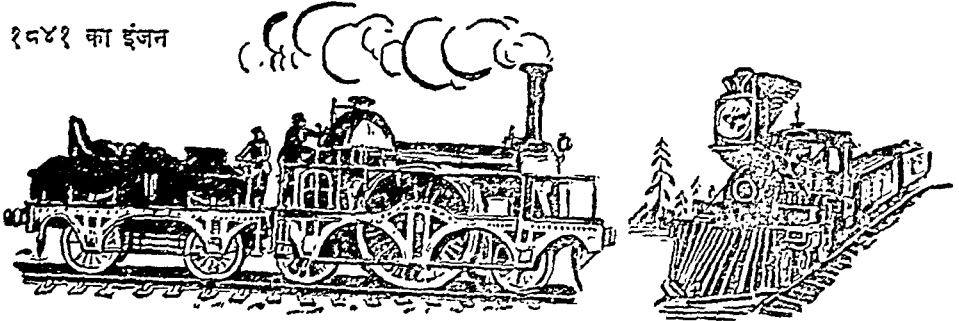
धीरे धीरे इंजन और गाड़ी में सुधार होता गया। उसी का फल है कि आज एक इंजन बहुत लम्बी गाड़ी को कुछ घंटों में ही सैंकड़ों मील खींच ले जाता है। अब गाड़ियों में खाने-पीने, पढ़ने, सोने और सर्दी-गर्मी से बचने के सब सुभीते हो गए हैं; और गाड़ियाँ इस तरह दौड़ती हैं कि मुसाफ़िर को यह मालूम ही नहीं होता कि वह साठ सत्तर मील प्रति घंटे की चाल से जंगलों और नदियों को पार करता दौड़ा चला जा रहा है।

कुछ देशों में गाड़ियाँ धरती के नीचे भी चलती हैं। लंदन में धरती के नीचे ही नीचे रेलों का जाल सा बिछा हुआ है। अमरीका में हडसन नदी के नीचे एक सुरंग बनाकर उसमें से रेल चलाई गई है।
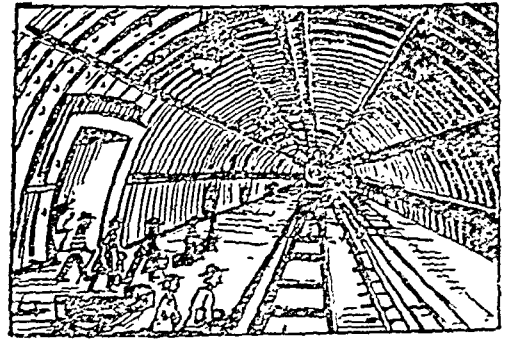
भाप से रेलगाड़ी किस तरह चलती है? रेलगाड़ी को खींचने का

काम इंजन करता है, और इंजन कोयले और पानी के सहारे चलता है। कोयला जलाने के लिए इंजन में ही एक भट्ठी होती है। भट्ठी के साथ के हिस्से में पानी रहता है। गर्म धुआँ छोटी छोटी नालियों से ले जाकर पानी में से गुज़ारा जाता है। इस तरह पानी उबल उबल कर भाप बनने लगता है। उसी भाप को दबाकर उसमें शक्ति पैदा की जाती है।

इंजन को चलाने के लिए उसके पहियों पर लोहे की भारी सलाखें लगी रहती हैं। वे सलाखें भाप की शक्ति से पहियों को आगे चलने पर मजबूर करती है। भाप का दबाव घटा बढ़ा कर गाड़ी की चाल घटाई-बढ़ाई जाती है।

लोहे की पटरियों पर चलने वाली गाड़ियों को कुछ कम ताक़त की ज़रूरत होती है। पटरियों की चौड़ाई देश देश में अलग अलग है, पर अधिकतर बड़ी लाइनें साढ़े पाँच फ़ुट चौड़ी होती हैं और छोटी लाइनें सवा तीन फ़ुट। टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर से गुज़रने के लिए छोटी लाइन अच्छी रहती है। पहाड़ों पर धरती बराबर नहीं होती। ऐसे स्थानों पर छोटी लाइनें पर ही गाड़ियाँ चलती हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ लोहे के मोटे मोटे तार लटका कर उन पर रेल की पटरियाँ बिछा दी गई हैं और उन पटरियों पर रेलगाड़ियाँ चलती हैं।

आजकल भाप के अलावा बिजली, डीज़ल तेल और पेट्रोल से भी इंजन चलने लगे हैं। बिजली से चलने वाली रेलों में बिजली या तो बाहर से तारों के ज़रिए ली जाती है, या इंजन के अंदर ही तेल से पैदा की जाती है।

रेलगाड़ियाँ अक्सर सत्तर अस्सी मील प्रति घंटे की चाल से चलती

हैं, पर कुछ गाड़ियों की चाल सौ मील प्रति घंटे से भी ऊपर पहुँच चुकी
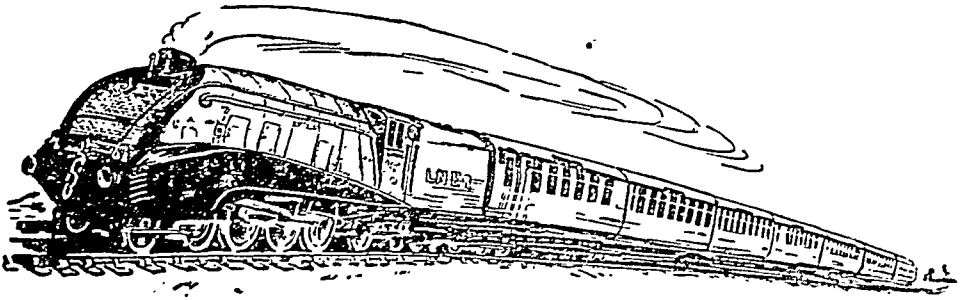
१०७ मील प्रति घंटा चलने वाली रेल

है। भाप से चलने वाली एक गाड़ी एक सौ छब्बीस मील की चाल से दौड़ चुकी है। डीज़ल तेल से चलने वाली गाड़ियाँ १३३ मील प्रति घंटे की चाल तक पहुँच गई हैं। जर्मनी में एक ख़ास तरह के पंखों की सहायता से चलने वाली गाड़ी लगभग १४३ मील प्रति घंटे की चाल से चल चुकी है।

संसार की सबसे लम्बी रेलवे लाइन सोवियत रूस में है। वह मास्को से ब्लाडीवोस्टक तक जाती है। उसकी लम्बाई ६,००० मील है। गाड़ी को एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने में ६ दिन लगते हैं। अमरीका में ३,००० मील तक जाने वाली ऐसी गाड़ियाँ हैं जिनमें खाने-पीने, सोने, काम करने और मनोरंजन वगैरह के सब साधन मिलते हैं। स्विट्ज़रलैंड और दक्खिनी अमरीका में पहाड़ों पर चलने वाली कुछ गाड़ियाँ समुद्र तल से १६,००० फुट तक की ऊँचाई पर चलती हैं, जहाँ साँस लेने के लिए आक्सीजन गैस का इन्तज़ाम करना पड़ता है। भारत में भी रेलगाड़ियाँ लगभग साढ़े सात हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक पहुँच चुकी हैं।

इस तरह रेलगाड़ियों की सहायता से हमारे लिए दूर दूर के स्थानों तक आना जाना बहुत आसान हो गया है।

१—मोटर

रेलगाड़ी हर जगह नहीं जा सकती। ऐसे बहुत से स्थानों तक पहुँचने के लिए मोटर एक अच्छी सवारी है। मुसाफ़िरों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के अलावा मोटरों, बसों और ट्रकों से और भी बहुत से काम लिए जाते हैं। ट्रकों में भर कर सामान ढोया जाता है। मोटरों से हमारे गाँवों में चलते फिरते सिनेमा, पुस्तकालय और दवाख़ाने आदि पहुँच गए हैं। लड़ाई के दिनों में मोटरों से तरह तरह के सामान लाने ले जाने का काम लिया जाता है। अकाल और बाढ़ जैसे संकटों में उनकी सहायता से पीड़ितों को भोजन और कपड़े पहुँचाए जाते हैं, और सुख शांति के दिनों में मोटर सैर-सपाटे का अच्छा साधन है।
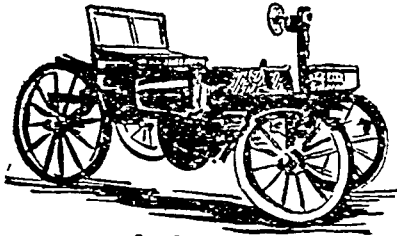
१८५७ की मोटर
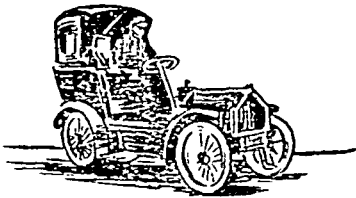
१९०५ की मोटर

शुरू शुरू में मोटरें भाप से चलती थीं। उनके पहिए लकड़ी या लोहे के होते थे। वे शकल सूरत में भी भद्दी थीं। गैस से चलने वाली गाड़ी, जिसे हम अब मोटरकार कहते हैं, अब से कोई ७० बरस पहले बनी। ऐसी गाड़ी सबसे पहले गोटलिब डेमलकर नामक एक जर्मन ने बनाई थी।

सन् १९१४ की पहली बड़ी लड़ाई तक मोटरों में लकड़ी या लोहे के पहिए होते थे। रबड़ के पहियों का चलन उस लड़ाई के बाद शुरू हुआ।

आजकल मोटर पेट्रोल से चलती है। मोटर के इंजन में पेट्रोल को

हवा के साथ मिलाकर उसमें बिजली की चिनगारी से आग लगा दी जाती है। वैसा करने से गैस पैदा होती है। वह गैस अधिक जगह घेरना चाहती है, लेकिन अधिक जगह न मिलने के कारण उसे दबना पड़ता है। उस दबाव से उसमें जो शक्ति पैदा होती है, मोटर उसी शक्ति से चलती है।

ड्राइवर की सीट के ठीक आगे एक गोल पहिया सा लगा होता है। इसे 'स्टियरिंग व्हील' कहते हैं। उसकी सहायता से गाड़ी मोड़ी जाती है। ड्राइवर के पैरों के पास कुछ पुर्जे होते हैं जिनसे गाड़ी तेज़ करने या रोकने वग़ैरह के काम लिए जाते हैं। मोटरों में कुछ ऐसी घड़ियाँ भी लगी होती हैं जिनसे गाड़ी की चाल और गाड़ी में ख़र्च होने वाले पेट्रोल की मात्रा वग़ैरह का पता चलता रहता है। एक घड़ी से यह भी पता लगता है कि गाड़ी जब से बनी, तब से आज तक कितने मील चल चुकी है।
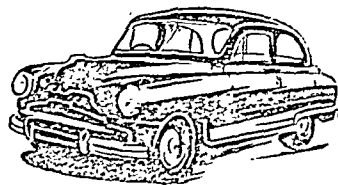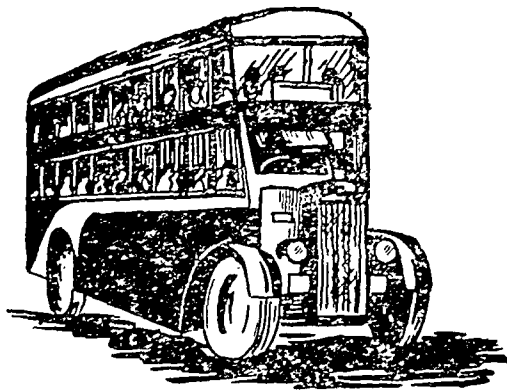
समय के साथ साथ मोटरें और बसें भी रंग रूप बदलती रहती हैं। हर साल सुंदर से सुंदर गाड़ियाँ कारखानों से निकलती हैं, जिससे हमारी यात्रा बराबर सुखद और सुगम होती जा रही है।

३—पानी के जहाज़

नाव और जहाजों में बैठकर नदियों और समुद्रों की यात्रा करना कोई नई बात नहीं है। एक देश से दूसरे देश
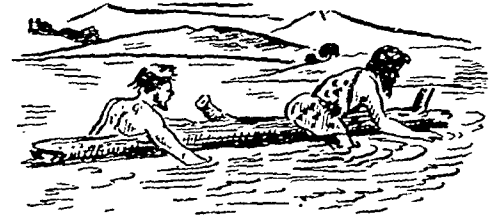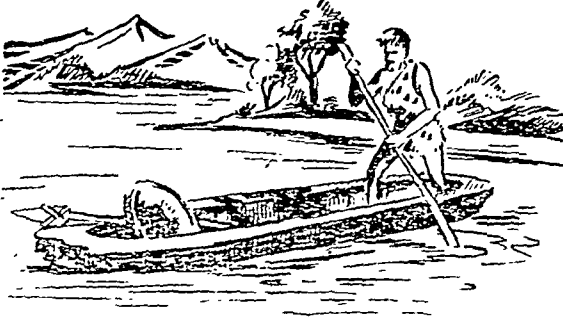
पहुँचने में पानी के जहाज़ बहुत समय से काम में आते रहे हैं। पहले जहाज़ कुछ छोटे होते थे। उनमें खाने पीने की चीज़ें और दूसरे सामान अधिक नहीं भरे जा सकते थे। रास्ते में समय भी बहुत लगता था। अब पहले से समय कम लगता है और यात्रियों के लिए सुविधाएँ भी अधिक हैं। जहाज़ों का समय भी निश्चित होता
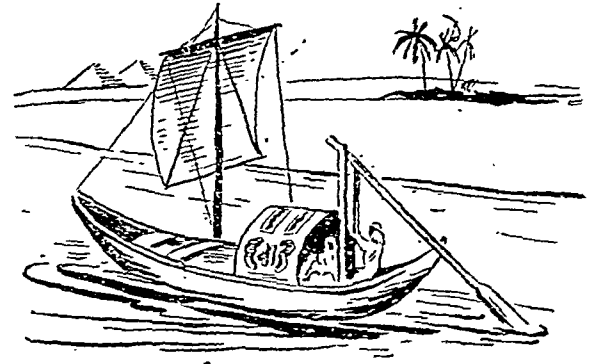
है। नए ढंग के जहाज़ों में पुस्तकालय, अस्पताल और सिनेमा आदि भी होते हैं। कुछ जहाज़ों की बनावट ऐसी है कि उन पर मौसम के बदलने का असर नहीं होता। संकट के समय मुसाफ़िरों की जान बचाने के लिए जहाजों में नावें भी होती हैं।

पानी के जहाज़ पहले अधिकतर लकड़ी के होते थे और हवा के ज़ोर से चलते थे।

दो हज़ार साल पहले हवा से चलने वाला रोमन जहाज़
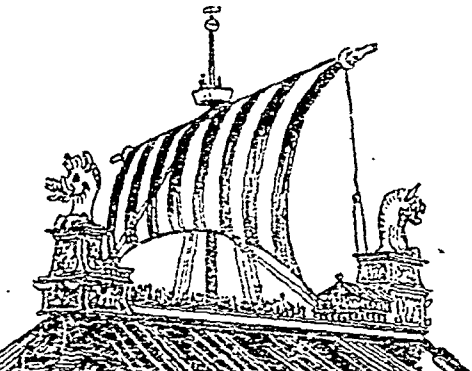
अब वे लोहे के होते हैं और भाप से चलते हैं। भाप की सहायता से बहुत बड़े बड़े पंखे पानी को पीछे फेंककर जहाज़ को आगे धकेलते हैं। ये पंखे बहुत भारी होते हैं। कुछ जहाज़ों में ये पंखे डीज़ल तेल या विजली से भी चलते हैं।

पानी के जहाज़ कई तरह के होते हैं। कुछ केवल मुसाफिरों के लिए
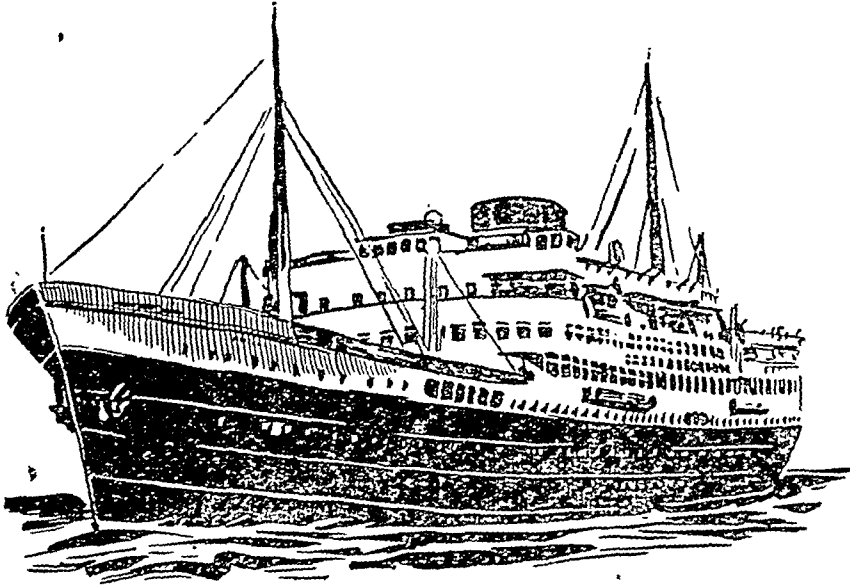
होते हैं, कुछ सामान ढोने के लिए और कुछ दोनों कामों के लिए। सामान ढोने वाले जहाज़ हज़ारों मन कोयला, लोहा, अनाज, फल वग़ैरह दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा देते हैं। एक तरह के जहाज़ 'टैंकर्स' कहलाते हैं। इनमें हज़ारों गैलन पेट्रोल और दूसरे रासायनिक पदार्थ एक देश से दूसरे देश जाते हैं। कुछ जहाज़ दूसरे बड़े जहाज़ों को पानी में खींचते हैं। समुद्र में जमी हुई बर्फ़ तोड़ने और टेलीफ़ोन के तार लगाने के लिए विशेष प्रकार के जहाज़ होते हैं।
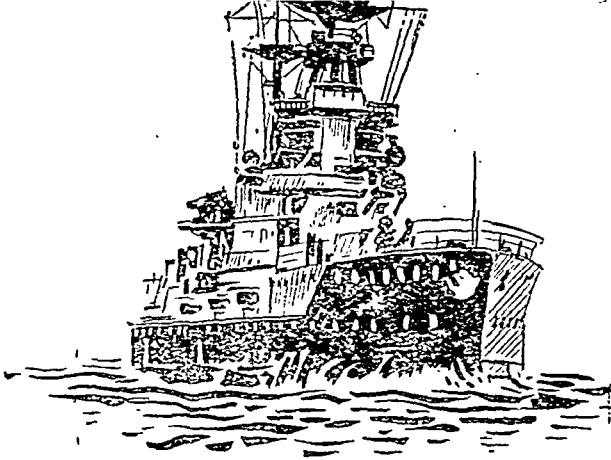
लड़ाई में भी कई तरह के जहाज़ काम में आते हैं। उनमें से कुछ जहाज़ इतने बड़े होते हैं कि उन पर हवाई जहाज़ों के उड़ने और उतरने के लिए अड्डे बने होते हैं। कुछ जहाज़ों पर गोला फेंकने वाली तोपें रहती हैं। दुश्मन के जहाज़ों को चुपचाप नीचे से सुरंग लगाकर डुबा देने के लिए पानी के अंदर चलने वाली पनडुब्बियाँ भी होती हैं।

इस समय संसार के सब से बड़े जहाज़ 'क्वीन एलिज़ाबेथ' और 'क्वीन मेरी' है। उन दोनों का वज़न अस्सी अस्सी हज़ार टन से भी अधिक है। जहाज़ का वज़न जानने के लिए यह देख लिया जाता है कि जहाज़ समुद्र में कितनी जगह घेरता है। उतनी जगह के पानी के वज़न के बराबर ही जहाज़ का वज़न होता है। क्वीन एलिज़ाबेथ ९७७ फ़ुट लम्बा और ११८ फ़ुट चौड़ा है। उसमें १६ इंजन हैं, जो ४ पंखों को चलाते हैं। हर पंखे का वज़न ३२ टन है। उस जहाज़ में दो हज़ार मुसाफ़िरों और लगभग बारह सौ कर्मचारियों के लिए जगह है। उस पर दूसरी सुविधाओं के अलावा डाकखाना, बैंक और दूकानें भी हैं।

पानी के जहाज़ों ने हमें समुद्र के अनेक छोटे बड़े टापुओं तक पहुँचने में बड़ी सहायता की है। नए देशों की खोज में भी उन्होंने सदा हाथ बँटाया है। कोलम्बस ने पानी के जहाज़ में बैठकर ही अमरीका की खोज की थी। इस तरह संसार के देशों को एक दूसरे के पास लाने में पानी के जहाज़ों ने बहुत बड़ा काम किया है।

४—हवाई जहाज़

आदमी सदा से चिड़ियों की तरह हवा में उड़ने का सपना देखता आया है। हर देश और हर जाति में ऐसी कहानियाँ
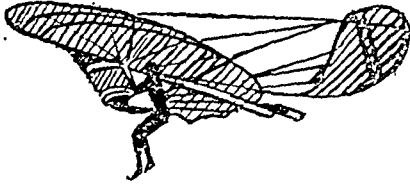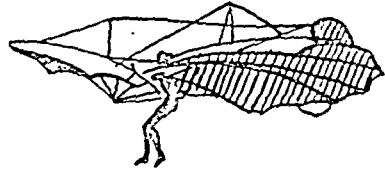
हैं जिनमें किसी न किसी रूप में उड़ने वाले मनुष्यों या उड़न खटोलों का जिक्र आता है। हमारे देश में भी रामायण और दूसरी पुस्तकों में ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं है। ये सब कहानियाँ कहाँ तक सच्ची हैं, यह कहना बहुत कठिन है। पर यह बात निश्चय है कि अब से कोई ढाई सौ साल पहले बैलूनों या गुब्बारों की सहायता से हवा में उड़ने की कोशिश की गई। शुरू में इन गुब्बारों में गर्म हवा भरी गई थी, पर वह भारी होती थी। इसलिए बाद में हाइड्रोजन और हीलियम नाम की हलकी गैसें भरी जाने लगीं। गैस के प्रयोग से एक जगह से दूसरी जगह जाने के

लिए जेपलिन भी बनाए गए जो मशीनों की सहायता से चलते थे। लेकिन उनमें आग लग जाने का भय रहता था।

अमरीका के दो निवासी जो भाई भाई थे, आज से कोई ५० वर्ष पहले हवाई जहाज में बैठकर उड़े। वे राइट भाइयों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

उस समय से लेकर आज तक विज्ञान दिन पर दिन उन्नति कर रहा है और एक से एक तेज उड़ने वाले हवाई जहाज बनते जा रहे हैं। आज हमारे
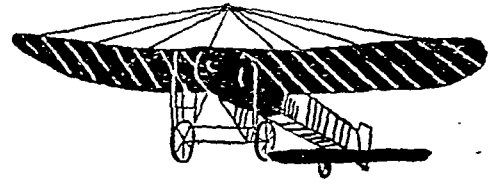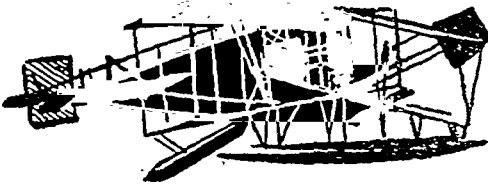
१९०९ का हवाई जहाज

पास जो हवाई जहाज हैं, वे कुछ घंटों में ही हमें सैकड़ों मील ले जाते है। विज्ञान की इस खोज ने हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। अब

पानी पर उतरने वाला पहला हवाई जहाज

संसार के सब देश एक दूसरे के बहुत पास आ गए हैं। दुनिया के सब देश एक दूसरे की जरूरतें पूरी करने लगे हैं और उनकी आपस की जानकारी भी बढ़ गई है।
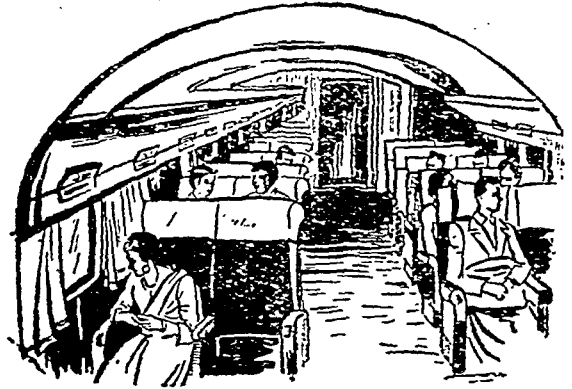
हवाई जहाज के भीतर की झाँकी

ऐसे ऐसे हवाई जहाज भी बनाए गए हैं जो हवा और पानी, दोनों में आसानी के साथ चल सकते हैं। लड़ाई के दिनों में कई तरह के नए हवाई जहाज बनाए गए। वे हवाई जहाज शत्रु देशों पर बम गिराने, बड़ी बड़ी मजबूत छतरियों की सहायता से फौज उतारने और लड़ाई का सामान लाने ले जाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। उन्हीं की सहायता से बाढ़ वाले स्थानों में भोजन का सामान पहुँचाया जाता है, टिड्डी दल का सामना किया जाता है और जंगल की आग बुझाई जाती है। आजकल हवाई जहाज डाक लाने ले जाने का काम भी करते हैं।

आखिर हवाई जहाज है क्या ? हवाई जहाज का ढांचा और उसका

इंजन दोनों ही उसे उड़ने में सहायता देते हैं। उसके पंख और उसका ढाँचा इस तरह का बनाया जाता है कि हवा में दौड़ते समय उसे ऊपर जाने की शक्ति अपने आप मिलती रहती है। जितनी तेजी से वह दौड़ेगा, उतना ही ऊपर जाने का जोर उसे मिलता जाएगा। जिस तरह नाव को आगे बढ़ाने के लिए हम पानी को पीछे फेंकते हैं, उसी तरह हवाई जहाज के पंखे हवा को पीछे फेंकते हैं। वे पंखे मशीनों और पेट्रोल की सहायता से बहुत ही तेजी से चलाए जाते हैं। हवाई जहाज को उड़ने और उतरने में भी उनसे सहारा मिलता है। हवाई जहाज अपनी पूँछ से दिशा बदलता है। उसे उड़ने के लिए पहले कुछ दूर तक तेजी से जमीन पर दौड़ना पड़ता है। पर ऐसे भी हवाई जहाज है जो दौड़े बिना ही ऊपर
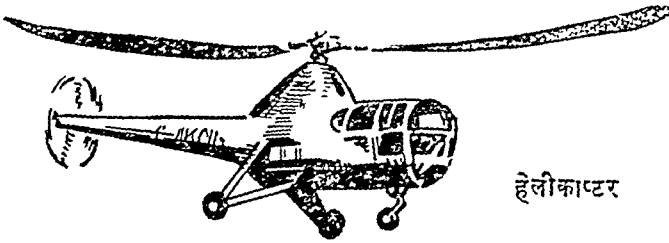
हेलीकाप्टर

चढ़ जाते हैं। उन्हे 'हेलीकाप्टर' कहते हैं। उनके ढांचे के ऊपर एक बड़ा
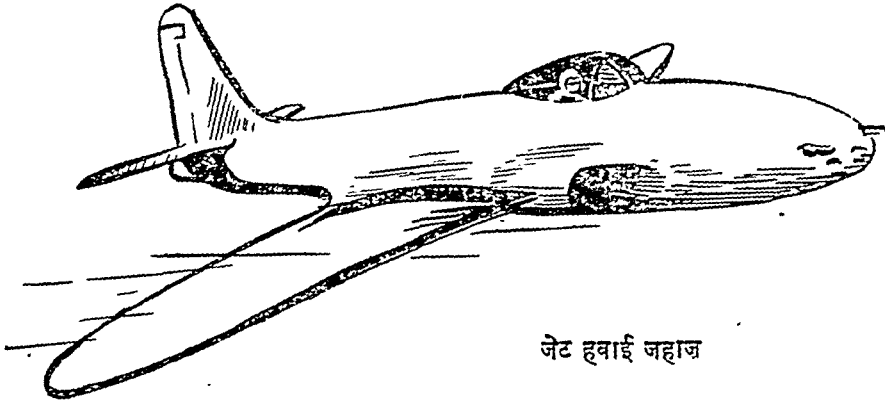
जेट हवाई जहाज

पंखा लगा रहता है। अब ऐसे भी हवाई जहाज बन गए हैं जिनमें पंखे

नहीं होते। वे भारी दबाव की गैस से चलते हैं। उन्हें 'जेट' हवाई जहाज़ कहते हैं। इस तरह के कुछ हवाई जहाज तो इतनी तेजी से दौड़ते हैं जितनी तेजी से आवाज एक जगह से दूसरी जगह पहुँचती है। आवाज़ एक घंटे में ७६० मील जाती है, एक मिनट में क़रीब १० मील और ६ सेकेंड में कोई एक मील।

दुनिया के सबसे बड़े हवाई जहाज का नाम है 'पहला ब्रेबेजीन'। उसके पंख २३० फ़ुट चौड़े और १८० फ़ुट लम्बे हैं। वह १०० मुसाफ़िरों को लेकर एक घंटे में ३०० मील की चाल से ५,००० मील तक जा सकता
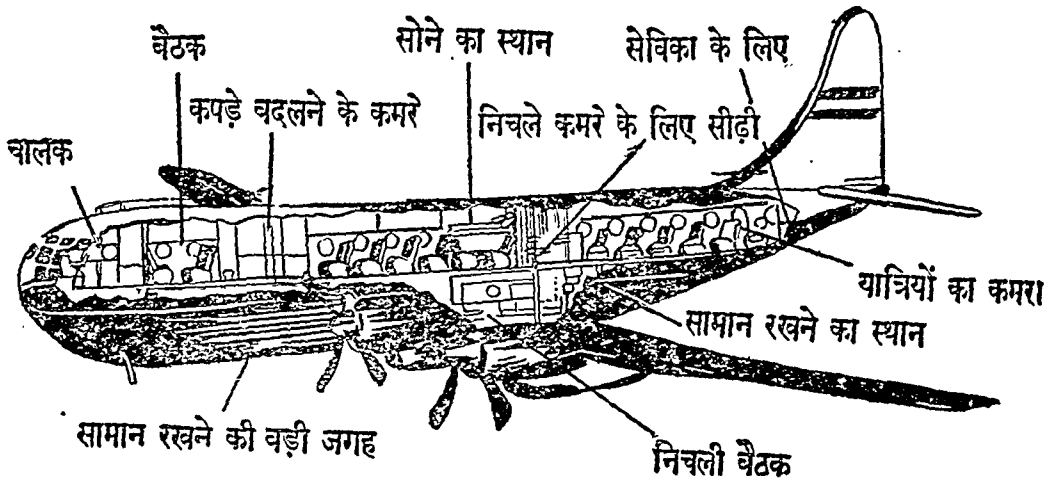
एक बड़ा जहाज

है। अब तक हवाई जहाज अधिक से अधिक दस मील की ऊँचाई तक पहुँच सके हैं। पर गुब्बारों में मनुष्य तेरह मील की ऊँचाई तक उड़ चुके हैं।

अब वैज्ञानिक एक ऐसा हवाई जहाज़ बनाने में लगे हैं जो धरती से उड़ कर चन्द्रलोक तक पहुँच सके और वह दिन दूर नहीं जब यह सपना सच होगा। उस समय हमारे विचार और हमारा जीवन किस तरह बदलेगा, यह कहना बहुत कठिन है।

५—बिजली

बिजली विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। उसने हमें काम और आराम की ऐसी ऐसी चीजें दी हैं जिनकी अब से ६०-७० साल पहले किसी ने कल्पना भी न की थी। किसे मालूम था कि यह अद्भुत शक्ति हमारे जीवन का एक जरूरी अंग बन जाएगी। बटन दबाते ही अँधेरे में उजाला हो जाता है। बिजली के पंखों और बिजली की अँगीठियों ने गर्मी सर्दी का केवल नाम ही रहने दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि न कोयले का धुआँ सहना पड़ता है, न तेल की बदबू। बिजली के बिना रेडियो, सिनेमा, तारघर और टेलीफ़ोन कैसे चल सकते थे?

आजकल रेलगाड़ियाँ और जहाज भी बिजली से चलने लगे हैं। सब तरह के कारखानों में बड़ी बड़ी मशीनें बिजली से चलती हैं। उसी की सहायता से एक्सरे की मशीन हमारे शरीर के भीतर की तस्वीर उतार देती है।

बिजली बहुत आसानी से काम में लाई जा सकती है और सुभीते के साथ तारों की सहायता से दूर दूर तक पहुँचाई जा सकती है। बिजली दो तरह की होती है। एक रगड़ से पैदा होती है। कंघियाँ जब रेशम या ऊनी कपड़ों पर रगड़ी जाती हैं, तो उनमें कागज जैसी चीजें उठालेने की शक्ति आ जाती है। रगड़ से पैदा होने वाली इसी शक्ति से बिजली बनती है। बादलों की रगड़ से भी बिजली पैदा होती है। मगर आकाश की वह बिजली हमारे अधिक काम नहीं आती। वह प्रायः हानि ही पहुँचाती है।

दूसरी तरह की बिजली वह है जिससे बिजली के बल्ब आदि जलाए

जाते हैं। वह हमारे बहुत काम की है। वह भी दो तरह की होती है। एक वह जो एक ही दिशा में चलती है। उसे डी० सी० कहते हैं। दूसरी वह जो बारी बारी से दोनों दिशाओं में आगे पीछे चलती है। यह दूसरी तरह की बिजली पहले एक दिशा में आगे बढ़ती है और फिर कम होती हुई बिल्कुल समाप्त हो जाती है। उसके बाद वह दूसरी दिशा में बढ़ने लगती है और फिर उसी तरह समाप्त हो जाती है। इस तरह दोनों दिशाओं में बढ़ने और समाप्त होने को बिजली का एक चक्कर कहते हैं। बिजली एक सेकेंड में लगभग ५० चक्कर लगाती है। इस दूसरी तरह की बिजली को ए० सी० कहते हैं। वह डी० सी० से ज्यादा ख़तरनाक होती है। यदि डी० सी० का तार छू जाय, तो वह झटका देकर गिरा देता है। उससे चोट तो लग सकती है, पर मरने का डर नहीं रहता। लेकिन ए० सी० का तार छू जाने से वह अपने साथ चिपका लेता है। इसलिए प्रायः मर जाने का भय रहता है। ऐसा ख़तरा होने पर भी सस्ती होने के कारण ए० सी० बिजली अधिक काम में लाई जाती है। कल कारखाने ए० सी० बिजली से ही चलाए जाते हैं।

बिजली दो तरह से पैदा की जाती है। एक बैटरियों से और दूसरी डायनेमो नाम की एक मशीन से। बैटरियों में बिजली रासायनिक क्रिया से पैदा होती है। डायनेमो में चुम्बक लगे होते हैं। जब इन चुम्बक वाले लोहों के अंदर तार तेजी से घुमाए जाते हैं तो उनमें अपने आप ही बिजली पैदा हो जाती है। डायनेमो को चलाने के लिए ऊँचाई से गिरते हुए पानी से सहायता ली जाती है।
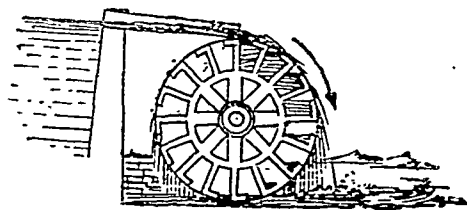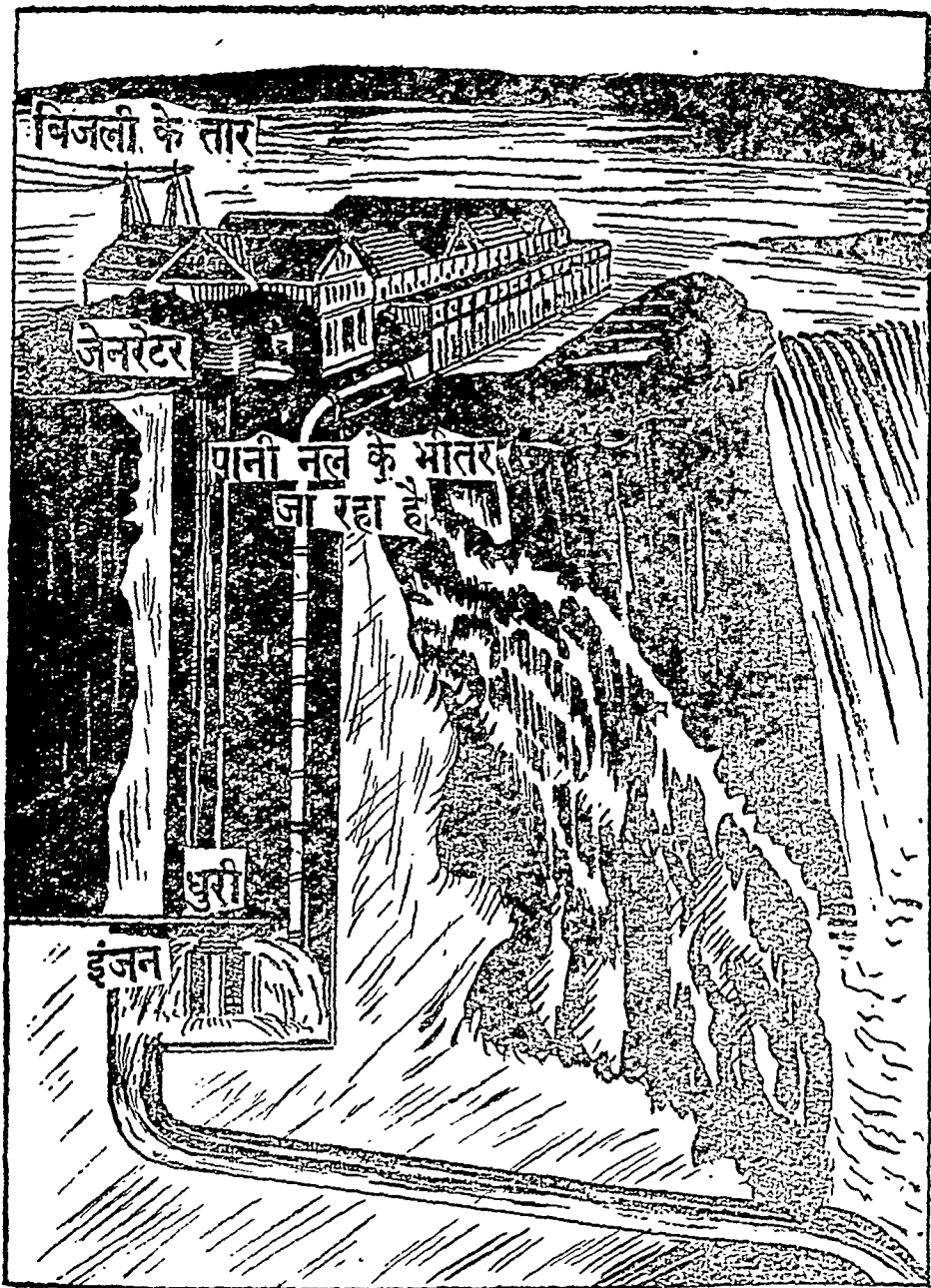
गिरता हुआ पानी बिजली पैदा करने का एक सस्ता साधन है। पहले एक या कई नलों के द्वारा पानी का बहाव इस प्रकार बदल दिया जाता है कि वह बहुत जोर से गिरने लगे और इंजन चल सके। इंजन चलने पर धुरी घूमने लगती है और बिजली पैदा करने वाली मशीन (जेनरेटर) काम करने लगती है। वह बिजली तारों से दूर दूर तक गांवों और शहरों को भेजी जाती है।

इस पानी पर बाँध भी बनाए जाते हैं। जहाँ पानी की शक्ति नहीं मिल सकती, वहाँ डायनेमो तेल या भाप से चलते हैं।

डायनेमो की ईजाद इंग्लैंड निवासी फैरेडे ने की थी। फैरेडे की खोज की बदौलत आज हम बड़े बड़े कारखाने चलाते हैं। घंटों का काम मिनटों में हो जाता है और संसार उन्नति की ओर बढ़ रहा है।
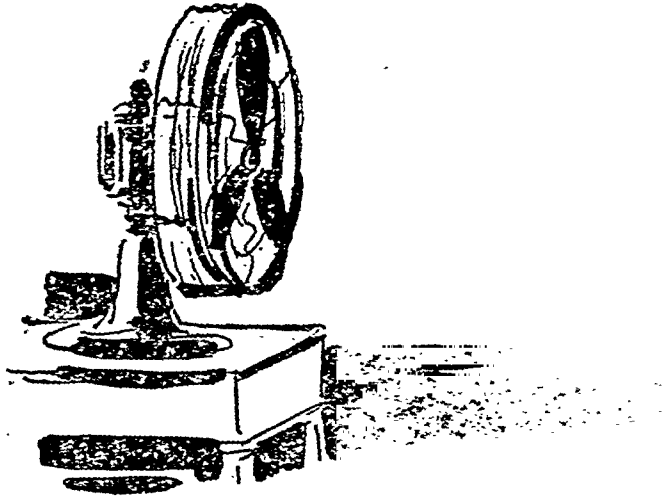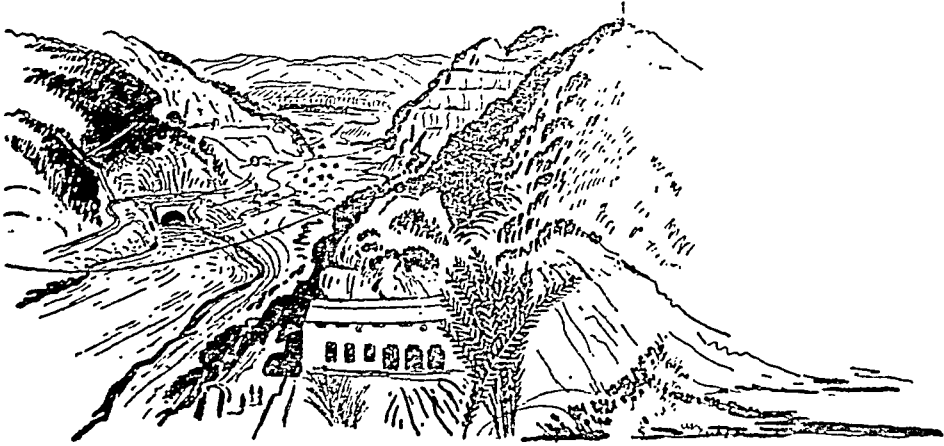
२५

भाखड़ा बाँध

आदमी हजारों बरस से संसार की सब वस्तुओं को अपने लिए उपयोगी बनाने की फ़िक्र में रहा है। इसीलिए उसने संसार को सुन्दर और सुखदायी बनाने की बराबर कोशिश की है।

बिजली को 'आविष्कारों की माँ' कहा जाता है, क्योंकि उसके बिना दूसरी न जाने कितनी खोजें हो ही नहीं सकती थीं। बिजली भाप या तेल की शक्ति से भी पैदा की जाती है और पानी की शक्ति से भी तैयार होती है। पानी से बिजली बनाना सबसे सस्ता है।

पानी में कितनी शक्ति है, इसका पता तालाब या नदी के धीरे धीरे बहते हुए पानी से नहीं लगाया जा सकता। उस शक्ति का कुछ अनुमान

उस बाढ़ से लगाया जा सकता है जो अपने साथ गाँव के गाँव बहा ले जाती है ।

बहुत पुराने समय से हमारे देश में पानी की शक्ति से कोई न कोई काम लिया जाता रहा है । पहले नदियाँ माल लाने और ले जाने का सब से बड़ा साधन थीं । बंगाल और बिहार में अब भी नावें इस काम में आती हैं । पहाड़ी इलाकों में झरनों से आटा पीसने की चक्कियाँ और लकड़ी चीरने की मशीनें चलती हैं ।

नदियों पर बाँध बनाने से पानी की अपार शक्ति देश के लिए बड़ी लाभदायी बन जाती है । बाँध से नदी का पानी रोक देने पर बाढ़ का डर जाता रहता है और उस पानी से सिंचाई की जाती है । इसके अलावा उस पानी से बिजली भी बनाई जा सकती है । हमारे देश में कई स्थानों पर इस तरह बिजली तैयार की जा रही है । इस काम के लिए कुछ नए बाँध भी बन रहे हैं । भाखड़ा का बाँध उनमें से एक है ।

भाखड़ा बाँध पंजाब के अम्बाला जिले में रूपड़ से ४५ मील ऊपर सतलज नदी पर बनाया गया है । इस जगह सतलज ऐसी घाटी में से गुज़रती है जहाँ उसके दोनों किनारों पर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं । कम से कम खर्च में ऊँचे से ऊचा बाँध बनाने के लिए ऐसा स्थान बहुत अच्छा रहता है । इसीलिए यहाँ ६८० फुट ऊँचा बाँध बनाया गया है । भाखड़ा बाँध ऊँचाई में संसार भर में दूसरे दर्जे का है । सबसे ऊँचा बाँध अमरीका का ७३० फुट ऊँचा 'हूवर बाँध' है । भाखड़ा बाँध नीचे से ६५० फुट और ऊपर से ४० फुट चौड़ा है ।

यह बड़ा काम शुरू करने से पहले रूपड़ से भाखड़ा तक ४५ मील

भाखड़ा नंगल बांध का नक्शा
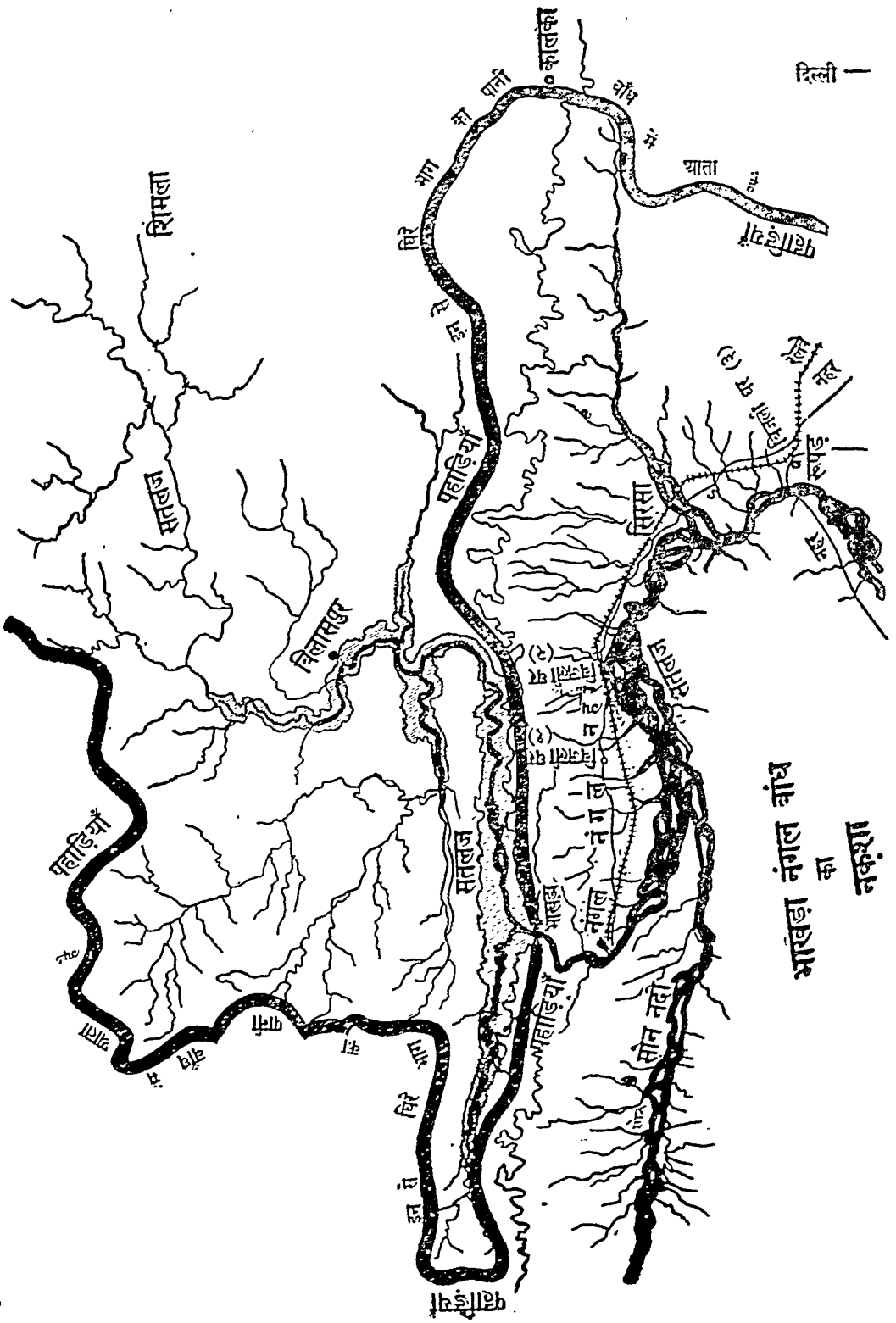
लम्बी रेल की बड़ी लाइन और एक बड़ी सड़क बनानी पड़ी। मजदूरों और दूसरे काम करने वालों के लिए भाखड़ा से ७ मील नीचे की ओर नंगल में एक छोटा सा शहर बसाया गया। बाँध बनवाने से पहले नदी का बहाव बदलना पड़ता है। इसीलिए भाखड़ा में ५० फ़ुट चौड़ी दो सुरंगें बनाई गईं। उनमें से एक २,५७५ फ़ुट और दूसरी २,३८७ फ़ुट लम्बी है। नदी का पानी इन सुरंगों में से निकाल कर बाँध की नींव की खुदाई का काम शुरू हुआ। नींव १५० फ़ुट गहरी है।

भाखड़ा से ७ मील नीचे नंगल नामक स्थान पर सतलज नदी पर एक छोटा बाँध बना कर एक नहर निकाली गई है। उस नहर पर दो बिजली घर बनेंगे और वह नहर पंजाब, पेप्सू और बीकानेर की बंजर भूमि को सींचेगी। भाखड़ा बाँध बनाने का काम कितना बड़ा है, इसका
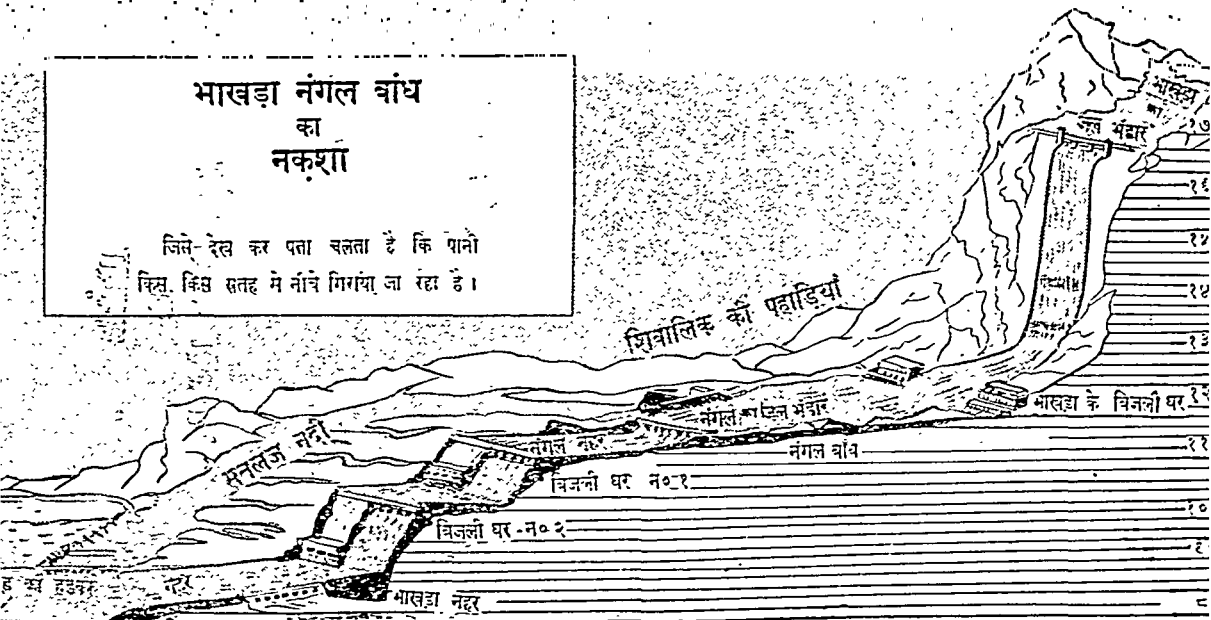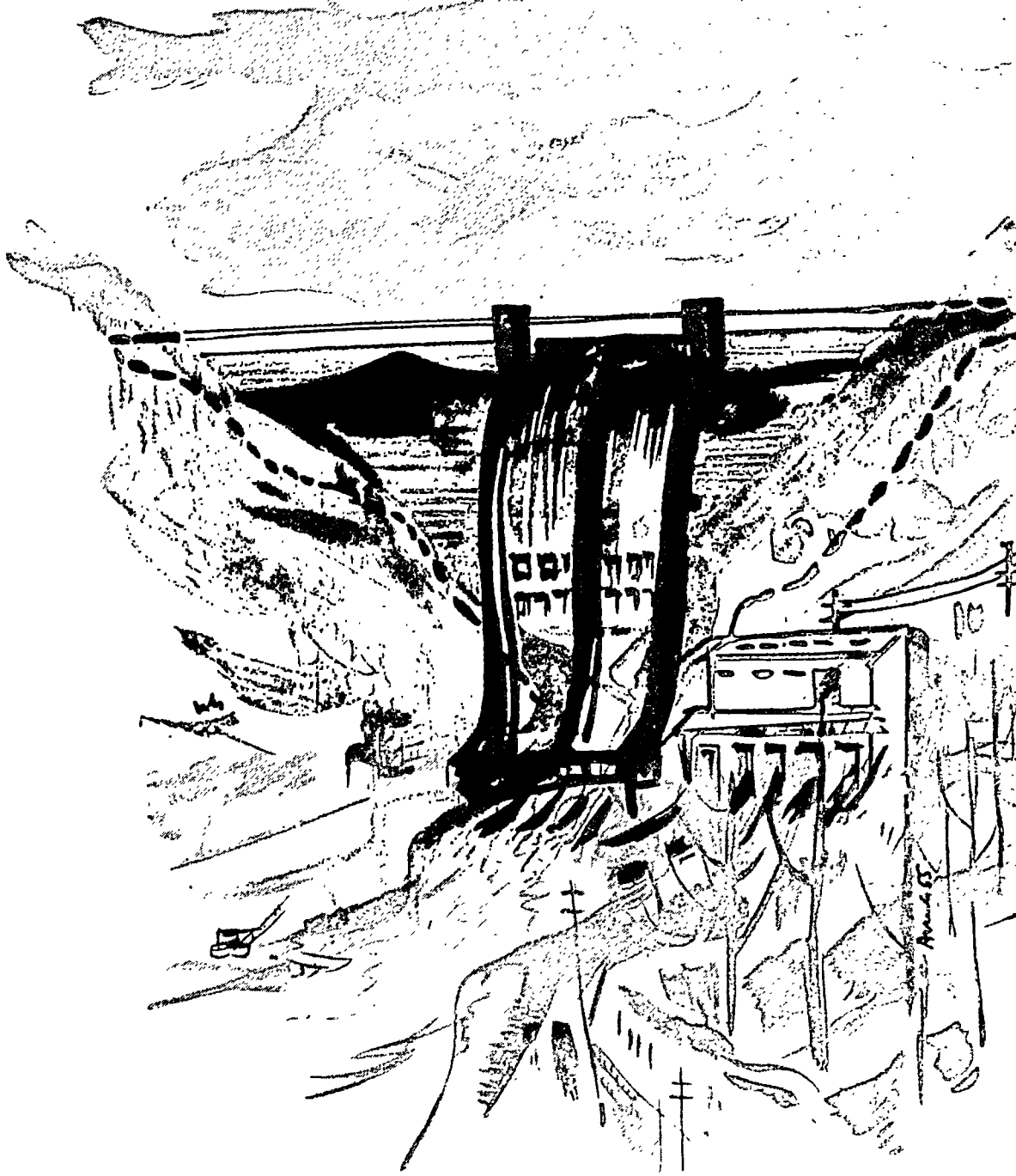
लाल रंग में भाखड़ा बाँध की रूपरेखा बताई गई है। पानी रोक देने से ५६ मील लम्बी और ४ मील चौड़

भाखड़ा
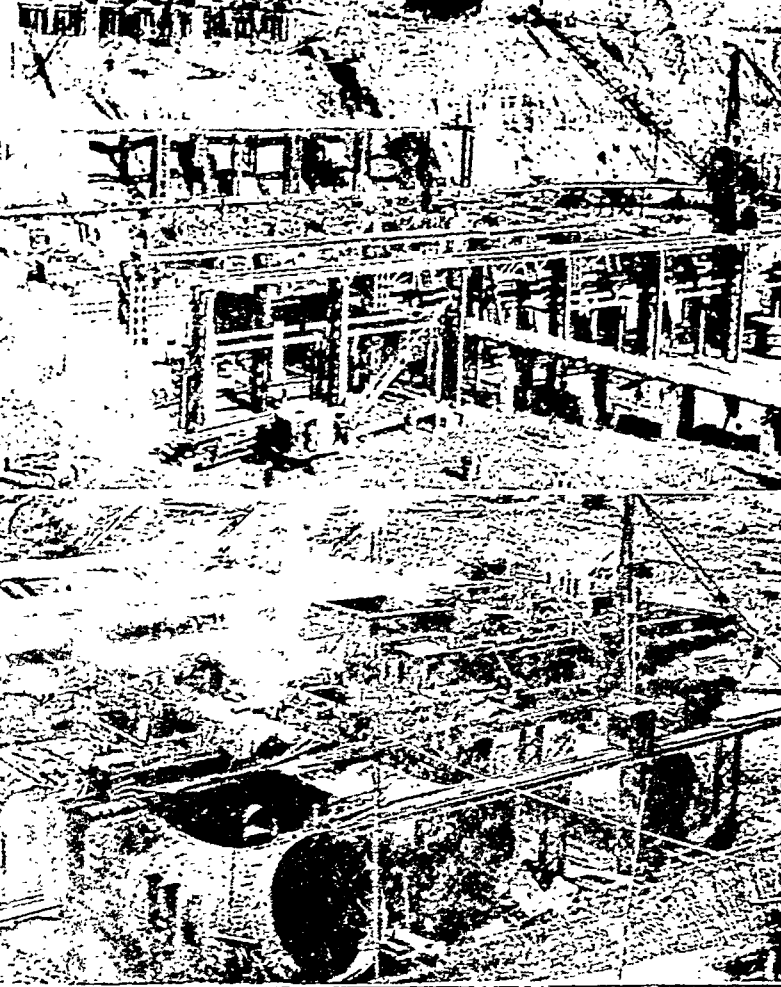
नंगल का बिजलीघर नं० १
ऐसे कई बिजलीघर बन रहे हैं।

१८ फुट व्यास के नल जिन के द्वा .
बिजलीघर में मशीनें चलाने के लि ,
पानी पहुँचाया जाएगा ।
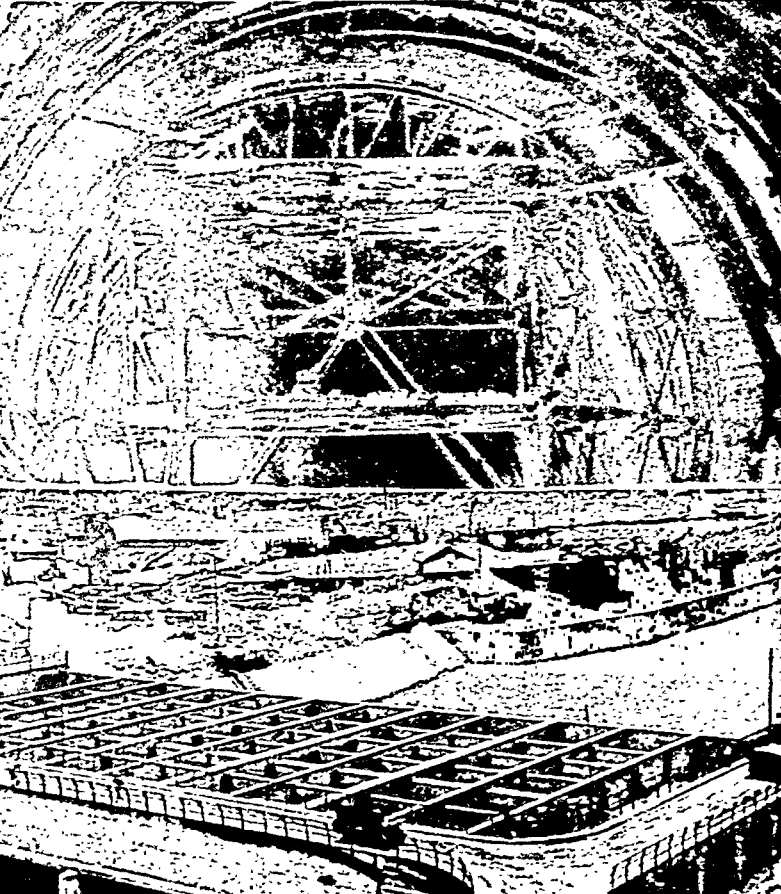
५० फुट व्यास की सुरंग जिस के
द्वारा नदी का बहाव मोड़ दिया
जाएगा । इस से बाँध बनाने में
सुभीता होगा ।

नंगल नहर, उसके ऊपर से बहता हुआ
नाला और आने जाने का रास्ता ।

कुछ अनुमान इन आँकड़ों से लगाया जा सकता है :

पत्थर की खुदाई	४० करोड़ घनफ़ुट
मिट्टी की खुदाई	३५० करोड़ घनफ़ुट
कंक्रीट की चुनाई	५० करोड़ घनफ़ुट
सीमेंट का खर्च	३ करोड़ बोरी
लोहा और इस्पात	३३ लाख मन

कहा जाता है कि इस बाँध की नहरों से करीब १ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई होगी जिससे हमारी अनाज की समस्या बहुत कुछ हल हो सकेगी। यह योजना पूरी हो जाने पर हर साल ३१६ लाख मन अनाज,
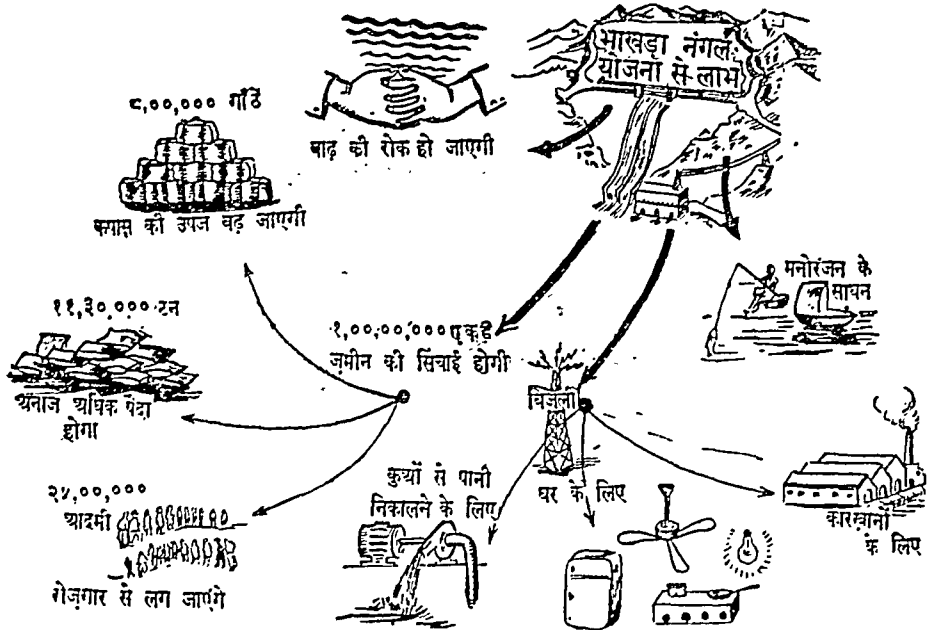
८ लाख गाँठ रूई और ४ करोड़ मन भूसा अधिक पैदा होगा और देश के उद्योग धंधों की उन्नति के लिए ४ लाख किलोवाट बिजली मिल सकेगी।

भाखड़ा बाँध से जो झील बनेगी वह ५६ मील लम्बी और ४ मील चौड़ी होगी। इस झील से मछली का व्यापार भी बढ़ सकेगा।

इस पूरी योजना पर १५१ करोड़ ४० लाख रुपए खर्च होंगे। ऐसा अंदाजा है कि यह सारा खर्च १२ साल में निकल आएगा। इसीलिए पाँच साला योजना में इस बाँध को सब से पहला स्थान दिया गया है।
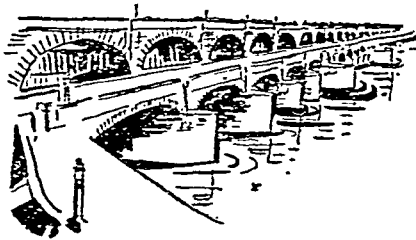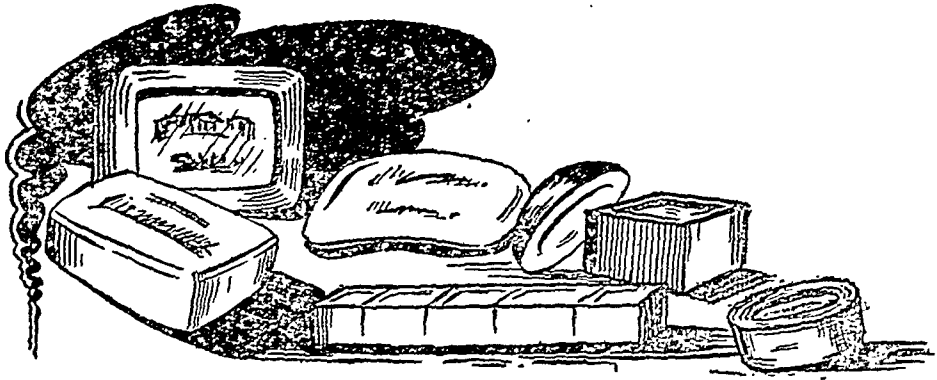
२६

साबुन बनाना

प्रतिदिन काम में आने वाली यह चीज़ हर कोई अपने हाथ से बना सकता है। तरीक़ा सीखने की देर है। फिर तो कुछ घंटों में ही महीने भर का साबुन आसानी से तैयार हो जाता है।

इस लेख में थोड़े से शब्दों में यह बताया गया है कि कपड़े धोने और नहाने का साबुन किन तरीक़ों से बनाना चाहिए। साबुन बनाने में कुल चार चीज़ें काम में आती हैं :

१. तेल; २. खार, सज्जी मिट्टी, सज्जी खार या पापड़ खार और चूना; ३. पानी, और ४. नमक।

तेल : तेल कैसा हो और वह कितना रहे, यह इस बात पर

निर्भर है कि हम साबुन कैसा बनाना चाहते हैं। फिर यह भी देखना ज़रूरी है कि तेल ऐसा हो जो अधिक महँगा न पड़े। खाने के काम न आने वाले तेल से भी साबुन बनाया जा सकता है, जैसे महुआ, नीम और करंजा।

खार : सज्जी मिट्टी और दूसरे खार हर जगह आसानी से मिल जाते हैं। ये खार पड़े पड़े उपजाऊ ज़मीन को नुक़सान पहुँचाते हैं। अगर इनसे कास्टिक सोडा बना लिया जाय, तो कितना अच्छा हो। सज्जी मिट्टी को गरम पानी में घोल कर गरम गरम ताज़े बुझे चूने का काफ़ी पानी मिला देना चाहिए। फिर उसे कुछ देर पड़ा रहने दें। थोड़ी देर में ऊपर कास्टिक सोडे की तह जम जाएगी।

पानी : पानी ऐसा बरतना चाहिए जो साफ़ सुथरा हो और खारा न हो।

नमक : नमक आमतौर पर साबुन को दूसरी चीज़ों से अलग करने या साफ़ करने के लिए डाला जाता है।

बनाने का तरीक़ा

तेल को मिलाने के कुछ नुस्खे नीचे दिए गए हैं। उनमें से किसी एक नुस्खे के अनुसार दो सेर तेल एक चौड़े मुँह वाले बर्तन में डालिए। बर्तन को जरा गरम करिए और उसमें कास्टिक सोडा डालिए। थोड़ी ही देर में तेल और कास्टिक सोडा मिलकर एक गहरी झाग सी उठाएंगे और वह ऊपर की सतह पर खौलती हुई नजर आएगी। हो सकता है कि शुरू में किसी कारण से झाग न उठे, पर तजर्बे से यह मुश्किल जल्दी दूर हो जाएगी। आग पर रखा हुआ यह घोल धीरे धीरे गाढ़ा होता जाएगा

श्रौर श्राख़िर उसमें से भाप उठनी वंद हो जाएगी। फिर सारा घोल उफन कर ऊपरी सतह पर जम जाएगा। उस समय काफ़ी सावधानी बरतनी चाहिए। कास्टिक सोडा थोड़ा थोड़ा साथ में मिलाते जाना चाहिए। थोड़े ही दिनों के तजर्बे से यह मालूम हो जाएगा कि कास्टिक सोडा कितना मिलाना काफ़ी है श्रौर किस समय उसका पूरा श्रसर तेल में श्रा चुकता है।

उसके बाद साबुन तैयार हो जाता है, पर उसमें श्रलग छूटा हुश्रा खार श्रौर ग्लिसरीन भी मौजूद रहती है। इसलिए उसमें नमक का पानी डालना ज़रूरी होता है, ताकि साबुन उन दोनों चीज़ों से श्रलग होकर नीचे बैठ जाए। पहले उसे ठंढा होने दिया जाता है श्रौर फिर उसकी घड़ाई की जाती है ताकि फालतू हिस्सा उसमें से छंट जाय। फिर साबुन को श्रलग निकाल कर नए सिरे से पिघलाया जाता है। तब साँचों में उसे डाल दिया जाता है। जब वह जम कर सख़्त हो जाता है तब साँचों से निकालकर उसकी छोटी छोटी टिकियाँ बना ली जाती हैं। सूखने के बाद उसे काम में लाया जा सकता है।

यदि सिर धोने का साबुन बनाना हो, तो श्राग के ऊपर के घोल को कई बार श्राँच देकर नीचे बैठने दिया जाता है श्रौर कास्टिक सोडे से उसे पूरी तरह श्रलग करना पड़ता है। उसके बाद मनचाहा रंग श्रौर सुगंध उसमें डाल सकते हैं। इस प्रकार नहाने श्रौर सिर धोने का साबुन तैयार हो जाता है।

तेल मिलाने के नुस्खे

१—नारियल का तेल	५० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	२५ फ़ी सदी

बिनौले का तेल	२० फ़ी सदी
रोज़िन	५ फ़ी सदी
कास्टिक सोडा	ज़रूरत के अनुसार
२—महुवे का तेल	६० फ़ी सदी
नारियल का तेल	२० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१५ फ़ी सदी
रोज़िन	२ फ़ी सदी
अरंडी का तेल	२ फ़ी सदी
३—नीम का तेल	४० फ़ी सदी
नारियल का तेल	४० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१० फ़ी सदी
महुवे का तेल	७ फ़ी सदी
रोज़िन	३ फ़ी सदी
४—पूनल का तेल	५० फ़ी सदी
नारियल का तेल	३५ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१५ फ़ी सदी
५—तिल का तेल	१५ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	५० फ़ी सदी
अरंडी का तेल	५ फ़ी सदी
महुवे का तेल	२० फ़ी सदी
६—चर्बी	४३ फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	३७ फ़ी सदी

नारियल का तेल	१६ फ़ी सदी
रोजिन	४ फ़ी सदी
७—कुसुम का तेल	४० फ़ी सदी
बिनौले का तेल	१४ फ़ी सदी
नारियल का तेल	१६ फ़ी सदी
रोजिन	३ फ़ी सदी
८—तिल का तेल	४० फ़ी सदी
नारियल का तेल	४० फ़ी सदी
बिनौले का तेल	२० फ़ी सदी
९—महुवे का तेल	६० फ़ी सदी
नारियल का तेल	२० फ़ी सदी
मूंगफली का तेल	१६ फ़ी सदी
रोजिन	४ फ़ी सदी
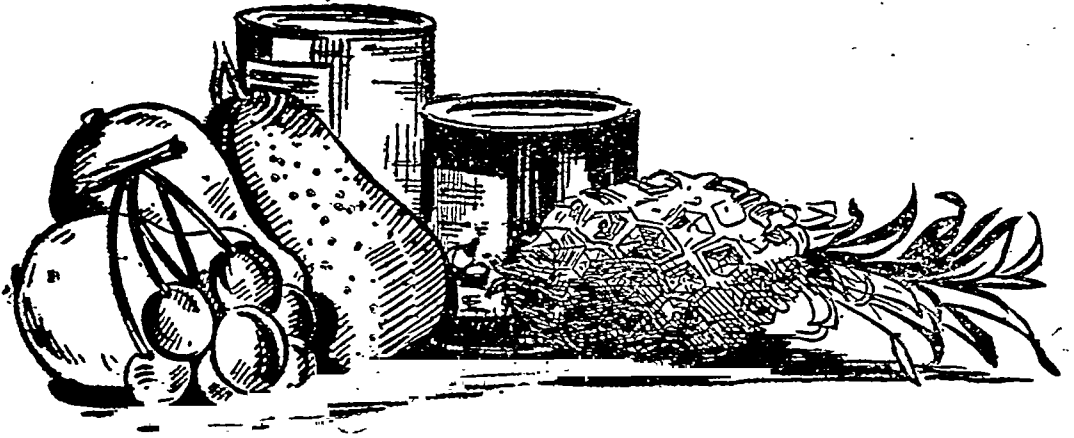
२७

फल संरक्षण

एक समय था जब हर फल अपनी फ़सल में शक्ल दिखाकर चला जाता था और अगली फ़सल आने तक उसकी राह देखनी पड़ती थी। कई फल तो ऐसे थे जो दूसरे देशों तक पहुँच ही नहीं पाते थे। सिर्फ़ किताबों से उनका नाम मालूम होता था। पर अब तरक्क़ी का युग है। अधिकतर फलों का आनंद अब हर मौसम और हर देश में लिया जा सकता है।

कहते हैं कि लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को लखनऊ का दसहरी आम बहुत पसंद था। वे आम की बहार में दसहरी की फाँकें कटवा कर शहद में रख देते थे और सर्दी के मौसम में उसे खाते थे। फल संरक्षण यानी फलों को सड़ने गलने से बचा कर रखना कोई नई बात

नहीं है। हर घर में अचार और मुरब्बे डाले जाते हैं। घर की स्त्री का यह गुण माना जाता है कि वह तरह तरह के अचार और मुरब्बे डालना जानती हो।

फल पड़े पड़े बिगड़ क्यों जाते हैं? सूखे मेवों की तरह वे देर तक क्यों नहीं रह सकते? देखा गया है कि ताज़े फलों में रहने वाले छोटे छोटे कीटाणु, जो अधिकतर उनके पानी के हिस्सों में होते हैं, फलों को देर तक नहीं रहने देते।

वे कीटाणु इतने छोटे होते हैं कि उन्हें सिर्फ़ खुर्दबीन से देखा जा सकता है। फलों, सब्ज़ियों, दूध और यहाँ तक कि हवा और पानी में भी इस तरह के कीटाणु होते हैं। फलों के भीतर रहने वाले कीटाणु बाहर की हवा के कीटाणुओं से मिलकर गैस पैदा करते हैं जिनसे उनमें सड़ांध पैदा होने लगती है।

पानी जितनी आँच पर उबलना शुरू हो जाता है, उस आँच को २१२ डिग्री की गर्मी कहते हैं। कीटाणु २१२ डिग्री की गर्मी में जीवित नहीं रह सकते। बहुत ठंढ भी उन्हें नहीं सुहाती। बस, फल संरक्षण के दो तरीक़े निकल आए। पहला वह जिसमें उबलते पानी के द्वारा फल के कीटाणु मार दिए जाते हैं। दूसरा ठंढ पहुँचाने का तरीक़ा, जिसमें फलों के रहने की जगह इतनी ठंढी बना दी जाती है कि कीटाणु सुस्त पड़े रहते हैं और बढ़ नहीं पाते। ठंढ पहुँचाने की एक खास अलमारी होती है जिसे रेफ्रिजरेटर कहते हैं। उसमें मशीन के द्वारा गर्मी को घटाने-बढ़ाने का प्रबंध रहता है। पर यह याद रखना चाहिए कि अधिक ठंढ से कीटाणु मरते नहीं, सिर्फ़ सुस्त हो जाते हैं।

कीटाणुओं को मारने के कुछ और भी तरीक़े हैं। जैसे कुछ ऐसे मसाले और खाने के तेज़ाब हैं, जो उनको नष्ट कर देते हैं और नए कीटाणु नहीं पैदा होने देते। अचार डालने के लगभग सभी तरीक़ों में ये मसाले बरते जाते हैं। राई, कलौंजी और नमक ऐसे ही मसाले हैं। तेल भी नए कीटाणु नहीं पैदा होने देता। अचार पर तेल की सतह एक चादर का काम करती है जिसे चीर कर हवा और हवा के साथ ही नए कीटाणु अचार तक नहीं पहुँच पाते। इसके सिवा यदि कुछ कीटाणु अचार में रह भी जाते हैं तो वे भी हवा के न पहुँचने पर मर जाते हैं। इस तरह तेल अचार को सुरक्षित रखता है। अचार में कभी कभी सफ़ेद रंग की फफूंदी पड़ जाती है। उसके दो कारण होते हैं। या तो अचार डालने से पहले सब्ज़ी और फलों को अच्छी तरह पानी में उबाला नहीं जाता और उसमें कीटाणु रह जाते हैं, या फिर तेल की कमी से नए कीटाणु पैदा हो जाते हैं। तेल में तली हुई चीज़ देर तक क्यों रहती है? इसीलिए कि आग की तेज़ आँच से एक तो कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, दूसरे उसके रोम रोम में तेल समा जाता है जिससे नए कीटाणु पैदा नहीं होने पाते।

अचार डालना फल को सुरक्षित रखने का ढंग तो है ही, उससे फलों में विशेष प्रकार का स्वाद भी आ जाता है। फलों को हम अलग अलग स्वाद के साथ खा सकते हैं। जैसे मीठी चटनी, मुरब्बा आदि।

फलों का वही स्वाद, रंग-रूप बनाए रखने के लिए डिब्बा बंदी का तरीका निकला है। केलिफ़ोर्निया, सिंगापुर और कश्मीर से बंद डिब्बों में सब तरह के फल संसार के दूर दूर देशों में पहुँचते हैं और अपने असली रूप, रंग, स्वाद और गुणों को अपने साथ ले जाते हैं। इन्हीं

तरीकों की कृपा से सिंगापुर का अनन्नास, कैलिफ़ोर्निया का स्ट्रावेरी और आड़ू, कश्मीर की नाशपाती, चेरी तथा उत्तर प्रदेश के आम हम किसी भी मौसम और किसी भी देश में खा सकते हैं।

फलों की डिब्बा बंदी इस प्रकार की जाती है। ताज़े और पके हुए फलों को धोकर एक खुले मुंह वाले डिब्बे में रख देते हैं। एक अलग बर्तन में पानी उबाल कर उसमें ज़रा सी चीनी छोड़ दी जाती है। चीनी नए कीड़े नहीं पैदा होने देती। पर बहुत थोड़ी डालनी चाहिए ताकि फल की अपनी मिठास दब न जाए। पानी इतना हो कि उसमें फल अच्छी तरह डूब जाएं। फिर उस उबलते हुए पानी यानी चाशनी को फलों वाले डिब्बे में डालकर डिब्बे को
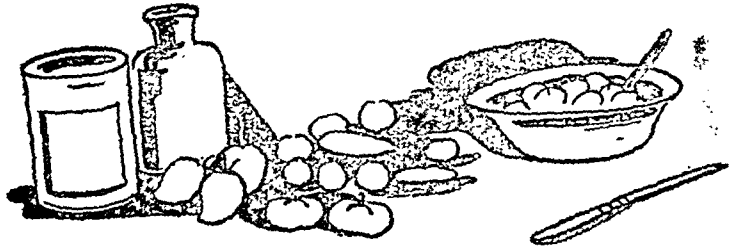
गर्म पानी में रखा जाता है। उससे फल के भीतर या बोतल के आसपास के सब कीड़े नष्ट हो जाते हैं। आख़िरी काम यह करना होता है कि डिब्बे को इस तरह मोहर लगाकर बंद कर दिया जाए कि बाहर की हवा डिब्बे में किसी प्रकार भी न जा सके। मोहर लगाने के लिए अब ऐसी मशीनें निकल चुकी हैं कि एक अनजान आदमी भी डिब्बे को आसानी से बंद कर सकता है। बंद करते ही डिब्बे को ठंढे पानी में रख देते हैं। ऐसा करने से डिब्बे के अंदर की चाशनी ठंढी हो जाती है।

मीठे पानी के घोल की जगह नींबू और नमक का पानी भी इस्तेमाल होता है, पर उन्हें अधिकतर सब्ज़ियों में बरता जाता है। बाकी सब

तरीक़ा एक जसा है। नींबू के पानी में ज़रा सी चीनी भी मिलाई जाती है। नींबू और नमक का प्रयोग ज़रा से फ़र्क के साथ अचार डालने में भी होता है। जिस चीज़ का अचार डालना होता है, उसकी फाँकें काट कर उनमें नमक मल दिया जाता है और धूप में सूखने को डाल दिया जाता है। फिर अचार डालते वक्त उनमें नींबू का रस अथवा सिरका डाल दिया जाता है।

डिब्बा बंदी अब बड़े पैमाने पर होने लगी है। उसमें मशीनों का प्रयोग होता है और सफ़ाई तथा स्वास्थ्य के नियमों का बहुत ध्यान रखा जाता है।
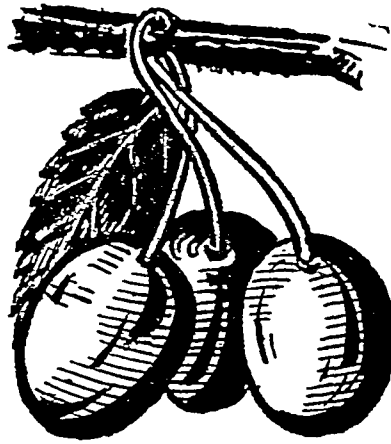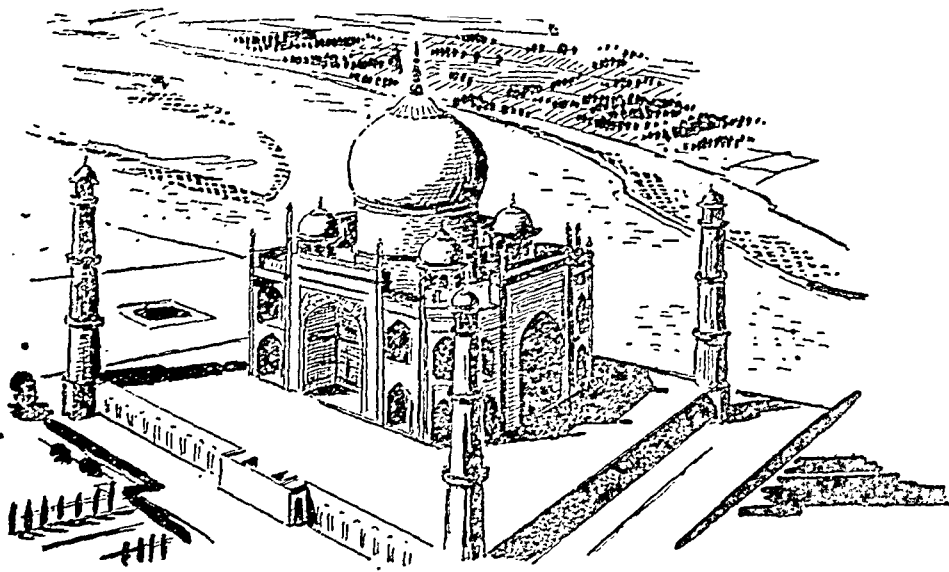
२८

ताज महल

आगरे का ताजमहल कई दृष्टि से संसार की सबसे अच्छी इमारत मानी जाती है। कुछ लोगों ने उसे 'पत्थर में कविता' कहा है। वह मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ की मलका मुमताज महल का मक़बरा है।

सम्राट् जहांगीर और उनकी प्रसिद्ध मलका नूरजहाँ का नाम सबने सुना है। अर्जमंद बानू या मुमताज महल नूरजहाँ की भतीजी थी। अर्जमंद बानू के पिता का नाम अबुलहसन था। वे आसफ़ जाह आसफ़जाही के नाम से मशहूर हैं। मुमताज महल का जन्म १५९३ ई० में हुआ। १० मई सन् १६१२ ई० को उनका विवाह शाहज़ादा ख़ुर्रम के साथ हुआ। शाहज़ादा

खुर्रम ही आगे चलकर शाहजहाँ के नाम से भारत के सम्राट् हुए । शाहजादा

और अर्जुमंद बानू एक दूसरे से बेहद प्रेम करते थे । खुर्रम ने जब नूरजहाँ के व्यवहार से दुखी होकर अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह किया, तो उन्हें देश से निकाल दिया गया । उस संकट काल में भी अर्जुमंद बानू ने उनका साथ न छोड़ा । इस प्रेम का फल उन्हें उस समय मिला जब उनका खुर्रम शाहजहाँ के नाम से तख्त पर बैठा । उस समय मुमताज का दर्जा बहुत ही ऊँचा था । यहाँ तक कि शाही मोहर उन्हीं के पास रहती थी ।

मुमताज महल बहुत ही दयालु और उदार थीं । कहा जाता है कि वे हजारों रुपए रोज दान में देती थीं । उन्होंने न जाने कितनी अनाथ और असहाय लड़कियों के दहेज का प्रबंध अपनी ओर से किया । जब बादशाह कहीं दौरे पर जाते या चढ़ाई करते, तो मलका भी उनके साथ होतीं । एक बार दक्खिन के गवर्नर खानेजहाँ लोदी ने बादशाह के खिलाफ़ सिर उठाया । बादशाह उसे दबाने के लिए दक्खिन की ओर गए मलका भी उनके साथ थीं । उसी समय बुरहानपुर (खानदेश) में उनकी १४ वीं संतान शाहजादी गौहरआरा पैदा हुई । अपनी उस संतान को जन्म देकर मलका सदा के लिए सो गई । यह घटना २८ जून १६३१ की है ।

शाहजहाँ पर इस घटना का बहुत असर हुआ । उनके शोक की सीमा

न थी। कहा जाता है कि शोक के कारण उनके बाल सफ़ेद हो गए और उन्होंने कई महीने तक राज काज या दरबारी जलसों में कोई भाग नहीं लिया।

मलका की लाश कुछ समय के लिए जैनाबाद के बाड़े में दफ़ना दी गई। आगरा पहुँचते ही सम्राट् ने मलका के मक़बरे के लिए एक जगह पसंद की। यह जगह जयपुर के महाराज जयचंद के अधिकार में थी। सम्राट् ने उसके बदले महाराज को दूसरी जगह उतनी ही जगह दे दी। ६ महीने बाद सम्राट् की आज्ञा से मलका की लाश आगरे लाई गई और एक बार फिर कुछ दिन के लिए ताज बाग़ के उत्तरी पच्छिमी कोने में एक गुम्बदनुमा इमारत में दफ़ना दी गई। आजकल इस जगह एक खुला हुआ कटहरा दिखाई देता है। कटहरे के चारों तरफ़ लाल पत्थर की दीवारें हैं। उसके पास ही एक बावली है।

उधर मक़बरा बनाने का काम तेज़ी से होने लगा। एशिया के सब देशों से बड़े बड़े कारीगर बुलाए गए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ताजमहल का नक़शा किसने बनाया, पर यह बात अवश्य कही जा सकती है कि उसे बनाने में शाहजहाँ के शाही इंजिनीयर, लाहौर के उस्ताद अहमद का बड़ा हाथ था। उस्ताद अहमद ने ही दिल्ली का लाल किला और जामा मस्जिद बनवा कर अपनी योग्यता दिखलाई थी। उनकी सहायता के लिए और भी कई बड़े बड़े इंजिनियर थे। पूरे काम की देखभाल मकरमत खाँ और मीर अब्दुल करीम नामक दो इंजिनीयरों को सौंप दी गई थी। ताज का गुम्बद तुर्की के इस्माइल खाँ ने बनाया था। दरवाजों पर लिखे हुए कतबे अपने समय के सबसे बड़े कातिब अब्दुल हक़,
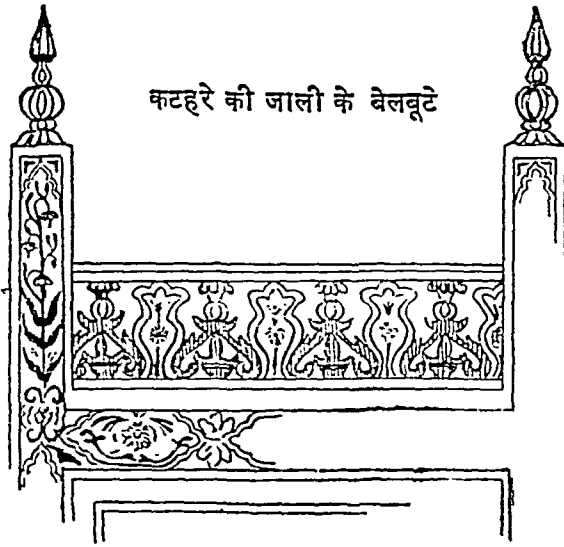
उपनाम अमानत खाँ शीराजी ने लिखे थे। इटली और फ्रांस के कारीगरों ने सुनहरे कटहरे पर सजावट का काम किया था। कहा जाता है कि इस सुनहरे कटहरे में ४० हज़ार तोला सोना लग गया था। बाद में शाहजहाँ ने सोने के कटहरे की जगह संगमरमर का

दरवाजों पर लिखे अरबी भाषा के कतवे का एक नमूना

कटहरा बनवा दिया जिसमें हीरे और जवाहरात जड़े हुए थे।

फ़ारसी में एक मशहूर किताब 'बादशाह नामा' के अनुसार ताजमहल की नींव में पत्थर और चूना भरा गया है। चबूतरा ईंटों और चूने के मसाले से बनाया गया है। चबूतरे के फ़र्श पर सफ़ेद संगमरमर के टुकड़े लगे हैं। इस तरह मक़बरे की पूरी इमारत बहुत पक्की नींव पर टिकी है।

असली मक़बरा, पच्छिम की ओर की एक मस्जिद, पूर्व की ओर उसका 'जवाब', एक मेहमान ख़ाना और दक्खिन में सदर दरवाज़ा ये सब इमारतें लगभग १७ वर्ष में बनीं। जिलौख़ाना और बाहर के खम्भे वगैरह

बनने में कोई ५ वर्ष लगे। ये सब बाद में बनाए गए थे।

ताजमहल में सफ़ेद संगमरमर काम में लाया गया है। यह पत्थर जयपुर और जोधपुर से मँगाया गया था। लाल पत्थर आगरे ही के रूपवास नामक स्थान से आया था।

ताज की कब्रें

ताजमहल और उसके साथ की इमारतों की लागत का सही अन्दाजा नहीं लग सकता। अनुमान किया जाता है कि इस काम पर उस समय लगभग ७ करोड़ रुपया खर्च हुआ होगा। ब्यौरा तो ५० लाख के खर्च ही का मिलता है, पर यह फुटकर कामों और लगभग २० हजार मजदूरों की मजदूरी पर ही खर्च हो गया था। इसमें बड़े बड़े कारीगरों और इंजीनियरों का वेतन शामिल नहीं है। वे सरकारी नौकर थे। इस रकम में पत्थरों और हीरे जवाहरातों का खर्च भी नहीं जोड़ा गया। वे चीजें या तो सरकारी थीं या शाहजहाँ की निजी सम्पत्ति थीं।

ताजमहल के आस-पास की इमारतें भी बहुत सुंदर हैं, लेकिन ताजमहल की सुंदरता से उनका क्या मुकाबला? इसीलिए दुनिया भर के दर्शक और कलाकार ताजमहल को देखकर दंग रह जाते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि ताजमहल दुनिया की सुंदर से सुंदर इमारतों में है। कला के पारखियों का कहना है कि ताजमहल की बनावट में अनेक देशों की कलाओं जैसे प्राचीन भारत, अरब, ईरान, चीन और
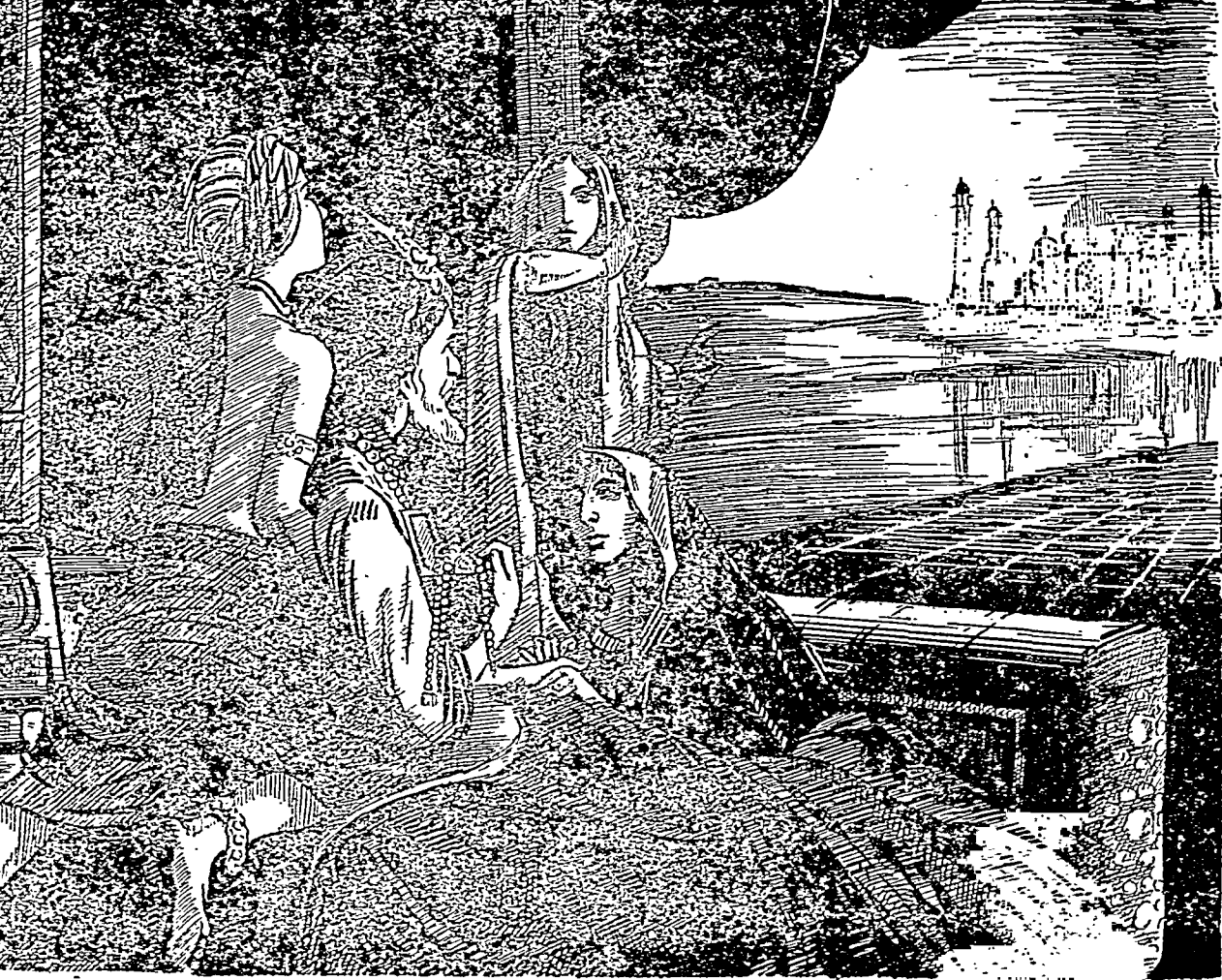
इटली की कला का सुंदर संगम देखने को मिलता है।

शाहजहाँ ने अपनी प्रिय बेगम की अमर यादगार के रूप में ताजमहल बनवाया था। वह ताज की कला पर ऐसा मुग्ध था कि अपने आखिरी दिनों में उसे देख देख कर सुख और शांति पाता था।

ताज महल

ताजमहल के दक्खिनी बाग़ का सुन्दर दरवाज़ा

दक्खिनी गोपुरम् का मंदिर

२९
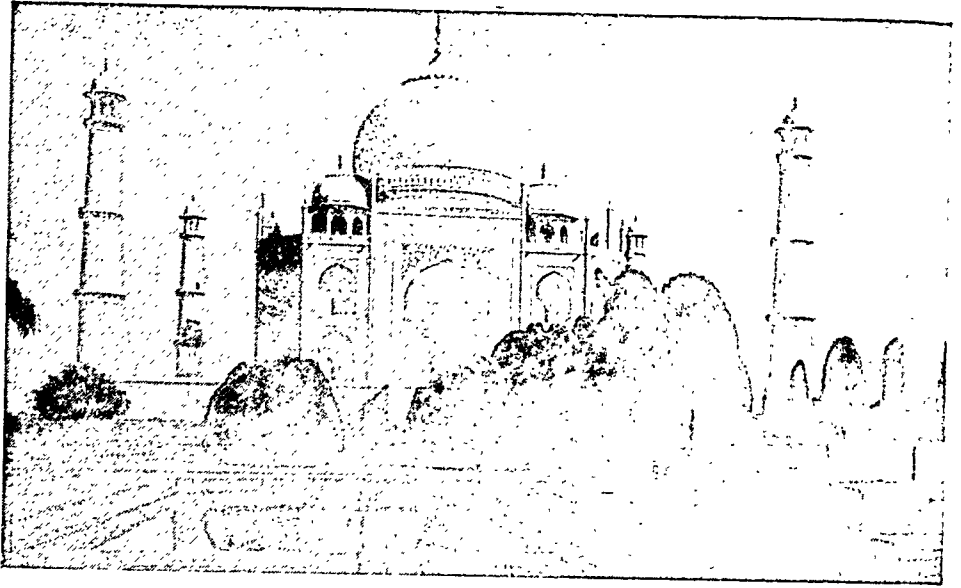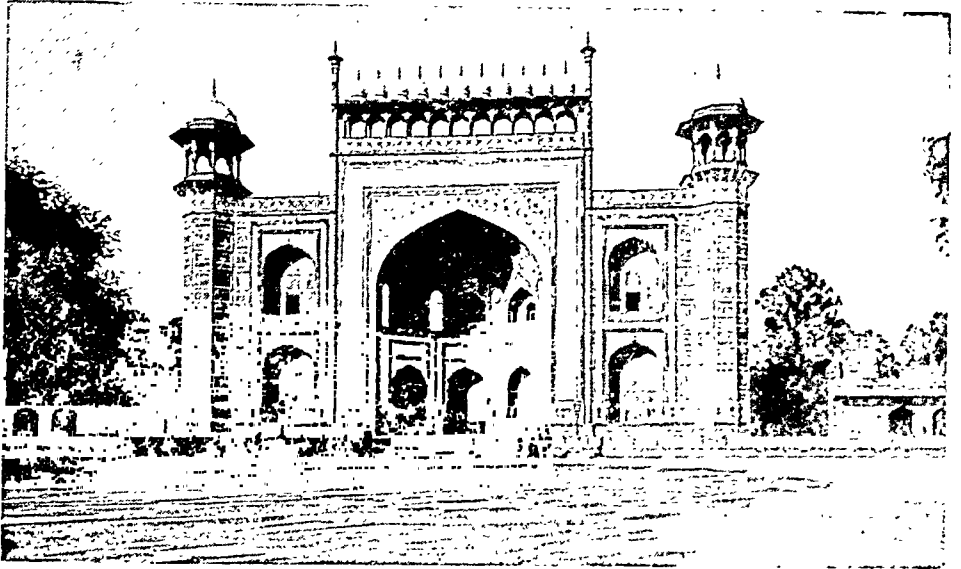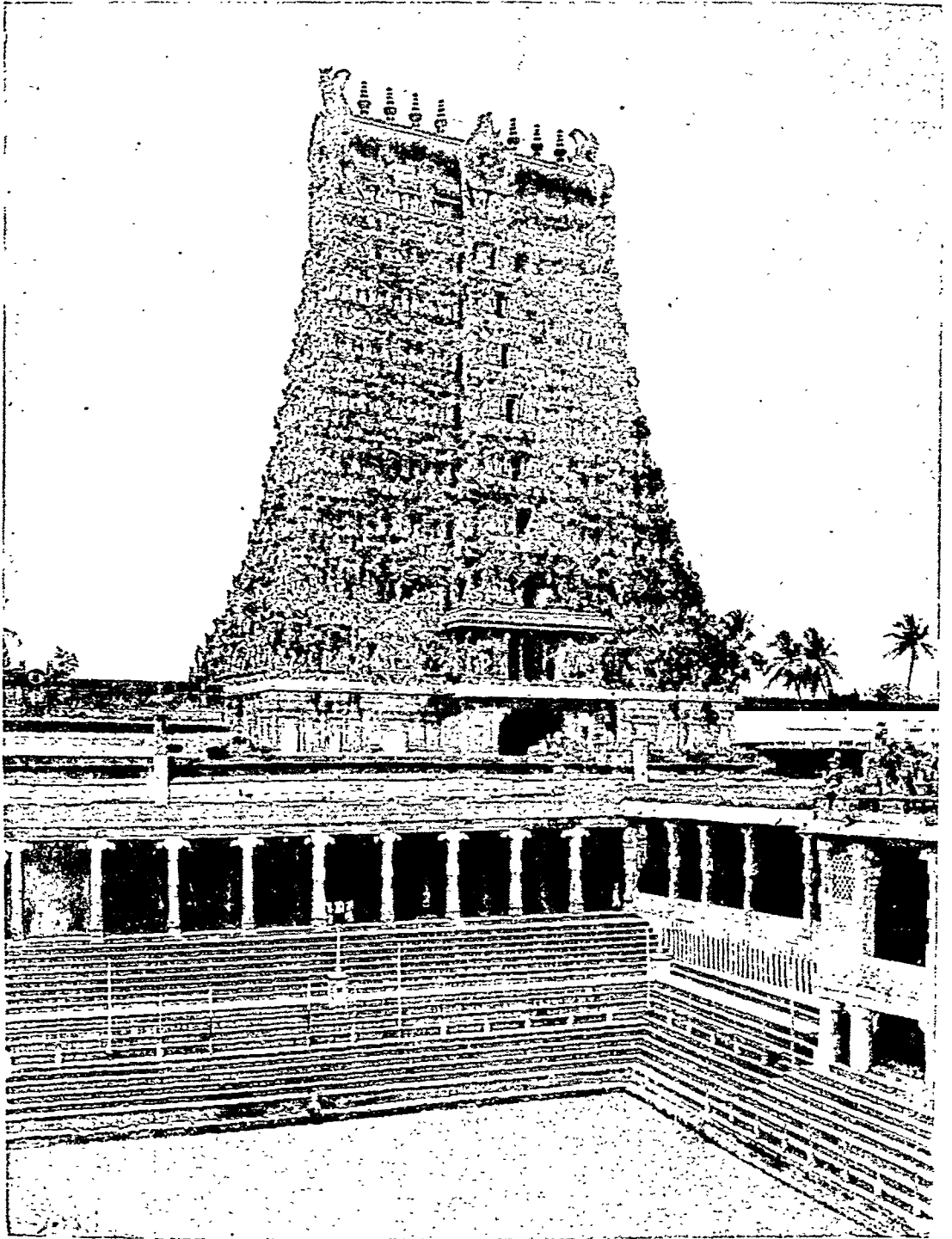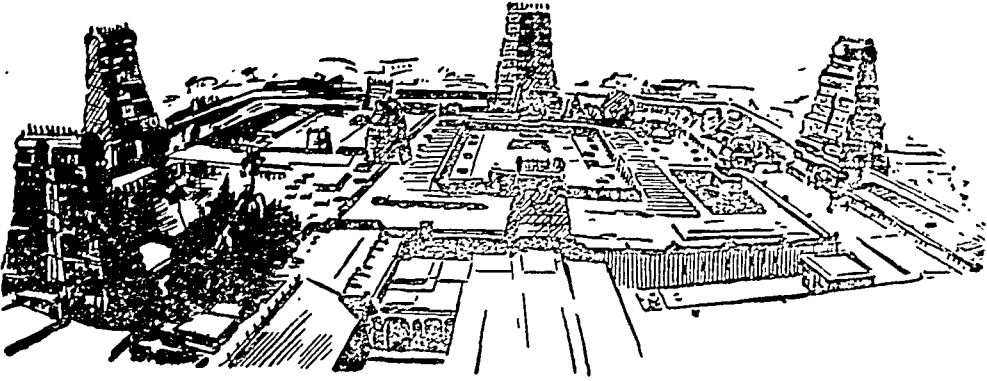
मदुरा का मंदिर

दक्खिन भारत में ईसा की सातवीं सदी से मंदिर बनने शुरू हुए और तब से लगभग अठारहवीं सदी तक मन्दिर बनाने की कला में बराबर उन्नति होती गई। दूसरी कलाओं की भाँति, मंदिर बनाने की कला भी राजवंशों के सहारे फली फूली और उन्हीं राजवंशों के नाम पर मन्दिरों की बनावट की अलग-अलग शैलियों यानी ढंगों के नाम पड़े। पल्लव, चोल, पांड्य, विजयनगर और नायक उनमें खास शैलियाँ हैं।

नायक शैली आखिरी है और सबसे अधिक विकसित या बढ़ी-चढ़ी है। उसका दूसरा नाम मदुरा शैली भी है। नायक राजाओं का राज्य १५५० ई० के आसपास शुरू हुआ। व्यापार, कला, साहित्य और धर्म का

पाँच शैलियाँ
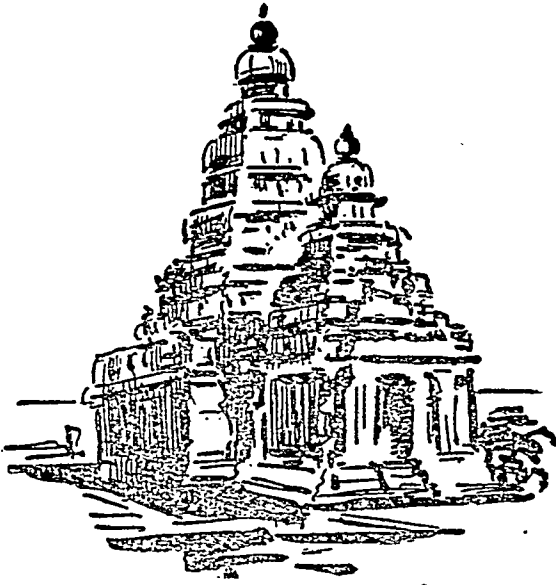
पल्लव—६०० से ६०० ई०
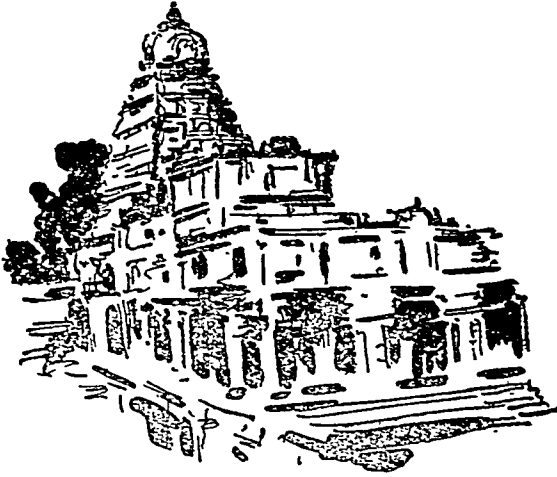
चोल··· ६०० से ११५० ई०

पाण्ड्य—११५० से १३५० ई०
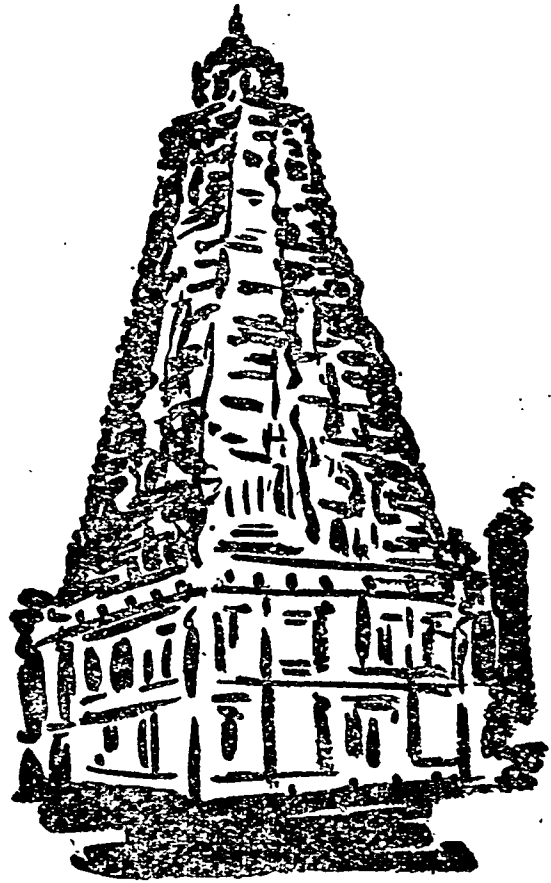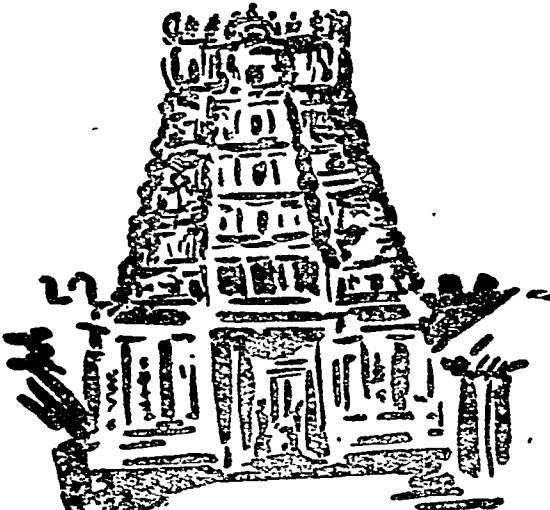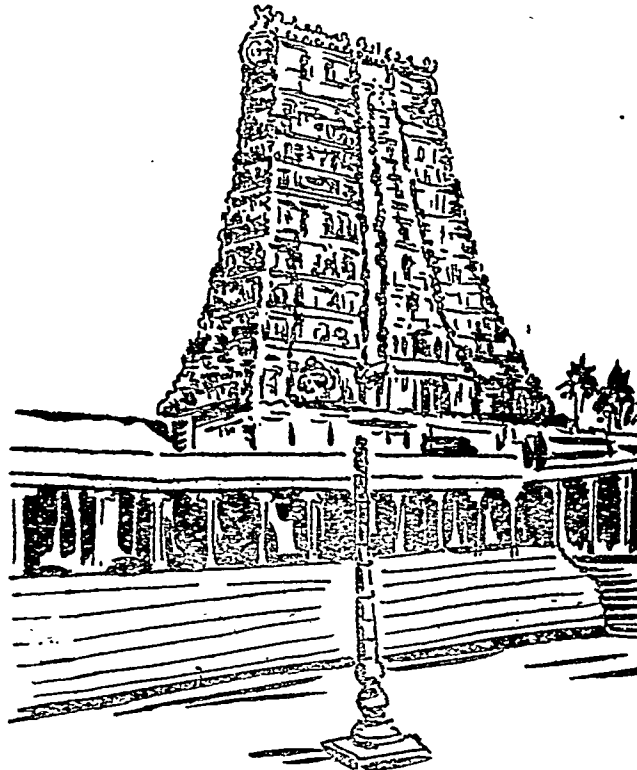
केन्द्र मदुरा, पांड्य राजाओं की राजधानी रहा था। नायक राजाओं ने भी उसे अपनी राजधानी बनाया। उनके राज्यकाल में बहुत अधिक मंदिर बने। त्रिचिनापल्ली, श्रीरंगम्, चिदम्बरम् और रामेश्वरम् के मन्दिर उनमें खास हैं। लेकिन मदुरा का मंदिर इस शैली का सबसे अच्छा नमूना है।
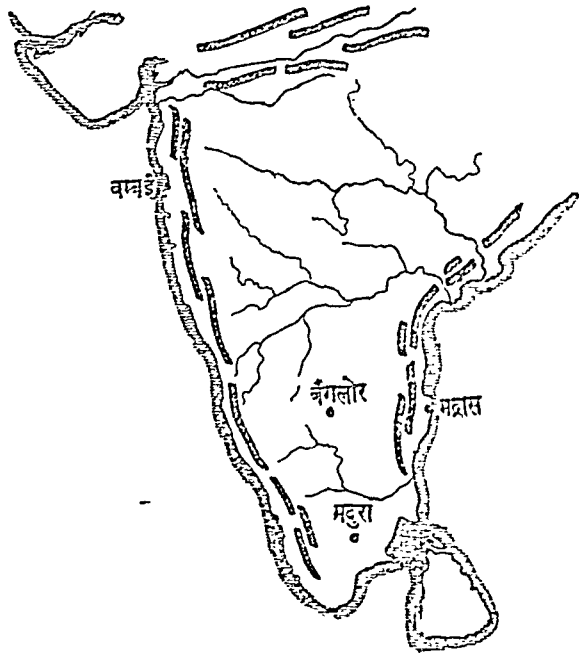
दक्खिन भारत के बड़े-बड़े मंदिरों का श्रीगणेश प्रायः बहुत छोटे छोटे मंदिरों से हुआ। सभी राजवंशों ने मंदिर बनवाए, इसलिए धीरे धीरे उनकी संख्या और आकार इतना बढ़ गया कि श्रीरंगम् जैसे बड़े मंदिर एक अलग शहर जैसे जान पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि मदुरा का मंदिर भी किसी पुराने देवस्थान पर बना हुआ है। समय समय पर वहाँ मंदिरों की संख्या बढ़ती गई, परन्तु उसके मुख्य भाग थोड़े ही समय के भीतर बने थे।

मंदिर की इमारत बड़ी अनोखी और मन पर प्रभाव डालनेवाली है। उसके ऊँचे ऊँचे गोपुर अर्थात् चहारदीवारी के दरवाजे, खम्भोंवाले बरामदे या बड़े बड़े मंडप, पत्थर की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ और खुदे हुए बेलबूटे तथा छत की रंग-बिरंगी चित्रकारी देखनेवाले को एक दम मोह लेती है।

भारत के कोने-कोने से तीर्थयात्री और कला के प्रेमी यहाँ दर्शन करने आते रहते हैं।

शहर में पहुँचने से पहले कई मील से ही १५० फ़ुट से भी अधिक ऊँचे गोपुर दिखाई पड़ने लगते हैं। पैदल आनेवाले थके हुए यात्रियों का पस्त मन भी उनके दर्शन से प्रसन्न हो उठता है।

मंदिर तीन चहारदीवारियों से घिरा है। चहारदीवारियों के बीच के स्थान प्राकार कहलाते हैं। उनमें कई मंडप, मंदिर, लम्बे बरामदे गोदाम इत्यादि हैं। मुख्य मंदिर दो हैं: सुन्दरेश्वर महादेव का और मीनाक्षी नाम से विख्यात पार्वती का।

मंदिर की बाहरी चहारदीवारी ८५० फ़ुट लम्बी और ७२५ फ़ुट चौड़ी है। चहारदीवारी में चारों ओर ठीक बीचोंबीच एक-एक गोपुर है परंतु मुख्य गोपुर पूर्व की ओर है। गोपुर कई मंजिलों के हैं। वे नीचे चौड़े और ऊपर हर मंजिल पर कुछ सँकरे होते जाते हैं। नीचे की मंजिल पत्थर की है और ऊपर ईंट की। हर मंजिल पर चारों ओर इतनी अधिक मूर्तियाँ हैं कि तिल रखने को भी खाली जगह नहीं दिखाई देती।
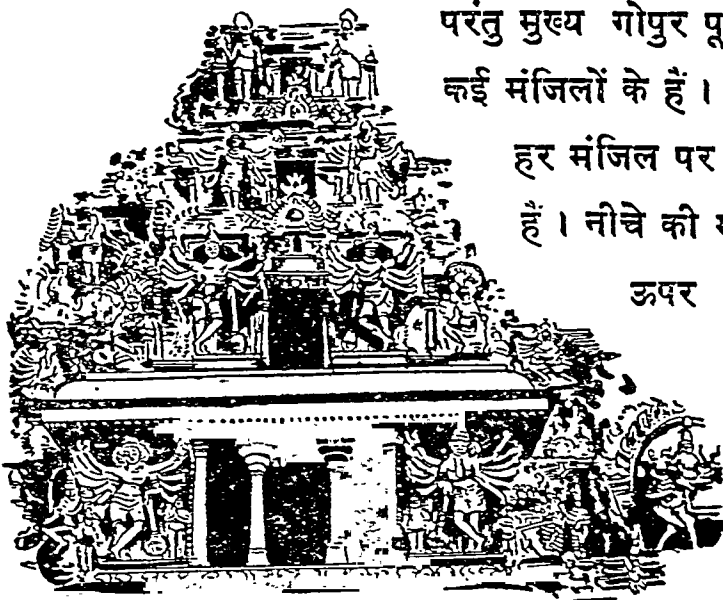
पूर्व के गोपुर से घुसते ही सामने एक खम्भोंवाला खुला बरामदा

पड़ता है और उसके पीछे नंदी मंडप है, जिसमें शिवजी की सवारी नंदी बैल की मूर्ति है। मंदिर की दूसरी चहारदीवारी की लम्बाई चौड़ाई १२०× ३१० फ़ुट है। इसमें भी चारों ओर गोपुर हैं, किन्तु वे बाहरी चाहरदीवारी के गोपुरों से कुछ छोटे हैं। तीसरी चहारदीवारी केवल २५०×१५६ फ़ुट है और उसमें एक ही दरवाजा पूर्व की ओर है। असली मंदिर इस चहारदीवारी से घिरा है। मंदिर के दो भाग हैं। भीतरी गर्भगृह, जिसमें सुंदरेश्वर महादेव की प्रतिमा है; और उसके सामने खम्भों का मंडप, जहाँ से लोग भगवान के दर्शन करते हैं। दोनों भागों के बीच के रास्ते को अंतराल कहते हैं। गर्भगृह की छत पर गुम्बद या कलश की शकल का एक छोटा शिखर या चोटी है।

मंदिर के दक्खिनी भाग में शिव-मंदिर के बराबर पहली और दूसरी चहारदीवारी के बीच में मीनाक्षी देवी अर्थात् पार्वती जी का मंदिर है। मीनाक्षी का अर्थ है मछली जैसी सुंदर आँखोंवाली। यह पार्वती के बहुत सुंदर रूप का नाम है, जैसे शिवजी के सुन्दर रूप का नाम सुंदरेश्वर है। मीनाक्षी-मंदिर में गर्भगृह बीच में है और उसके चारों ओर खम्भों-वाला मंडप है। इस मंदिर की अलग चहारदीवारी २२५×१५० फ़ुट लम्बी चौड़ी है, किन्तु उसमें

सुनहली कमलिनियों वाले तालाब
के सामने खम्भों वाला बरामदा

गोपुर दो ही हैं, पच्छिम और पूर्व में। मीनाक्षी मंदिर के सामने एक तालाब है जिसका तामिल नाम पोट्रामरई कुलम् अर्थात् 'सुनहली कमलिनियों वाला तालाब' है। तालाब के चारों ओर खम्भोंवाला बरामदा है जिससे तालाब की शोभा बढ़ जाती है। उसकी छत पर रंग बिरंगे चित्र हैं, जिनमें शिवजी के चौंसठ अनोखे कामों के दृश्य आँके गए हैं।

सुब्रह्मण्य अर्थात् शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय का एक छोटा मंदिर मीनाक्षी मंदिर के द्वार की बगल में है। तालाब के पूरब में एक ऊँचा गोपुर है जिससे होकर दर्शक बाहर से सीधे ही भीतर के मंदिर में आ सकते हैं। इस मंदिर में कुल मिलाकर ११ गोपुर हैं। मंदिर में कई मंडप हैं। उनमें से दो मंडपों की बात बता देना यहाँ काफ़ी होगा। बाहरी चहारदीवारी के भीतर उत्तर पूर्व के कोने में सहस्र स्तम्भ मंडप है। इसमें खम्भों की संख्या ९८५ ही है, फिर भी इसे हज़ार खम्भों वाला कहा गया है। इसके खम्भों पर तरह तरह की मूर्तियाँ और बेल बूटे खुदे हैं और खम्भे इस खूबी से लगाए गए हैं कि उनकी पाँतों के बीच का दृश्य किसी ओर से भी देखने पर ऐसा लगता है जैसे एक लम्बा रास्ता हो। नायक वंश के राज्य की नींव डालनेवाले विश्वनाथ के मन्त्री आर्यनाथ मुदली ने इस मंदिर को सन् १६६० ई० के आस-पास बनवाया था।

नायक राजाओं में तिरुमल नायक (१६२६ से १६५२ ई०) को इमारतें बनवाने का सबसे अधिक शौक़ था। मदुरा में उसका महल प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में भी कुछ इमारतें बनवाकर उसने इसे काफ़ी बढ़ा दिया। मंदिर के मुख्य गोपुर के सामने सड़क की दूसरी ओर पुदु मंडप या बसन्त मंडप उसी का बनवाया हुआ है। इसे तिरुमल की चोल्ट्री अर्थात्

पुदु मंडप का एक दृश्य

धर्मशाला भी कहते हैं। सन् १६२६ ई० से इसके बनाने में ७ साल लगे। यह मंडप लम्बे कमरे जैसा है। बीच के के दोनों ओर और दीवारों के साथ खम्भों की पाँते हैं। खम्भों में सुंदर मूर्तियाँ और बेलबूटे तो हैं ही, साथ ही १० खम्भों पर नायक राजाओं की प्रतिमाएँ भी खुदी हैं।
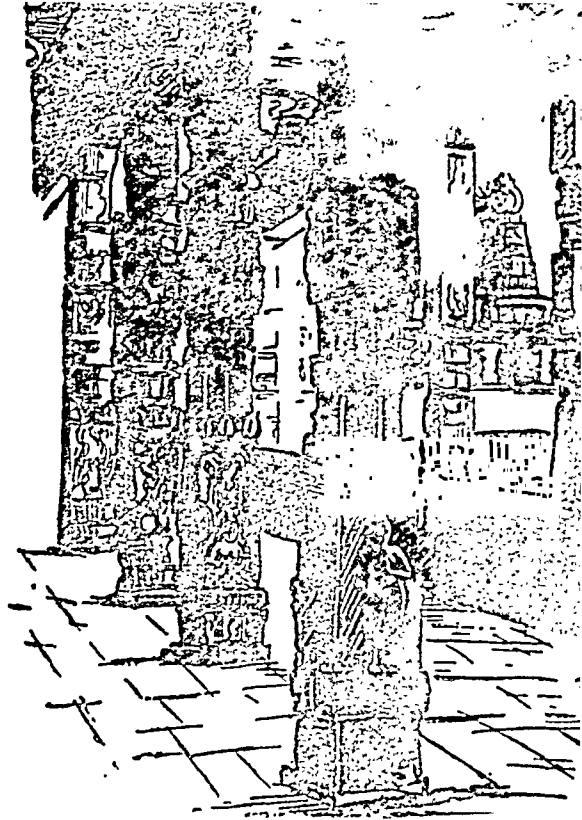
मदुरा का मंदिर बहुत अधिक स्थान घेरे हुए है। मंदिर की चहारदीवारी के भीतर दुकानें हैं। स्थापत्य कला अर्थात् इमारत बनाने की कला के विचार से तो यह मन्दिर सुंदर और मनमोहक है ही साथ ही यहाँ की मूर्तिकला भी सुन्दर है। मन्दिर के खम्भों के सामने देवी-देवताओं की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। पशु-पक्षी तो ऐसे बनाए गए हैं जैसे पत्थर के न होकर सचमुच के हों। देवताओं की मूर्तियाँ और पशु-पक्षियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे मूर्ति बनानेवालों ने पत्थर को खोदकर नहीं बल्कि हाथों से मींड़ कर या बड़े साँचों में ढालकर इन मूर्तियों को तैयार किया हो। इनमें उन पशुओं की मूर्तियाँ बहुत ही सुन्दर हैं जिनके धड़ और सिर अलग अलग पशुओं के दिखाए जाते हैं। दीवारों और खम्भों पर बेलबूटे इस खूबी से खोदे गए हैं कि कपड़े पर क़सीदे के काम को भी मात करते हैं। देवी-

देवताओं की अलग अलग मूर्तियों के अलावा बहुत से दृश्य भी पत्थरों पर खोदे गए हैं। इन दृश्यों का संबंध रामायण, महाभारत या पुराणों की कथाओं से है। यहाँ की मूर्तियों की किसी ने गिनती तो नहीं की, लेकिन कहा जाता है कि कुल मूर्तियाँ तीन करोड़ से भी अधिक हैं।

एक खम्भे पर खुदी राम और सीता की मूर्ति

मदुरा बहुत पुराने समय से द्राविड सभ्यता का खास केंद्र रहा है। यहाँ पांड्यों की राजधानी रही और चोल-काल में यह एक खास नगर रहा। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुसलमानों ने इस पर अधिकार जमाया। लेकिन ५० साल बाद ही विजयनगर के राजाओं ने इसे अपने राज्य में मिला लिया और नायकों ने फिर से इसे दक्खिन की राजधानी बनाया। ऐसे राजनीतिक उलट-फेर होने पर भी मदुरा संस्कृति का केंद्र बना रहा। मदुरा को गौरव के इस ऊँचे पद पर बैठाने में सुन्दरेश्वर और मीनाक्षी के मंदिर का बहुत बड़ा हाथ है। इस समय हाथ के बुने कपड़ों के लिए भी मदुरा प्रसिद्ध है। लेकिन मदुरा का नाम सुनते ही सुननेवालों का ध्यान इस प्रसिद्ध मंदिर और उसकी मूर्तियों की ओर बरबस खिच जाता है।

३०

संगीत
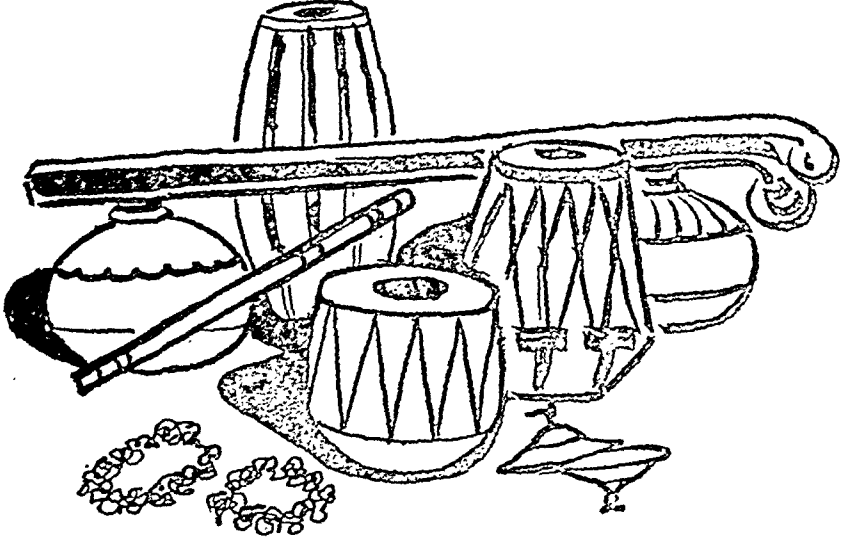
घुमड़ते मेघों के स्वर पर जब मलार का राग अलापा जाता है, नदियों के किनारे जब वंशी की तान ऊँची उठती है, वीणा की झंकार जब रात के सन्नाटे में गूँजती है तो सुननेवाला सुध-बुध खो बैठता है। मनुष्य ही नहीं पशुओं और पक्षियों तक पर संगीत का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

संगीत का प्रकृति से बहुत ही गहरा संबंध है। मनुष्य ने प्रकृति से ही संगीत सीखा और अपने दुःख-सुख के भावों को गीत में प्रकट किया।

संगीत का इतिहास बहुत ही मनोरंजक है। हर देश की अलग-अलग दशा होती है। इसलिए हर देश में अपने-अपने ढंग से संगीत पनपा और बढ़ा।

यहूदी दुनिया की बहुत पुरानी कौम है। यहूदियों में संगीत का बड़ा मान था। उनके पैग़म्बर बड़े संगीत प्रेमी थे। अब से कोई तीन हज़ार साल पहले उनके बीच संगीत की चर्चा होती थी। मिस्र की सभ्यता भी बहुत पुरानी है। वहाँ बाँसुरी पर गाने का बड़ा चलन था। मिस्र की कब्रों में बहुत ही सुन्दर बाँसुरियाँ मिली हैं। उनके यहाँ तीन तरह के बाजों का चलन था। उनमें एक बरबत भी था। झाँझ, मजीरा और वायलिन जैसे बाजे उनके यहाँ न थे। त्योहारों और उत्सवों पर या किसी धर्म के काम के समय वे लोग नाचते-गाते थे। राज दरबार में भी नाच-गाना होता था। पेशेवर नाचने गाने वाले भी थे। नाच गाना सिखाने वाले स्कूल भी थे।
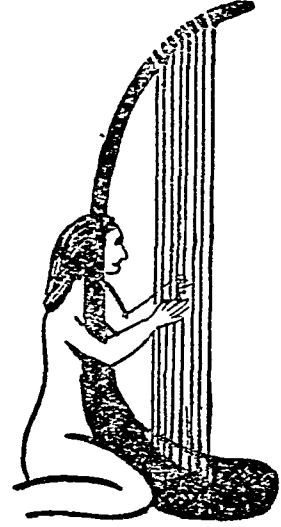
मिस्र का ४ हज़ार साल पहले का बरबत

अब से करीब ढाई हज़ार साल पहले यूनानियों ने मिस्र से गाने की विद्या सीखी। यूनानवाले पहले कविता और गाने को एक मानते थे। चारण या भाट जगह जगह घूमते रहते थे और गा-गा कर कविता सुनाया करते थे। पिथागोरस ईसा से ५८२ वर्ष पहले हुआ था। पिथागोरस ने संगीत को ठीक रूप दिया। उसने दूर दूर की यात्राएँ कीं। वह मिस्र भी गया और वहाँ से ठीक से संगीत सीख कर लौटा। अपने देश में आकर उसने संगीत को ताल-स्वर में बाँधा और उसके नियम-क़ायदे बनाए। फिर तो नाटकों में भी गानों को जगह मिली। यूनान में तारवाले बाजों और फूँक कर बजाए जाने वाले बाजों का चलन था। यूनान वाले गाजे बाजे के साथ त्योहार मनाते थे। कोई २,४००

साल पहले तो ओलम्पिक खेलों में, जो यूनान के राष्ट्रीय खेल थे, नगाड़े बजाने की होड़ होने लगी थी। इसी तरह एक खास त्योहार के समय बाँसुरी बजाने की होड़ भी होती थी। यूनानी बाँसुरी को शहनाई की तरह सीधी रखकर बजाते थे। एक बार एक बजाने वाले की बाँसुरी का मुँह किसी कारण से रुँध गया। उसने बाँसुरी टेढ़ी कर ली और बजाता रहा। तब से बाँसुरी को टेढ़ी करके बजाने का चलन हो गया।
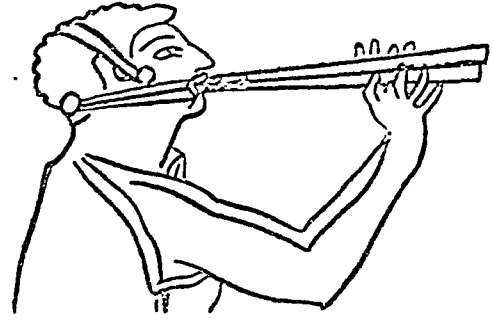
पुराने यूनान की दो मुँहवाली बाँसुरी। गालों पर चमड़े की पट्टी देखिए। यह इसलिए है कि हवा भरने से गाल न फट जाएँ।

रोम ने संगीत का पाठ यूनान से पढ़ा, इसलिए वहाँ यूनान के ही बाजों का चलन रहा। वहाँ बाँसुरी का बहुत अधिक प्रचार हुआ। रोम में नाटक खेलते समय मीठी ध्वनि में बाँसुरी बजाई जाती थी।

चीन वाले भी बहुत पुराने समय से संगीत के प्रेमी हैं। कहते हैं कि चीन में संगीत का चलन महात्मा सिग लून ने किया। उन्होंने नदी के किनारे चिड़ियों के एक जोड़े को गाते सुना और उससे संगीत सीख कर उसका प्रचार किया।

हमारे देश के संगीत की कहानी भी बहुत अनोखी है। हमारे संगीत का अपना निरालापन है। भारत में कला और धर्म का चोली दामन का साथ है, इसीलिए संगीत को देवताओं से पैदा हुआ मानते हैं। कहते हैं कि भगवान शंकर ने पांच राग रचे, और पार्वती जी ने छठे राग की रचना की। हमारे संगीत में गाना बजाना और नाच तीनों शामिल हैं।

सामवेद और दूसरे वेदों की ऋचाएँ और गाथाएँ कुछ गाकर पढ़ी जाती थीं और कुछ बिना गाए पढ़ी जाती थीं। पढ़ने में स्वर-ताल का ध्यान रखा जाता था।

ऋग्वेद में चार प्रकार के बाजों का वर्णन है। तारवाले बाजे, चमड़ा मढ़े हुए, धातु के और फूंक कर बजाए जाने वाले। अथर्ववेद में ताल-स्वर के नियम बताए गए हैं। कई तरह के तारों वाले बाजों का वर्णन भी मिलता है उनमें एक बाजा ऐसा था जिसमें १०० तार रहते थे। दमामों में भूमि-दुंदुभी खास थी। बलिदान के समय वह दुंदुभी बजायी जाती थी। किसी गड्ढे पर चमड़ा फैला दिया जाता था। फिर किसी लकड़ी से चमड़े को पीटा जाता था।

धीरे धीरे नए नए बाजे निकलते गए और अनुभव से बजाने के नए नए ढंग भी निकले।

वेदों के समय के बाद सूत्रों का समय आया। उस युग में कर्मकांड बहुत होते थे। कर्मकांडों में संगीत का खास स्थान था। इसलिए संगीत कला में और उन्नति हुई। उस समय तरह तरह के बाजे बने और उन्हें अलग अलग ढंग से बजाने की विधियाँ सोची गईं। उस समय के ग्रंथों में सौ तार की वीणा और अलबु वीणा के नाम मिलते हैं। लेकिन तब लोग संगीत को देवता की चीज और बहुत पवित्र मानते थे। उसे अपने मनोरंजन की चीज नहीं समझते थे।

उसके बाद रामायण और महाभारत का समय आया। संगीत पवित्र

भारत में तेईस सौ साल पहले प्रचलित वीणा

धार्मिक चीज़ तो अब भी रहा, लेकिन अब वह राज दरबार में मनोरंजन का साधन भी बन गया। फल यह हुआ कि बड़े आदमी संगीत सीखने लगे और राजा लोग गवैयों का मान करने लगे। लेकिन संगीत को राज्य का सहारा तो मौर्यों के समय में ही मिला। गवैयों, बाजे बजाने वालों और नाचने वालों को राज्य से सहायता मिलने लगी।

कुशान वंश के सम्राट् कनिष्क के दरबार में महाकवि अश्वघोष रहते थे। वे कवि ही नहीं गायक भी थे। वे कविताएँ लिखते, मंडली बनाकर निकलते और लोगों को अपने गीत गा कर सुनाते थे।

अठारह सौ साल पहले की वीणा

गुप्त राजाओं का समय सुनहला समय माना जाता है। सचमुच वह समय सुनहला कहलाने का अधिकारी है। उस समय हमारे देश में कला और साहित्य की खूब उन्नति हुई। संगीत भी खूब बढ़ा। सम्राट् समुद्रगुप्त खुद संगीतप्रेमी और गायक थे। कुछ सिक्कों पर वे वीणा बजाते दिखाए गए हैं। उसी समय पुराण भी रचे गए थे उनमें भी संगीत की चर्चा है। परंतु संगीत पर सबसे अच्छा पुराना ग्रंथ नाट्यशास्त्र है। उसकी रचना भरतमुनि

वीणा बजाते हुए समुद्रगुप्त

ने की थी। उस समय संगीत के स्वर यति, मूर्च्छना और ग्राम में बांटे जाते थे। फिर इन स्वरों को २१ विरामों में बाँटा जाता था। वे विराम श्रुति कहलाते थे। श्रुति का अर्थ है गीत का उतना भाग जो सुना जाता है। उन श्रुतियों के सहारे स्वर निर्माण किया गया था। भरत मुनि ने राग रागिनियों के बारे में कुछ नहीं लिखा। रागों की चर्चा तो बहुत बाद की चीज है।

हर्ष के समय में संगीत का बहुत ही अधिक मान था। नालंदा विश्वविद्यालय में संगीत की शिक्षा मुफ्त दी जाती थी।

हर्ष के बाद के छः सौ साल भारत के इतिहास में बड़े परिवर्तन के थे। उसके बाद राजपूतों के दरबार में संगीत की चर्चा आई। राजपूत राजा खुद संगीत जानते थे और कलाकारों का मान करते थे। पृथ्वीराज गाने और बजाने दोनों में बहुत प्रवीण थे।

तेरह सौ साल पहले की वीणा

अब तक हमने उत्तर भारत के की संगीत चर्चा की है। अब तनिक दक्खिन भारत की ओर चलें। सातवीं और आठवीं सदी में दक्खिन में भक्ति आंदोलन चला और पूरे देश में फैल गया। भक्ति आंदोलन के फैलने में संगीत ने बड़ी सहायता पहुँचाई। भक्त कवियों ने जनता की समझ में आनेवाली भाषा में गीत रचे और गा गा कर भक्ति का प्रचार किया। इस युग में मन्दिर संगीत के केंद्र बन गए। मन्दिर के पुजारियों और साधु संतों ने संगीत के प्रचार में बहुत हाथ बटाया।

दक्खिन भारत में भक्ति की जो लहर उठी, वह उत्तर भारत भी पहुँची। उत्तर भारत के गायक कवि जयदेव का नाम खास तौर से लिया जा सकता है। उनका 'गीत गोविंद' बहुत सुंदर गीति-काव्य है। उसमें श्री कृष्ण जी की लीला मधुर पदों में गाई गई है। उस युग में संगीत के एक बहुत बड़े पंडित सारंगदेव हुए। उन्होंने संगीत रत्नाकर नाम का एक बड़ा ग्रंथ लिखा। सारंगदेव तेरहवीं सदी में हुए थे और दक्खिन के यादव राजाओं के दरबार में रहते थे।

भारत का परिचय मुसलमान सभ्यता से होने पर फ़ारस और अरब के संगीत का प्रभाव भारत के संगीत पर पड़ा। इस तरह संगीत विद्या के दो अलग अलग स्कूल बन गए—एक उत्तर भारत का संगीत, दूसरा दक्खिन भारत का संगीत या कर्नाटकी स्कूल।

चौदहवीं सदी के आरम्भ में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में एक बड़े कवि अमीर खुसरो थे। वे संगीत के बड़े जानकार थे। उन्होंने फ़ारस और अरब के संगीत को भारत के संगीत के साथ बड़ी ही सुंदरता से मिलाया और बहुत सी नई और मीठी ध्वनियाँ निकालीं। वे ध्वनियाँ पुराने हिन्दू संगीत से बहुत मिलती जुलती थीं। फिर भी उनसे अलग थीं। खुसरो बहुत ही चतुर थे। उन्होंने कई बाजे भी निकाले। उन्होंने वीणा से सितार और मृदंग या पखावज से तबला ईजाद किया। अमीर खुसरो के समय में ही नायक गोपाल हुए थे। बैजू बावरा भी उस समय के बहुत प्रसिद्ध गायक थे। उनका गाना सुनकर लोग तन-बदन की सुधि भूल जाते थे।

औरंगजेब के सिवा दूसरे सब मुग़ल बादशाह भी संगीत के बड़े प्रेमी

थे। उनके दरबारों में नामी गवैयों का जमघट लगा रहता था। अकबर संगीत और कला के सबसे बड़े प्रेमी थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन अकबर के ही दरबार के रत्नों में थे। खुसरो से लेकर तानसेन तक संगीत में जो नए प्रयोग किए गए, उनका फल यह हुआ कि देश के संगीत की ध्रुपद परम्परा लगभग समाप्त हो गई और एक नई परम्परा बनना शुरू हुई जिसे 'ख़याल' कहते हैं।

वैजू वावरा

तानसेन

मुहम्मद शाह रंगीले भी संगीत के बहुत बड़े प्रेमी थे। उनके दरबार के उस्ताद नियामत खाँ सदारंग का नाम सभी संगीत प्रेमी जानते हैं। उन्होंने संगीत की बड़ी उन्नति की। सदारंग गाने तो लिखते ही थे। उन्होंने ख़याल को नए सुर में बाँधा। आजकल ख़याल उन्हीं के बाँधे सुर में गाया जाता है।
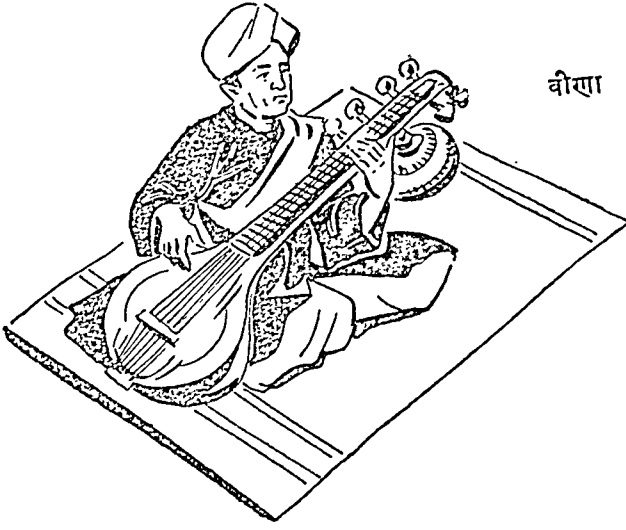
वीणा

शहनाई
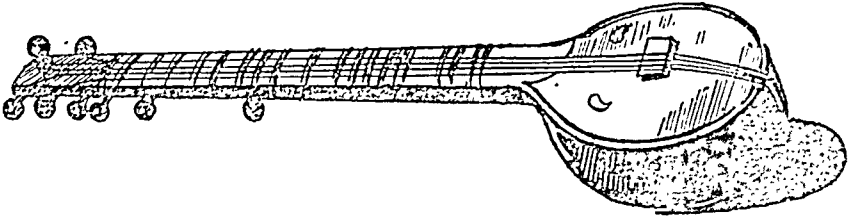
सितार
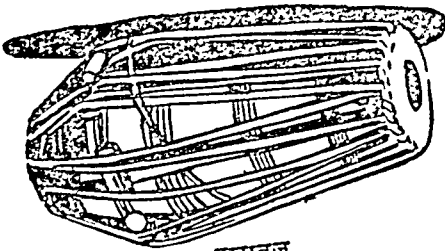
पखावज
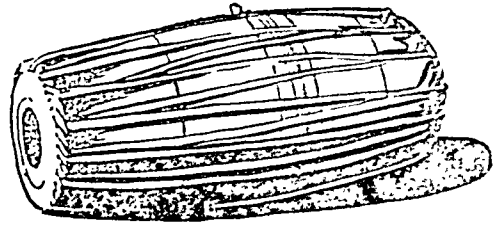
मृदंग

मुग़लों के समय में ही भारत में कई बड़े वैष्णव भक्त-कवि हुए थे। उन्हीं में बंगाल के चैतन्य महाप्रभु भी थे। उत्तर प्रदेश में तुलसीदास जी और सूरदास भी उसी समय हुए थे। महाराष्ट्र में संत तुकाराम और राजस्थान में मीरा बाई थीं। इन भक्तों से भी संगीत को बहुत बल मिला। उनके पद अलग अलग देशी ढंगों से गाए जाते थे। इस प्रकार बहुत सी नई तर्जों का जन्म हुआ।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में भारत के इतिहास में बड़े परिवर्तन हुए। मुग़लों का राज्य टूट रहा था और अंग्रेजों का सिक्का जम रहा था। इस बीच संगीत को भारत के खास खास राजाओं और नवाबों ने सहारा दिया। उनमें लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। उस समय सभी बड़े बड़े गायकों ने दिल्ली से भागकर लखनऊ की शरण ली। वहीं संगीत की एक नई तर्ज ठुमरी का जन्म हुआ। परंतु लखनऊ की भी दशा ठीक न रही और सभी गायक ग्वालियर, रामपुर, इंदौर और दूसरी रियासतों में जा बसे। बाद में ये स्थान संगीत और नृत्य की अलग अलग शैलियों के केंद्र बन गए।

उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रीय आंदोलन चला। जनता जागी और सुगबुगाने लगी। संगीत पर भी इसका प्रभाव पड़ा। संगीत नृत्य और नाटक

भातखण्डे

विष्णु दिगम्बर

राष्ट्रीय भावना के प्रचार के साधन बने। कांग्रेस के जलसों में राष्ट्रीय गीत एक खास तर्ज से गाया जाता था। भातखंडे और विष्णु दिगम्बर जैसे संगीत के पंडितों ने संगीत में नए प्राण फूंकने का बीड़ा उठाया। १६१६ ई० में बड़ौदा में पहला संगीत सम्मेलन हुआ। उसमें उस समय की हालत पर अच्छी तरह विचार किया गया। अब हम जाग गए थे। अपनी कला और सभ्यता को पहचानने लगे थे। इसलिए यह माँग हुई कि ठीक ढंग से संगीत सिखाने का प्रबंध होना चाहिए। इसका फल यह हुआ कि ग्वालियर में गंधर्व महाविद्यालय और लखनऊ में हिन्दुस्तानी संगीत सिखानेवाला मैरिस कालेज, जिसे अब भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय कहते हैं, खोला गया।

भारत के संगीत का इतिहास बतलाया जा चुका। अब कुछ संगीत के रूप को भी जान लेना चाहिए। किसी गाने में स्वर के उतार-चढ़ाव के कुछ बँधे हुए नियमों को राग कहते हैं। साल में छः ऋतुएँ होती हैं। हर ऋतु का एक राग होता है। हर राग की पाँच रागिनियाँ होती हैं। इसी तरह हर राग के आठ पुत्र और उनकी आठ भार्याएँ होती हैं। इन रागों को अलग अलग ठाठों में बाँधा गया है। परंतु पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने इन रागों को केवल १० 'ठाठों' में ही बाँधा है। हर राग का नाम किसी देवता, उस राग के बनाने वाले या उस राग के प्रेमी राजा के नाम पर रखा गया है। हर राग किसी खास ऋतु में या रात दिन के किसी खास समय में गाया जाता है। राग में जो सबसे खास स्वर होता है, उसी के हिसाब से समय ठीक किया जाता है।

राग दो प्रकार के होते हैं—शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध राग में कोई और राग नहीं मिला रहता। जहाँ कई रागों को मिलाकर एक राग

बनाया जाता है, उसे संकीर्ण राग कहते हैं। किसी राग के खास स्वर को वादी कहते हैं। वह पूरे राग पर छाया रहता है। उसके बाद जिस स्वर का सबसे अधिक प्रभाव होता है, उसे सम्वादी कहते हैं। जिस स्वर को राग या रागिनी में बिलकुल छोड़ देते हैं, उसे विवादी कहते हैं।

भारत के गाने कई तरह के हैं, जैसे ध्रुपद, ख़्याल, टप्पा, ठुमरी, ग़ज़ल, भजन और ग्राम गीत। ध्रुपद और टप्पा के गानेवाले अब कम मिलते हैं। ध्रुपद के सर्वोत्तम और प्रायः अंतिम आचार्य आजकल उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ डागर हैं।

पुराने संगीतों पर भी नए नए प्रभाव पड़ रहे हैं। कहा नहीं जा सकता कि आगे चलकर उनका यही रूप रहेगा या बदल जाएगा।

जिस प्रकार भारत की सभ्यता कई कौमों की मिली जुली सभ्यता है, उसी प्रकार भारत के संगीत में भी कई देशों और कौमों का दान है। इस दान ने संगीत के भंडार को भरा है और उसमें बराबर निखार आया है।
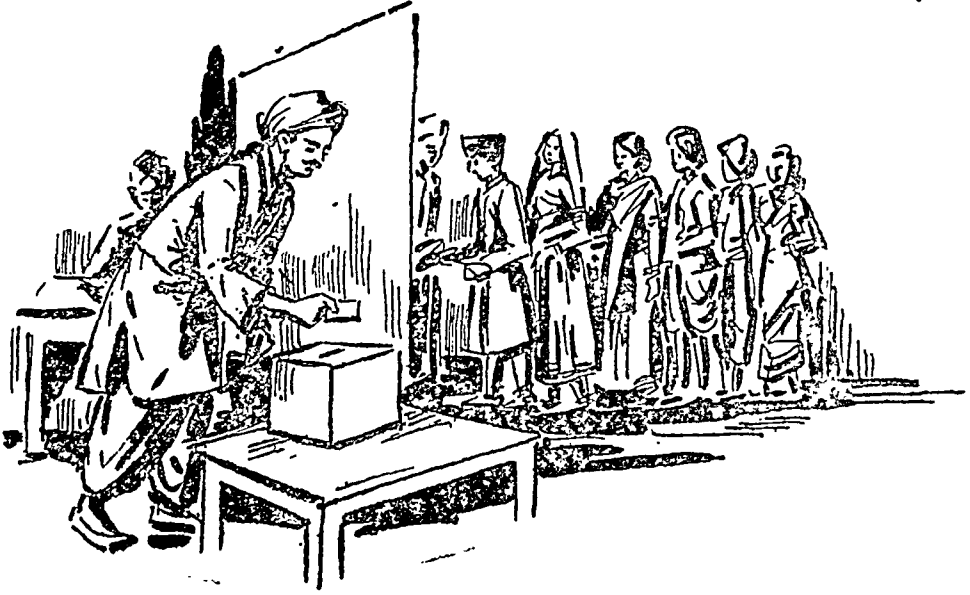
३१

राज्य प्रबंध के बदलते रूप

मनुष्य की गिनती गिरोह बनाकर रहनेवाले प्राणियों में है। उसने धरती पर आने के समय से अबतक अनोखी उन्नति की है। इसका कारण मिल-जुल कर रहना है। आदमी की उन्नति का इतिहास उसके मिल-जुल कर रहने का इतिहास है। शुरू से ही मनुष्य व्यक्ति व्यक्ति और टोली टोली के आपसी संबंधों को अच्छा बनाने और पूरे समाज को एक सूत्र में बाँध देने की कोशिश करता रहा है।

पहले लोग छोटे छोटे समूह या टोलियां बनाकर रहते थे। शिकार

श्रौर ढोर चराना उनका काम था। शिकार या चरागाहों की खोज में ये टोलियाँ इधर उधर घूमा करती थीं। उस समाज में कोई भी चीज़ किसी एक आदमी की न थी। सब चीज़ें पूरी टोली की थीं। हर टोली एक वंश या कुनबा कहलाती थी। वे वंश आज जैसे छोटे छोटे न थे। एक एक वंश में बहुत लोग थे। कभी कभी एक वंश बढ़ कर कई टोलियों में भी बँट जाता था।

एक ही वंश की कई टोलियाँ कभी कभी किसी जगह जत्थों में इकट्ठी हो जाती थीं। वैदिक समय में इस तरह इकट्ठा होने को 'ग्राम' कहते थे।

जब लोगों ने खेतीबारी करना शुरू की, तो घर बनाकर बसने लगे। वे जिस ज़मीन पर अधिकार करते, वहाँ बस्तियाँ बनाकर रहने लगते। एक एक वंश की टोलियाँ कई बस्तियों या 'ग्रामों' में बस गईं और इस तरह 'कबीले' बन गए। हमारे देश में पुराने ज़माने में 'कबीलों' को 'जन' कहते थे और जिस इलाक़े में कबीले के लोग बस जाते थे, वह 'जनपद' कहलाता था।

पहले टोलियों के पास न ज्यादा धन था, न कमाने के बड़े साधन। इसलिए जो कुछ था, सब पर पूरी टोली का अधिकार था। सबको अपने हिस्से का काम करना पड़ता था, क्योंकि उसके बिना टोली का जीना दूभर हो जाता। लेकिन कमाने के साधन बढ़ने और अच्छे होने के साथ साथ कुछ लोगों ने इन पर अधिकार करना आरम्भ किया। निजी धन के साथ साथ समाज में लोगों के अधिकारों और कर्तव्यों का झगड़ा चला। ज़मीन, पशुओं और हथियारों के लिए अलग अलग टोलियों में लड़ाइयाँ भी होने लगीं। लड़ाइयों में सेना की अगुआई, बस्तियों के प्रबंध,

लोगों की निजी सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा और आपसी झगड़े निबटाने के लिए 'राज्य' की जरूरत जान पड़ी।

वेदों में ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा की जरूरत युद्धों के कारण हुई और राजा का चुनाव किया गया।

उस समय देश छोटे छोटे राज्यों में बँटा था। बहुत से राज्यों में 'गणतंत्र' ढंग का राज्य था। वे गणतंत्र दो प्रकार के थे। कुछ ऐसे थे जहाँ सब नागरिक एक सभा में इकट्ठे होकर राज-काज चलाते थे। गण के मुखिया का भी सब मिलकर चुनाव करते थे। नागरिकों को पूरी स्वतंत्रता थी। उन लोगों में बाक़ायदा वोट लेने, नियम के साथ प्रस्ताव पेश करने और भाषण देने का चलन था। वोट को तब 'छन्द' और प्रस्ताव को 'ज्ञप्ति' कहते थे। जब किसी बात का निबटारा न हो पाता तो उस पर विचार करने के लिए कमेटी बनाई जाती थी, जिसे 'उद्‌वाहिका' कहते थे। कुछ दूसरी तरह के गणतन्त्र थे जिनमें परिवारों या गोत्रों के मुखिया इकट्ठे होकर राज-काज चलाते थे। वे "वृद्ध" कहलाते थे।

वैदिक युग के 'जन-राज्य' या गण-राज्य बाद में 'राज्य' या 'जनपद' कहलाने लगे। जनपदों को जीत कर 'महाजनपद' बनाए गए। भारत में मौर्य साम्राज्य से तीन चार सौ साल पहले कई 'जनपद' थे और सोलह बड़े बड़े जनपद या 'महाजनपद' बन गए थे। मगध के सम्राटों ने इन महाजनपदों और दूसरे जनपदों को जीतकर साम्राज्य की नींव रखी। मौर्य सम्राट् एक साम्राज्य बनाकर पूरे राष्ट्र को एक करना चाहते थे।

भारत से बाहर पच्छिमी देशों में भी राज्य-संस्था का विकास लगभग इसी रीति से और लगभग इसी समय में हुआ।

यूनान में छोटे छोटे कबीलों के कई 'जन-राज्य' बने। एथस, स्पार्टा, कारिंथ आदि नगरों में छोटे छोटे राज्य थे। इन राज्यों की संख्या सैकड़ों में थी। राजकाज का ढंग अलग-अलग था। कुछ राज्यों में गणतंत्रों को मिटाकर बली लोग खुद राजा बन गए थे। पर दूसरे बहुत से राज्यों में लोक-तन्त्र के ढंग पर राजकाज चलता था। उदाहरण के लिए एथेंस यूनान का एक खास नगर-राज्य था, जहाँ सब नागरिक इकट्ठे होकर अपना शासन चलाते थे। सभी बातें अधिक लोगों की राय से तै होती थी। 'लोक सभा' में हजारों नागरिक बैठते थे। उन्हें अपनी तरफ़ खींचने के लिए भाषण देने का उन दिनों खूब अभ्यास किया जाता
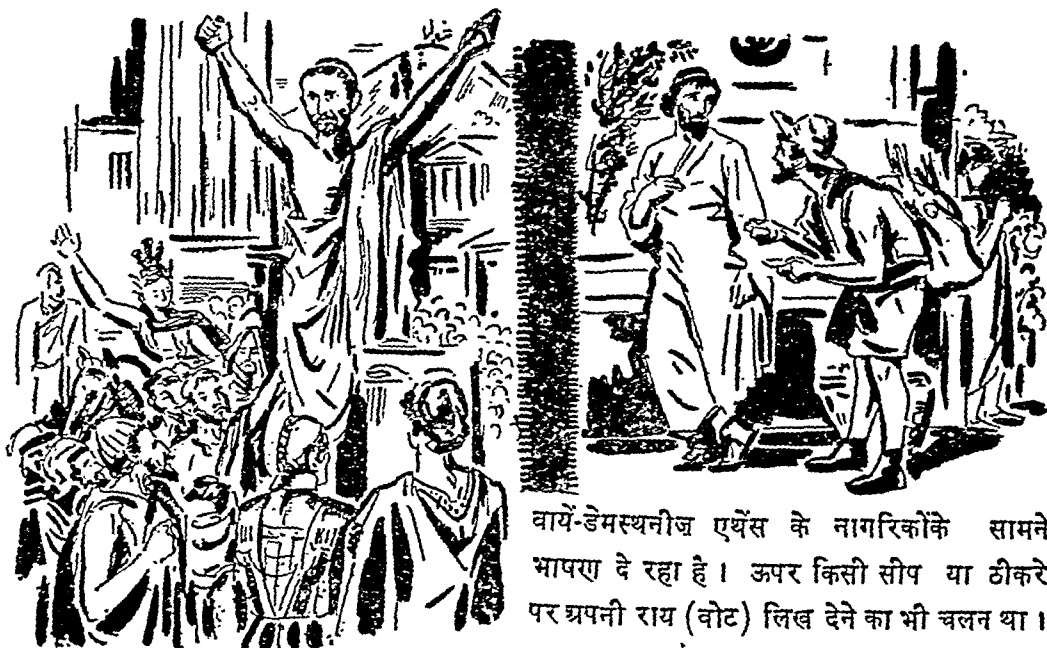
बायें-डेमस्थनीज़ एथेंस के नागरिकोंके सामने भाषण दे रहा है। ऊपर किसी सीप या ठीकरे पर अपनी राय (वोट) लिख देने का भी चलन था।

था। वोट के समय नागरिक 'हाँ' या 'ना' कह कर अपनी राय देते थे। जिसके पक्ष में आवाज ऊँची सुनाई देती, वह जीता हुआ माना जाता था। इसलिए लोगों को समझाया जाता था कि खूब चिल्लाकर

वोट दो। क़ानून सब नागरिकों को समान मानता था, इसलिए अफ़सर रखने के लिए लाटरी डाली जाती थी।

स्पार्टा में नागरिकों को स्वस्थ और मजबूत बनाने पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था। वे लोग छोटी आयु के बालकों को माता पिता से अलग कर विद्यालयों में भेज देते थे। वहाँ उन्हें बहुत कठोर नियम कायदे मानने पड़ते थे। परन्तु यहाँ का शासन कुछ खास घरानों के ही हाथ में था, साधारण जनता के हाथ में नहीं। वे खास घराने अपने को जनता से बड़ा और कुलीन मानते थे।

रोम में भी कई नगर-राज्य थे जिनमें प्रजा ही राज्य के अफ़सरों का चुनाव करती थी। वहाँ भी अधिकतर राज्यों में राजकाज कुछ कुलीन परिवारों के हाथ में था। रोम में जनता और कुलीनों का भेद इतना बढ़ गया कि जनता ने उनका बहुत विरोध किया।

ईसा से कोई तीन सौ साल पहले भारत, यूनान और रोम सब जगह छोटे छोटे गणतन्त्रों और लोकतन्त्रों का अन्त हो गया और सम्राटों ने छोटे छोटे राज्यों को जीतकर साम्राज्य बनाने शुरू किए। यूनान में सिकन्दर, भारत में मौर्य सम्राट् और रोम में जूलियस सीजर ने अपने अपने साम्राज्य बना लिए।

सिकन्दर

जूलियस सीजर

सामन्तशाही :

इस तरह के साम्राज्य बनने के बाद सामन्तशाही का जन्म हुआ। पराक्रमी सम्राट् सेना के बल पर बहुत से देशों को जीतकर अपने अधीन

तो कर लेते थे, परन्तु उस ज़माने में ऐसे साधन न थे कि दूर दूर के इलाकों का प्रबन्ध राजधानी से चलाया जाये। इसलिए सम्राट् दूर दूर के इलाकों में अपने सूबेदार रख लेते थे। वे सूबेदार या सरदार अपने इलाके में शासन करते थे, सेनाएँ रखते थे और जनता से कर वसूलते थे। वे लोग एक बँधी हुई रकम सम्राट् के ख़ज़ाने में हर साल जमा करते थे और लड़ाई के समय अपनी सेनाएँ लेकर सम्राट् की सहायता के लिये पहुँचते थे। परन्तु अक्सर बलवान सम्राटों के मरने के बाद साम्राज्य को कमज़ोर देखकर सरदार लोग स्वतन्त्र हो जाते थे और अपने छोटे छोटे राज्य बना लेते थे। हमारे देश में मौर्य साम्राज्य बनने से लेकर मुगल साम्राज्य के अन्त तक बराबर ऐसा होता रहा। दुनिया के दूसरे देशों का भी यही हाल था।

आज के राज्य :

अठारहवीं सदी में युरोप में विज्ञान की कुछ नई खोजें हुईं। उनमें भाप का इंजन मुख्य है। उसने समाज का काया-पलट कर दिया। नए नए कल कारखाने खुले। कल कारखानों के खुलने से एक नया आन्दोलन छिड़ा। उस आन्दोलन ने सामन्तों का अन्त कर दिया और नए ढंग की सरकारें सामने आईं, जिन्हें जनता अपने चुने हुए लोगों के जरिए चलाने लगी।

राज्यों के रूप :

शुरू से ही राज-काज चलाने के ढंगों में हेर फेर होते रहे हैं। राज्यों के चार रूप हमारे सामने हैं।

१—राज-तन्त्र : इस प्रकार के शासन की बागडोर एक आदमी के हाथ में होती है, जो आमतौर से राजा कहलाता है। वह कभी

सलाहकारों की राय से राज चलाता है और कभी बिल्कुल अपनी इच्छा और अपनी समझ से। इसी प्रकार के शासन को राजतन्त्र कहते हैं। पुराने राजे-महाराजे अक्सर किसी की राय की परवाह किये बिना अपनी इच्छा से ही शासन करते थे। ऐसे राजाओं के शासन को स्वेच्छाचारी राज-तन्त्र कहते हैं। लेकिन आज के युग में राजा महाराजा भी अधिकतर जनता की राय के अनुसार ही राज-काज चलाते हैं। जैसे इंगलैंड में राजतन्त्र होते हुए भी राजा वहाँ की पार्लियामेंट की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते। राज-तन्त्र की विशेषता यह है कि राज्य पर राजाओं का खान्दानी अधिकार होता है।

२—कुलीन-तन्त्र : ऐसे शासन में सत्ता किसी एक आदमी के हाथ में नहीं होती, बल्कि धनी और कुलीन परिवार या ऐसे परिवारों के कुछ लोग मिलकर राज-काज चलाते हैं।

३—अधिनायक तन्त्र : जब कोई आदमी अपने साहस, शासन करने की योग्यता, वीरता आदि गुणों से सारी जनता को वश में करके या जोर ज़बरदस्ती, चालाकी और होशियारी से जनता के हाथों से सारी ताकत अपने लिए माँग या छीन लेता है और फिर अपनी मर्जी से शासन करने लगता है तो वैसे शासन को अधिनायक-तन्त्र या डिक्टेटरी कहते हैं। जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी का शासन इसी प्रकार का था। पुराने समय में रोम में जूलियस सीज़र ने और फ्रांस में नेपोलियन ने भी ऐसे ही अधिकार पा लिए थे।

४—लोकतन्त्र : ऊपर बताए तीनों ढंगों का शासन आजकल अच्छा नहीं माना जाता। आज के संसार ने लोकतन्त्र को अपनाया है। इसका

अर्थ यह है कि राज्य का प्रबन्ध सब लोगों की राय से हो। जनता बिना किसी दबाव के अपनी मर्जी से उसमें मनचाहा हेर फेर कर सके। जनता खुद अपने राज्य का मालिक हो।

प्रतिनिधि-तन्त्र :

लोक तन्त्र शासन कई प्रकार का हो सकता है। पुराने नगर राज्यों और 'गणतन्त्र' राज्यों के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। वे छोटे छोटे राज्य थे। इसलिए सब लोग एक जगह बैठकर अपना मत देते थे। परन्तु आज के राष्ट्र यूनान और रोम के गण-राज्यों जैसे छोटे छोटे नहीं हैं जहाँ नागरिक एक संथागार या लोक-सभा में इकट्ठे होकर शासन प्रबन्ध की हर बात पर मत दे सकें। इस कारण "प्रतिनिधि-तन्त्र" चला। आज के लोक तन्त्रों में जनता अपनी इच्छा का प्रतिनिधि चुन देती है। वे प्रतिनिधि थोड़े समय के लिए चुने जाते हैं। वह समय बीत जाने पर फिर प्रतिनिधियों का चुनाव होता है और जनता को मौका मिलता है कि सोच समझ कर जिसे चाहे, उसे
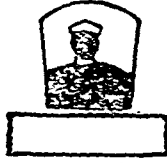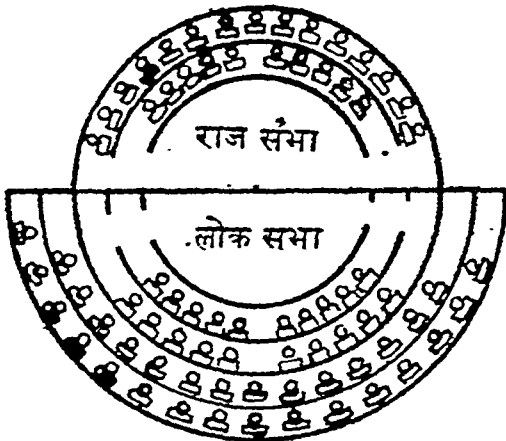
भारत में प्रतिनिधि तन्त्र सरकार का रूप

प्रतिनिधि चुने।

दल :

देश का शासन किस तरह चलाना ठीक होगा, इस पर लोगों की अलग अलग रायें होती हैं। एक राय या विचार वाले लोग मिलकर दल बना लेते हैं। चुनाव में अलग अलग दल वाले आदमी खड़े करते हैं। जनता सबकी बातें सुनती है। फिर जिसे वह पसन्द करती है उसे वोट देती है। लोकतंत्र शासन में कई दल जरूर रहते हैं।

धारा सभा :

जनता के चुने हुए प्रतिनिधि एक जगह इकट्ठे होकर शासन का काम चलाते हैं। प्रतिनिधियों की यह सभा कई नामों से पुकारी जाती है जैसे धारा सभा, विधान सभा, संसद, एसेम्बली या पार्लमेंट। यह सभा कानून बनाती है और इस बात की देखभाल करती है कि राजकाज उसकी इच्छा के अनुसार होता है या नहीं।

मंत्रिमंडल :

ऊपर बताया गया है कि कई दल के लोग चुनाव लड़ते हैं। ऐसा हो सकता है कि किसी दल के ज्यादा और किसी के कम प्रतिनिधि चुने जाएँ। सभा में जिस दल के प्रतिनिधि अधिक होते हैं उस दल के नेता को शासन का भार सौंपा जाता है। वह अपने साथी चुनकर मंत्रिमंडल बनाता है। वे मन्त्री शासन के कामों का बँटवारा कर राजकाज चलाते हैं। परन्तु सब मन्त्री दल के नेता की बात मानकर एक 'टीम' की तरह काम करते हैं। जब तक मंत्रिमंडल पर आधे से अधिक प्रतिनिधियों का विश्वास रहता है, तब तक मंत्रिमंडल शासन का काम चलाता है। अगर प्रतिनिधि सभा के

श्राधे से अधिक लोग कभी कह दें कि उनका मंत्रिमंडल पर विश्वास नहीं रहा, तो उसको तुरन्त हट जाना पड़ता है। फिर प्रतिनिधि सभा में जिस दल के अधिक लोग होते हैं, वह मंत्रिमंडल बनाता है।

प्रतिनिधि सभा अगर सरकार के खर्च के प्रस्ताव को रद कर दे, या सरकार के किसी खास प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दे, तो ऐसा समझा जाता है कि मंत्रिमंडल पर प्रतिनिधियों का भरोसा नहीं रहा।

परन्तु अगर मंत्रिमंडल यह समझे कि देश की जनता उसके साथ है और प्रतिनिधि सभा जनता का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं कर रही, तो वह प्रतिनिधि सभा को तोड़ कर फिर से चुनाव करा सकता है। नया चुनाव होने से यह बात साफ़ हो जाती है कि देश की जनता में से अधिक लोग किस नीति को पसन्द करते हैं।

राज्य का प्रधान :

प्रतिनिधि और मंत्रिमंडल चुनावों में बदलते रहते हैं, परन्तु राज-काज बराबर ठीक से चलता है। देश की भलाई के लिए यह जरूरी है कि मंत्री और प्रतिनिधि चाहे जो हों, राजकाज बराबर ठीक से चलता रहे। यह काम राज्य के कर्मचारी करते हैं। वे राज्य की मशीन के पुर्जे कहलाते हैं। कोई भी दल मंत्रिमंडल बनाए, बिना भेदभाव और पक्षपात के अपना काम करते रहना इन कर्मचारियों का काम होता है। उन्हें जो कुछ कहा जायेगा, करेंगे। उनके विचार कुछ भी हों, वे अपनी टाँग नहीं अड़ाएँगे।

परन्तु शासन की मशीन पर कर्मचारियों का अधिकार नहीं होता। पूरे राज्य का भार राज्य के प्रधान पर होता है। उसकी आज्ञा से सब काम होते हैं। कहीं कहीं राजा ही राज्य के प्रधान हैं। मगर उनके अधिकार

वहुत कम कर दिए गए हैं, जैसे इंग्लैंड में। जहां ऐसा नहीं है, वहां निश्चित समय के बाद जनता या उसके प्रतिनिधि इस पद के लिए किसी योग्य आदमी का चुनाव करते हैं, जैसा भारत में है।

राजा, प्रधान या राष्ट्रपति राज्य का सिरताज होता है। राज्य की सेना, खजाना और सारी शक्ति पर उसका अधिकार होता है। उसके नाम से ही सब राज-काज चलता है। परंतु उसके कुछ निश्चित अधिकार रहते हैं और उन्हीं के भीतर मंत्रिमंडल की सलाह से वह सब हुक्म देता है।

आदमी अपने समाज को ठीक रखने और उसकी उन्नति के लिए राज-प्रणाली में बराबर हेर फेर करता हुआ आज लोकतंत्र की मंजिल पर पहुँचा है। लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधि जनता के लिए शासन करते हैं। जनता की चौतरफ़ा उन्नति और व्यक्ति की पूरी आज़ादी ही लोकतंत्र के मूल सिद्धांत हैं।
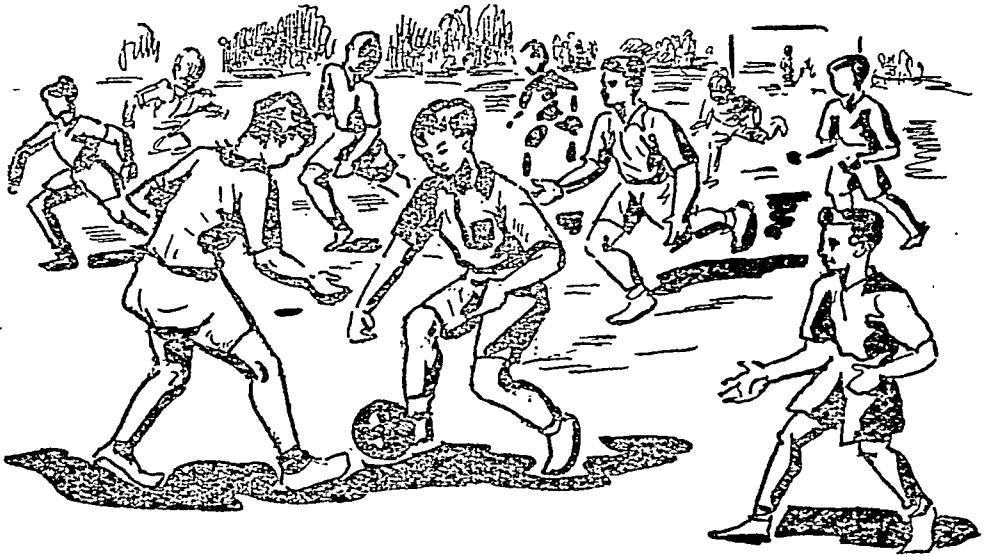
३२

खुले मैदान के खेल

खेल दो तरह के होते हैं। खुले मैदान के खेल और घर के खेल। घर के खेलों का उद्देश्य अधिकतर मन बहलाव होता है, जैसे ताश, शतरंज, गंजीफ़ा, चौपड़, कैरम, टेबुल-टेनिस इत्यादि।

हर खेल के कुछ नियम होते हैं। नियम खेल की जान हैं। टोली का नायक या कप्तान किसी खिलाड़ी को मैदान में जो जगह सौंप दे, उस पर जी जान से डट जाना उस खिलाड़ी का धर्म हो जाता है। खेल के मैदान में कोई जगह छोटी या बड़ी नहीं होती। छुटपन या बड़प्पन अपनी जगह पर सुस्त पड़ जाने या डट जाने में है। अब हम आपको खुले मैदान के कुछ खेल बतलाएँगे।

१—फुटबॉल

यह खेल शुरू में रोम में खेला जाता था। ब्रिटेनवालों ने यह खेल वहाँ से ही सीखा। इसमें ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टोलियां या टीमें होती हैं। यह खेल एक घंटे का होता है। मैदान के दोनों सिरों पर आमने सामने दो दो बल्लियाँ लगा दी जाती हैं। इन दोनों बल्लियों के बीच की जगह गोल कहलाती है। एक टोली दूसरी टोली के गोल के भीतर गेंद को पहुँचाने की कोशिश करती है। गोल के भीतर गेंद पहुँचा देने को 'गोल-करना' कहते हैं। जिस टोली के गोल के भीतर गेंद अधिक बार पहुँचता है, वह टोली हार जाती है।

फ़ुटबॉल के खेल में दोनों टीमें (टोलियाँ) अपने अपने खिलाड़ियों को एक खास क़ायदे से खड़ा करती हैं। एक एक खिलाड़ी दोनों पक्षों के गोल पर खड़े रहते हैं। उन्हें गोल कीपर यानी गोल का रखवाला कहते हैं।

फिर दो दो खिलाड़ी दोनों टीमों के गोल कीपरों से कुछ आगे बढ़कर उनके दाहिने और बाएँ खड़े किए जाते हैं। उन्हें फ़ुल बैक यानी पीछे रह कर गोल की रक्षा करनेवाले कहते हैं।

फ़ुल बैकों के आगे तीन तीन आदमी और खड़े रहते हैं। एक एक दाहिने, बाएं और बीच में। उनको हाफ़ बैक यानी अपने पाले के अधियारे पर रक्षा करनेवाले कहते हैं।

उनके आगे दोनों टीमों के पाँच पाँच खिलाड़ी रहते हैं। ये फार्वर्ड यानी अगुआ कहलाते हैं। दोनों टीमों के फार्वर्ड पूरे मैदान में बढ़कर खेलते हैं।

मैदान के बीचों बीच एक लकीर खिची रहती है। खेल शुरू होते

फुटबाल का मैदान

गोल लाइन
गोलची
गोल एरिया
पेनल्टी एरिया
लेफ़्ट बैक
राइट हाफ़
सेन्टर हाफ़
लेफ़्ट हाफ़
राइट आउट
राइट इन
सेन्टर फ़ार्वर्ड
लेफ़्ट इन
लेफ़्ट आउट
आधे फ़ील्ड की लाइन
१० गज
४४ गज
२० गज
१८ गज
६ गज
८ गज
१८ गज
८ फ़ुट
७५ गज
११५ गज
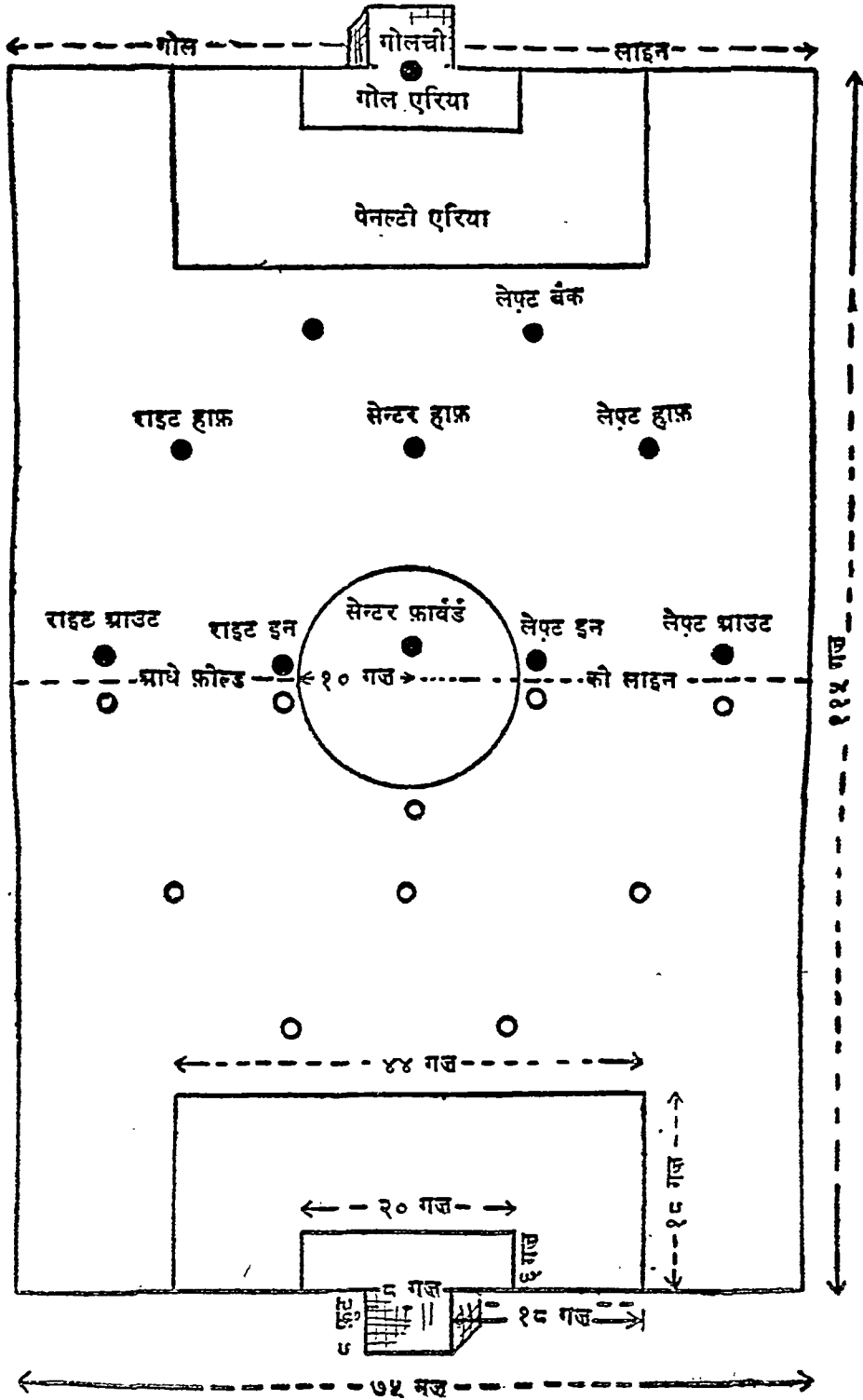
समय दोनों तरफ के फार्वर्ड इस लकीर के पास अपने अपने पाले में खड़े हो जाते हैं। तब चमड़े का एक गेंद लाकर इस लकीर के बीचों बीच रखी जाता है। एक आदमी खेल की निगरानी के लिए रहता है। उसे 'रेफ़री' कहते हैं। रेफ़री के सीटी बजाने पर खेल शुरू होता है। जिस टीम की बारी होती है, उसका बीचवाला फार्वर्ड पैर से गेंद को ठोकर मारता है। इसे 'किक लगाना' कहते हैं। इसके बाद खेल आरम्भ हो जाता है।

दोनों टीमें कोशिश करती हैं कि गेंद उनके पाले में न आने पाए और वे उसे किक करती हुई दूसरी टीम के गोल की तरफ़ ले जाएँ और गोल कर दें। फार्वर्ड गेंद को दूसरी टीम के पाले की तरफ़ बढ़ाते हैं। दूसरी टीम के फार्वर्ड रोकते हैं। अगर वे चूक गए, तो हाफ़ बैक रोकते हैं। अगर गेंद उनसे भी न रुका, तो फ़ुल बैक रोकते हैं। यदि वे भी न रोक सके, तो गोल कीपर पैर से किक लगाकर या हाथ से पकड़कर गेंद को दूसरे पाले की ओर फेंक देता है। जब गोल कीपर भी नहीं रोक पाता और गेंद गोल के बीच से निकल जाता है, तो जिसके गोल से गेंद निकल जाता है, वह टीम हार जाती है।

गोल कीपर के अलावा और कोई खिलाड़ी गेंद को हाथ से नहीं छू सकता। गेंद को मैदान के चौगिर्दा या सीमा के भीतर रखना पड़ता है। उसके भीतर ही खेल होता है।

इस खेल के खिलाड़ियों में ताकत होनी चाहिए। फार्वर्डों को दौड़ने का भी अभ्यास होना चाहिए। पूरी टीम का मिलकर खेलना भी जरूरी है। कोई खिलाड़ी गेंद को अपने पास न रखे, बल्कि दूसरे पाले के खिलाड़ी के पास आते ही अपने दूसरे साथी को बढ़ा दे। इस तरह एक दूसरे को

देते हुए गेंद को गोल तक ले जाएं।

भारत में कलकत्ते की कई टीमें फ़ुटबॉल में बहुत प्रसिद्ध हैं। मोहन-बगान और ईस्ट बंगाल के नाम खास तौर पर लिए जा सकते हैं।

? —हॉकी

हॉकी में हिन्दुस्तान ने काफ़ी नाम कमाया है। १९२८ ई० से अब तक हमारा देश संसार के सब देशों से हॉकी में विजयी रहा है। ध्यानचन्द हॉकी का जगत प्रसिद्ध खिलाड़ी है। उसे जादूगर कहते हैं। इंडियन हॉकी एसोसिएशन की स्थापना १९२० ई० में हुई थी। यह संस्था हॉकी में हमारे देश की शिरोमणि संस्था है। इससे पहले १८९६ ई० में आगाखाँ हाकी टूर्नामेंट की स्थापना हो चुकी थी और उससे हिन्दुस्तान में हॉकी के खेल को काफ़ी बढ़ावा मिला था।

भारत में यह खेल युरोप से आया। युरोप में हॉकी का चलन बहुत पुराना है। इंग्लैंड में एक समय लोगों को हॉकी खेलने का शौक इतना बढ़ा कि स्त्रियों का भी हॉकी एसोसिएशन बनाया गया। अब तो इंग्लैंड क्या, हमारे देश में भी हर खेल के लिए स्त्रियों के संगठन बन गए हैं। भारत की स्त्रियों की हॉकी टीम विदेशों में जाकर भी खेल चुकी है।

हॉकी का खेल फ़ुटबॉल के खेल से अनेक बातों में मिलता है। इस में भी ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टीमें होती हैं। हॉकी के खिलाड़ी भी फ़ुटबाल के खिलाड़ियों की तरह खड़े होते हैं। पाँच आगे बढ़ने के लिए और छः बचाव के लिए।

हॉकी पैर से नहीं खेली जाती। हॉकी खेलने के लिए लकड़ी का एक डंडा होता है। इसे 'स्टिक' कहते हैं। इसका गेंद छोटा और कड़ा होता है।

हाकी का मैदान
गोलची
राइट बैक
लेफ्ट बैक
२५ गज की लाइन
७ गज
राइट हाफ़
सेन्टर हाफ़
लेफ्ट हाफ़
राइट आउट
राइट इन
लेफ्ट इन
लेफ्ट आउट
सेन्टर फ़ार्वर्ड
१०० गज
२५ गज की लाइन
१५ गज
४ गज
५५ से ६० गज
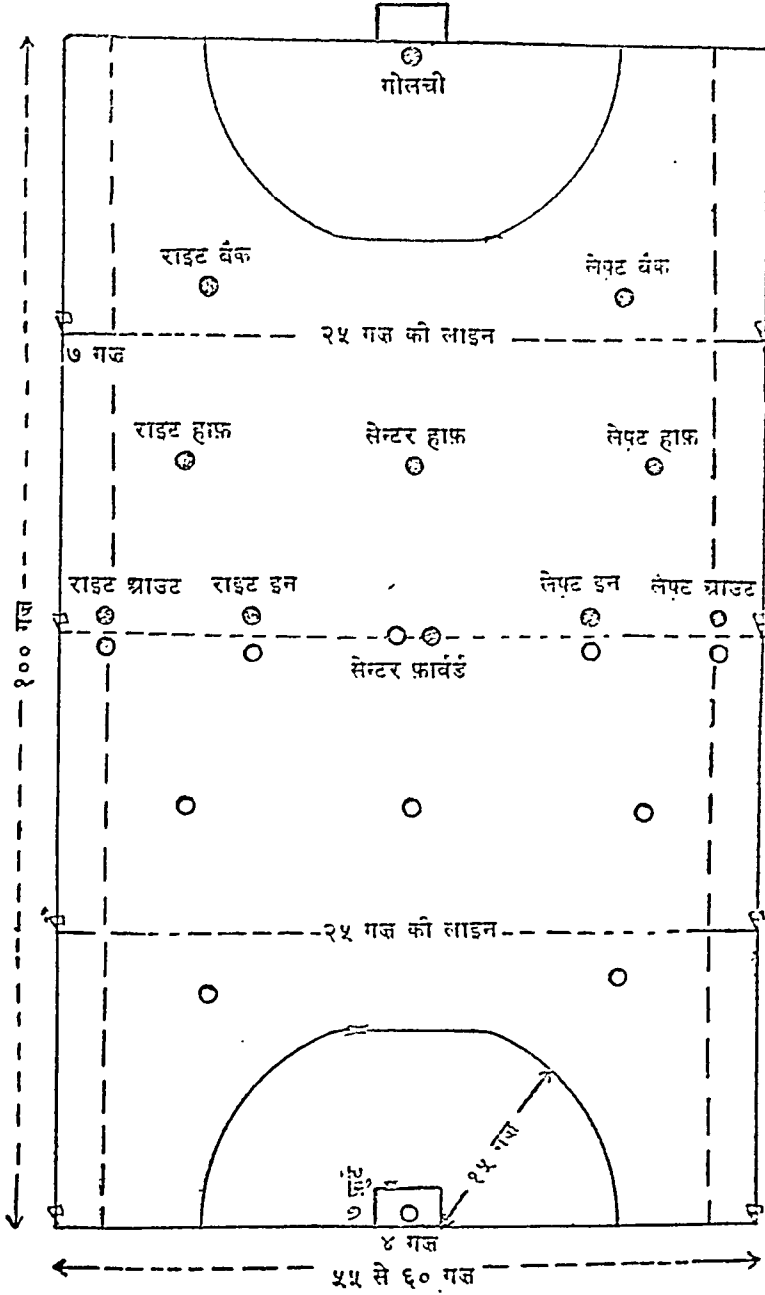
गेंद डंडे से मारा जाता है। स्टिक वज़न में १८ से २४ औंस तक होती है। गोल कीपर और बैक भारी स्टिकों से खेलते हैं और फ़ार्वर्ड हल्की से।

इस खेल में हाथों की जादूगरी और पैरों की फुर्ती देखने लायक होती है। आगे बढ़नेवाले एक ओर के खिलाड़ी गेंद को अपनी स्टिक के सहारे ऐसे चलाते हैं जैसे गेंद डंडे के साथ चिपका हुआ हो। दूसरी ओर के खिलाड़ी के सामने पड़ते ही उसे पलक मारते अपने दूसरे साथी के पास पहुँचा देते हैं। कभी बाईं ओर कभी दाईं ओर गेंद उड़ती सी दिखाई देती है।

लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी भी चिड़ियों की भाँति उड़कर गेंद को बीच में ही रोक कर दूसरी ओर धावा बोल देते हैं। गोल तब होता है जब हाफ़ बैकों और फ़ुल बैकों को पार कर और गोल कीपर को बेबस करके गेंद गोल के डंडों के बीच से निकल जाए।

३—क्रिकेट

इस खेल में भी ग्यारह ग्यारह खिलाड़ियों की दो टोलियाँ या टीमें होती हैं। दोनों टीमें बारी बारी से खेलती हैं। यह खेल गेंद और बल्ले से खेला जाता है।

मैदान के बीचों बीच एक चटाई सी बिछी रहती है। उसके दोनों छोरों पर तीन तीन डंडे गड़े रहते हैं। जिन्हें विकेट कहते हैं।

खेलने वाली टीम के दो खिलाड़ी एक एक विकेट के सामने हाथ में बल्ला लेकर खड़े हो जाते हैं। अब दूसरी टीम का कप्तान अपने साथियों को खड़ा करता है। एक खिलाड़ी विकेट के पीछे गेंद पकड़ने के लिए खड़ा किया जाता है। दो खिलाड़ी दोनों विकेटों के पास गेंद फेंकने के लिए खड़े होते हैं। बाकी आठ मैदान में इधर उधर खड़े हो जाते हैं। इनका काम

नायडू
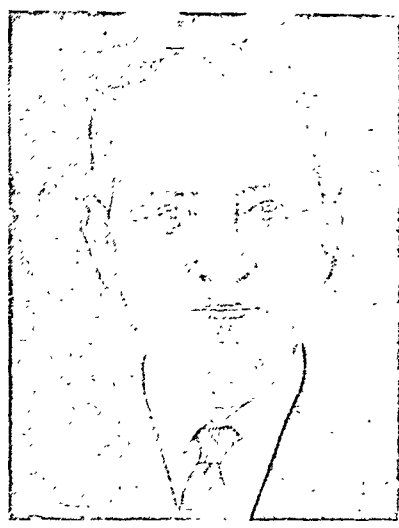
दिलिपसिंह
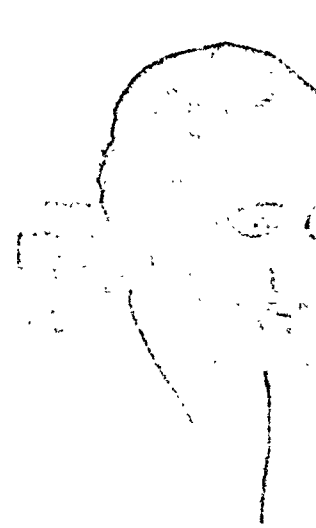
अमरनाथ

उमरीगर

हज़ारे

विजय मर्चेंट

मनकड
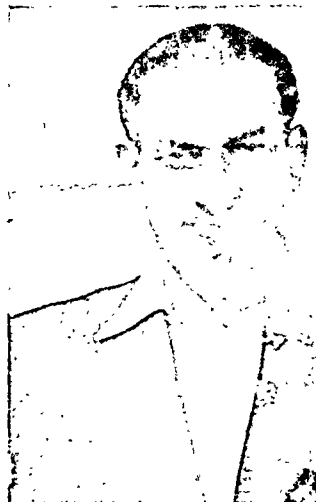
मुश्ताक

हाकी के खेल से दिल-चस्पी रखनेवाले संसार भर के लोग ध्यानचन्द को हाकी का जादूगर कहते हैं।
ध्यान चन्द के बाद भारत की हाकी टीम के कप्तान बाबू और बलबीर सिंह हुए। उनकी सरदारी में भी भारत की टीम ने दुनिया की सभी टीमों को हराया।
ध्यान चन्द
बलबीर सिंह
बाबू

भी गेंद पकड़ना है।

गेंद फेंकनेवाला एक तरफ़ के विकेट के पास से सामने के विकेट को गिराने के लिए गेंद फेंकता है। खेलनेवाली टीम का जो खिलाड़ी उस विकेट के पास रहता है, वह अपने बल्ले से गेंद को मार कर दूर कर देता है। अगर वह हटा न सके और गेंद जाकर विकेट से छू जाए, तो वह खिलाड़ी खेल से बाहर हो जाता है। इसे आउट होना कहते हैं। तब खेलनेवाली टीम का कप्तान उसकी जगह बैठे हुए खिलाड़ियों में से एक को भेजता है।

गेंद मारते ही खेलनेवाली टीम के दोनों खिलाड़ी दौड़कर एक दूसरे की जगह पर पहुँच जाते हैं। अगर एक बार दोनों खिलाड़ी एक दूसरे के विकेट तक पहुँच जाएँ, तो एक दौड़ या रन माना जाता है। इस प्रकार वे जितनी बार दौड़ सकें, उतने ही रन बनेंगे।

गेंद फेंकनेवालों की टीम बल्ला मारनेवालों के रन बनाने में रुकावट डालती है। गेंद पर बल्ले की चोट पड़ते ही वे लपककर गेंद को पकड़ लेते हैं और विकेट से छुआने की कोशिश करते हैं। अगर दौड़ने वाला विकेट तक न पहुँचा हो और गेंद विकेट से छुआ दी जाए, तो वह खिलाड़ी आउट हो जाता है।

आउट करने का एक ढंग और भी है। बल्ले से मारने पर यदि गेंद उछल जाए और उसे दूसरी टीम का खिलाड़ी लपक कर हाथ में पकड़ ले, तो खिलाड़ी आउट माना जाता है।

यदि खिलाड़ी गेंद को इतनी ज़ोर से मारे कि वह मैदान के छोर तक पहुँच जाए, तो बिना दौड़े चार रन मान लिए जाते हैं। यदि गेंद मैदान से बाहर निकल जाए, तो छः रन माने जाते हैं।

एक छोर से छः बार गेंद फेंकने के बाद छः बार दूसरी छोर से फेंकी जाती है। दूसरी छोर से फेंकने के लिए दूसरा खिलाड़ी रहता है।

गेंद फेंकनेवाले बहुत ही होशियार होते हैं। वे कुछ ऐसे ढंग से गेंद फेंकते हैं कि अनाड़ी खिलाड़ी तो एक ही बार में आउट हो जाए। गेंद फेंकनेवाले की हमेशा यह कोशिश रहती है कि दूसरी टीम का खिलाड़ी गेंद को मार न पाए और गेंद जाकर विकेट को छू ले। कभी कभी गेंद इतने धीरे आता है कि खिलाड़ी उसकी तेज़ी का ग़लत अंदाज़ा कर लेता है और गेंद विकेट को उड़ा देता है। वह कभी दाहिनी ओर टप्पा खाकर विकेटों की ओर आता है और कभी बाईं ओर टप्पा खाकर उछलता और विकेटों को जा लगता है। गेंद फेंकनेवाला कभी घूमती हुआ गेंद फेंकता है जो ऐसा दिखाई देता है कि इधर उधर जा गिरेगा, पर वह ठीक

स्थान पर टप्पा खाकर विकेट को उड़ा देता है।

उधर बल्लेबाज़ भी प्रत्येक प्रकार के गेंद को मारने में चतुर होते हैं। वे गेंद फेंकनेवाले को ऐसा छकाते हैं कि वह पसीने पसीने हो जाता है, पर उन्हें आउट नहीं कर पाता। कभी दन से चौका और कभी छक्का जमाते हैं। देखने वालों को उस समय बड़ा आनंद आता है जब इधर गेंद फेंकनेवाला गेंद को पूरी चतुराई से फेंकता है और उधर बल्लेबाज़ रन पर रन बनाते जाते हैं।

जब एक एक कर सभी खिलाड़ी आउट हो जाते हैं, तब दूसरी ओर के खिलाड़ी खेलते और पहले खेलनेवाले खेलाते हैं। दो दो बार खेल चुकने पर जिस टीम के रन अधिक होते हैं, उसकी जीत होती है।

क्रिकेट में विकेट के पीछे गेंद रोकने वाला बड़े काम का होता है। वह गेंद को इधर उधर निकलने से रोक कर लोक लेता है। यदि वह खिलाड़ी होशियार हो तो बहुत से रन बचा देता है और कभी कभी आंख झपकते गेंद को विकेटों से छुआकर उन्हें गिरा देता है और चिल्लाता है 'आउट'।

खेल ठीक से खेला जा रहा है या नहीं इसकी देखरेख के लिए एक आदमी होता है। वह अम्पायर कहलाता है। अम्पायर ऐसा आदमी होता है जो क्रिकेट का अच्छा खिलाड़ी हो और खेल की बारीकियों को समझ सके। वह किसी भी टीम का पक्ष नहीं लेता।

क्रिकेट में इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, भारत, वेस्ट इंडीज और पाकिस्तान ने बहुत नाम किया है। भारत के लाला अमरनाथ, वीनू मनकड, हजारे, उमरीगर, मुश्ताक़ संसार के श्रेष्ठ खिलाड़ियों में माने जाते हैं। प्रिंस

दिलीप सिंह ने क्रिकेट खेलने में नाम कमाया था और उनकी बड़ी धाक थी।

४—कबड्डी

फ़ुटबॉल, हॉकी और क्रिकेट बाहर से आए हैं। इनके सामान पर बहुत पैसे खर्च होते हैं। खेल का मैदान भी बहुत रुपये और मेहनत से तैयार किया जाता है। पर कुछ देशी खेल ऐसे हैं जिनमें किसी सामान की जरूरत नहीं। उनमें आनंद भी खूब आता है। कसरत भी हो जाती है। कबड्डी ऐसा ही खेल है।

चाँदनी रात में या शाम के हलके हलके प्रकाश में खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। एक बड़े से गोले में बीचों बीच एक लकीर खींच दी जाती है। इस तरह दो पाले बन जाते हैं। एक एक टीम एक एक पाले में खड़ी हो जाती है।

फिर एक टीम का एक खिलाड़ी 'कबड्डी कबड्डी' कहता हुआ दूसरी ओर के खिलाड़ियों में घुसता है। घुसने वाला कोशिश करता है कि सामने वाले किसी खिलाड़ी को छूकर बिना पकड़े गए अपने पाले में वापस आ जाए। उधर दूसरी ओर वाले इस ताक में रहते हैं कि खिलाड़ी की आँख बचाकर उसको पकड़ लें। बिना पकड़े गए वह जिसे छू लेता है, वह मर जाता है। यदि पकड़ा जाता है तो वह खुद मर जाता है। जिस टीम के सब खिलाड़ी मर जाते हैं, वह हार जाती है।

इस खेल में चौकसी, फुर्ती और बल की बड़ी जरूरत है। कबड्डी बोलनेवाला देखता रहता है कि उसको पकड़ने के लिए कैसे घेरा जा रहा है। उधर किसी न किसी को छुए बिना आना भी बेकार है। इसलिए वह ऐसे चलता है कि घिर न जाए और मौक़ा पाते ही शेर की

तरह झपट कर किसी को छू कर वापस चला आए।

उसके झपट्टा मारते ही सामनेवाले खिलाड़ी तड़प कर उसको पकड़ लेते हैं। यदि उसकी साँस टूट गई, तो वह मर गया। लेकिन अगर वह अपने को छुड़ा ले या पकड़नेवालों को खींच कर बीच की रेखा तक पहुँचा दे तो पकड़नेवाले मर जाते हैं।

खिलाड़ी को अपने पाले में लौटते हुए भी पूरी सावधानी रखना पड़ती है। दूसरी टीम के फुर्तीले खिलाड़ी लौटते ही उसका पीछा करते हैं।

१६१८ के बाद इस खेल में बहुत से हेर फेर हुए हैं। १६३६ ई० में यह खेल बर्लिन के अंतर्राष्ट्रीय खेलों के मौके पर खेला गया था।

1810